RNI-UPBIL/2011/38102 ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अन्तरराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume-9 : Issue-38 Oct. 2020 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES
(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 5.114

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKLA

Asstt. Editor
MUKTA SONI

Art Editor
Dr. (MS) PANKAJ SHARMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Chief Editor
Dr. HARI SHARAN VERMA

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Managing Editor
Dr. SATISH AHUJA
Dr. SANGEETA VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

Dr. Hari Sharan Verma
Chief Editor

Dr. Raj Narayan Shukla
Editor

Dr. Satish Ahuja
Managing Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

☆ The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.

☆ The editor does not owe any kind of responsibility in this regard.

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)

विदेश में :–
(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM
2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय कार्यालय

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ० पी.के. शर्मा, (ई–36 बलवन्त नगर विश्वविद्यालय मार्ग, गवालियर, मध्यप्रदेश फोन : 09039131915
3. डॉ० राजकुमारी सिंह (प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपुत मुरादाबाद उत्तर प्रदेश। फोन : 09760187147
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास)
स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ० राजनारायण शुक्ला द्वारा आदर्श प्रिंट हाऊस, बी–३२, महेन्द्रा एन्क्लेव, शास्त्री नगर, गाज़ियाबाद में मुद्रित कराकर, SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०) से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ० राजनारायण शुक्ला। **पंजीकरण संख्या :** ISSN-2231 - 5837

संरक्षक मण्डल :

1. **डॉ० रामसजन पाण्डेय** (कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
2. **डॉ० योगेन्द्र नाथ शर्मा ''अरूण''** (पूर्व प्राचार्य, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, ७४/३, नया नेहरूनगर, रूड़की, उत्तराखण्ड)
3. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० एस.पी. वत्स,** (पूर्व कुलसचिव, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
5. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० प्रतिभा त्यागी,** (प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
6. **डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची–**834008**
फोन : 09431595318
7. **डॉ० माया मलिक,** (प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
8. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

कॉलेज, गाजियाबाद)

9. **डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर) हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गुना) म०प्र०)
11. **डॉ० रूबी,** प्रोफेसर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर) 09419058585
12. **डॉ. सुरेश कुमार** (सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.एल.जे. एस. कॉलेज, तोशाम, भिवानी)
13. **डॉ० उर्मिला अग्रवाल,** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
14. **डॉ0 सुभाष चन्द सैनी**, सह प्रोफेसर, दयाल सिंह कॉलेज करनाल
15. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
16. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
17. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
18. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
19. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
20. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
21. **डॉ० जाहिदा जबीन,** प्रो0 , हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
22. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
23. **डॉ० शीला गहलौत,** प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
24. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक–124001
25. **डॉ0 अनीता,** सहायक प्रोफेसर, श्री आरविन्दो सांध्य महाविद्यालय मालविय नगर, दिल्ली–8595718895
26. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
27. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
28. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ. जे.के. शर्मा,** प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक–124001
7. **डॉ. रेशमा सिंह,** (एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी–विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** पूर्व रीडर (वाण्ज्यि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू

विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)

8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ० जगवीर सिंह गुलिया,** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय मकड़ौली कलां रोहतक
6. **डॉ0 विमला देवी,** सहायक प्रोफेसर, स्वामी विवेकानन्द स्नातकोन्टर, महाविद्यालय, लोहा घाट, चंपावत

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० सरिता दहिया** असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
3. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
5. **डॉ० नीलम रानी,** प्राचार्या, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद)
6. **डॉ0 राजेश मोहन शर्मा,** प्रिंसीपल एम.एम. इण्टर कॉलेज, ईसपुर, (शामली) उ0 प्र0.
7. **डॉ० सुनीता बडेला,** एसो० प्रो०, शिक्षा विभाग, हेमवतीनंदन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल–२४६१७४
8. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
9. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
10.
11. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गर्ग,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
3. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
4. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
5. **डॉ० हरेन्द्र सांगवान,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज** पूर्व समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज गाजियाबाद
3. **डॉ० (श्रीमती) रश्मि त्रिवेदी,** पूर्व अध्यक्षा, रानी भाग्यवती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजनौर एवं संयोजक रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० रेणु सिंह राना** (रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, गिन्नी देवी मोदी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोदीनगर)
3. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
5. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
6. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,**पूर्व(प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)

3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1. **डॉ० संजीव कुमार सिंह** (रीडर गणित विभाग, ए.आर.ई.सी. कॉलेज, खुरजा)
2. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
3. **डॉ० मीनाक्षी गौड,** रीडर एवं अध्यक्षा गणित विभाग, नानकचन्द ऐंग्लो, संस्कृत कॉलेज, मेरठ
4. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरर गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
5. **डॉ0 रश्मी मिश्रा,** एसोसिएट प्रोफेसर, जी.एल. बजाज इन्सिटियूट ऑफ टैक्नोलॉजी एवं मैनेजमैंट, ग्रेटर नोएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **डॉ० रेखा चौधरी,** एसोसिएट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग, राजकीय इंजीनियरियंग कॉलेज, भरतपुर, राजस्थान
2. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
3. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
4. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली प्रोफेसर एवं अध्यक्तथा डीन
2. **डॉ० हुकमचन्द,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

नोट : 1. प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
2. सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।
3. शोध–पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद केवल गाजियाबाद/फरीदाबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
   Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
   H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
   Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
   Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
   Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
   H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
   Mob. 9996363764

9. **Principal**
   Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
    Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
    H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
    Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
    H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Associat Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Vinit Bala,** Assistant Professor, Vaish College, Rohtak

सम्पादकीय

''इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स' का 38वा अंक समर्पित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। आज मैं आपका ध्यान नई–पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष जो अतीत काल से अब तक चला आ रहा है। उस विषय पर यदि हम विचार करें तो नई–पुरानी पीढ़ी में विचारो का मतभेद और नई पीढ़ी के नये परिवर्तनों को शंकालु दृष्टि से देखना, उनके साथ विचारों में तालमेल न बैठ पाना और नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार एवं अवहेलना और बगैर सोचे–समझे पुरानी पीढ़ी की प्रत्येक मान्यता का उपहास करना। ये सभी बाते नई–पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को जन्म देती है। प्रत्येक माता–पिता अपने अधूरें सपनों को अपने बच्चों के द्वारा पूरा होता हुआ देखना चाहता है। परन्तु नई पीढ़ी के बच्चे माता–पिता को बिना किसी अंकुश के अपना जीवन अपने ढ़ंग से जीना चाहते हैं। दोनों ही पक्ष अपनी–अपनी बात अपनी–अपनी भावनाओं को ठीक मानकर अड़े रहकर अपनी विचारधाराओं को ठीक मानते हैं। दोनों पीढ़ियो में से कोई भी झुकने के लिए तैयार नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप संबंधों में तनाव पैदा हो जाता है। पुरानी पीढ़ी यदि अपनी सोच को कुछ उदार बनाये और नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के अर्जित ज्ञान और अनुभवों से लाभ उठाये, उन पर विचार करें तो दोनों पीढ़ियों का जीना आसान बन सकता है और पारिवारिक कठिनाइयों का मुकाबला करने की क्षमता पैदा की जा सकती है, किन्तु नई पीढ़ी जिसमें बेहद जोश–खरोश और उत्साह भरा होता है, उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है क्योंकि सोचने के लिए उसे फुर्सत नहीं है। अपरिपक्वता और ठहराव के अभाव में नई पीढ़ी के लोग कई बार गलत कदम उठा लेते हैं, जिसके कारण बाद में उन्हें पछताना पड़ता है, और उनका भविष्य खतरे में पड़ जाता है।

यह तो उचित है कि बच्चों पर अपनी मर्जी थोपना ठीक नहीं परन्तु यहां पर यह भी उचित है कि उन पर आवश्यक अंकुश लगाना भी उचित है, जिससे बड़े होकर वे स्वेच्छाचारी और उद्दंड न बन सके। बच्चों को प्रारम्भ से ही इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि घर की समस्याओं में उनकी भी भागीदारी है। क्योंकि तभी वे माता–पिता को सहयोग दे सकेंगे और उनमें अच्छी–बुरी परिस्थितियों का दृढ़ता से मुकाबला करने की क्षमता पैदा होगी और माता–पिता का सहयोग दे सकेंगे।

आधुनिक युग में दिन–प्रतिदिन मंहगाई द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ने के कारण प्रत्येक व्यक्ति नौकर रखने की क्षमता नहीं रखता, ऐसी स्थिति में यदि बच्चों में आत्मनिर्भता नहीं आ पायेगा तो घर का काम कैसे चलेगा। बच्चे आलसी बन जायेंगे, प्रत्येक छोटे–बड़े काम के लिए दूसरों पर निर्भर हो जायेंगे। जिस वातारण में बच्चों का लालन–पोषण किया जायेगा उस वातावरण का प्रभाव हमेशा बच्चों पर रहता है। कई माता–पिता बच्चों की हर अच्छी–बुरी बात मानते रहते हैं। इसका परिणाम भविष्य में चलकर बच्चों के लिए ठीक नहीं होता यह बच्चों के लिए ठीक नहीं होगा जिस के कारण बच्चों को मनमानी करने की आदत पड़ जाती हैं। इस प्रकार से बच्चों का भविष्य भी उज्ज्वल नहीं बन पाता। इसलिए बचपन से ही बच्चों में अच्छे संस्कार डालने चाहिए उसी के अनुरूप उनको व्यक्तित्व का विकास होता है।

आधुनिक युग में नगरों एवं महानगरों में माता–पिता बच्चों के साथ मित्रता का व्यवहार बनाये रखते हैं इसमें कोई बुराई प्रतीत नहीं होती परन्तु कुछ मर्यादाओं का पालन माता–पिता व बच्चों के बीच रहना चाहिए जो उनके हित में है, बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए आज्ञापालन और अनुशासन आवश्यक हैं। नारी स्वतन्त्रता के साथ आधुनिक युग में परिवार में काफी बदलाव आया है। अतीतकाल में स्त्रियाँ पुरुषों से दबी रहती थी क्योंकि वे अशिक्षित होती थी और कोई काम नहीं करती थी। आज नारी शिक्षित है और पुरुषों की तरह नौकरी करके धन कमाती है इसलिए आज वे पुरुषों से दबी हुई नहीं रहना चाहती, बल्कि पुरुषों के हावी रहती हैं।

पीढ़ियों का अन्तर प्रत्येक युग में रहा है, परन्तु समझदारी इसी में है कि नई व पुरानी पीढ़ी अपने–अपने दृष्टिकोण को सही ढंग से एक–दूसरे के सम्मुख प्रस्तुत करें तथा एक–दूसरे की बातें धैर्यपूर्वक सुने व समझें। इस प्रकार से दोनों पीढ़ियों के बीच की दूरी को समाप्त किया जा सकता है।

आजकल वृद्धों की स्थिति बहुत खराब होती जा रही है। पिता नौकरी पर होता है और बेटा भी अन्य शहर में नौकरी करने के कारण उसी शहर में मकान बना लेता है। जिसके फलस्वरूप माता–पिता से दूर रहने के कारण बेटा–बहू स्वेच्छाधारी बन जाते हैं। वृद्धावस्था में जब पिता सेवानिवृत हो जाता है तो माता–पिता सोचते है कि चलो तमाम जीवन बच्चों के बिना रहे हैं अब वृद्धावस्था में बच्चों के पास जाकर आराम से रहेंगे, परन्तु जब माता–पिता बेटा–बहू के पास आकर रहने लगते है तो बेटा तो माता–पिता की सेवा करके अपने को भाग्यशाली समझता है परन्तु बहू सास–ससुर को स्वीकार नहीं करती, अपनी सास से यहां तक कह देती है कि ये मेरा घर है यहाँ से निकल जाओ। इसके अतिरिक्त पोता–पोती भी दादा–दादी को स्वीकार नहीं करते वे यहां तक कह देते हैं कि आपके आने से पहले हम यहां पर ठीक प्रकार से रह रहे थे आपके आने के उपरान्त सब कुछ गड़बड़ हो गया और अब हम परेशान हैं। इन परिस्थितियों में वृद्धावस्था में माता–पिता जहर के–सा घूंट भरकर रह जाते है क्योंकि उनके पास एक ही बेटा है इन परिस्थितियों में उनके पास और कोई विकल्प नहीं है। आज का वृद्ध घुट–घुट कर अपना जीवन व्यतीत कर रहा है अतः सभी पाठकों को इस समस्या का विकल्प ढूढ़ना चाहिए।

डॉ0 राजनारायण शुक्ला,
सम्पादक

डॉ0 हरिशरण वर्मा,
प्रधान सम्पादक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	काव्य–जगत को आचार्य मम्मट की देन	कनक लता कुमारी	10–11
2.	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन, साहित्य और दर्शन	डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय	12–14
3.	कृष्णा सोवती की कहानियों में नारी पृष्ठभूमि एक अवलोकन	डॉ0 गोपाल कृष्ण यादव	15–16
4.	गुप्तकालीन समाज	मन्दीप शर्मा	17–19
5.	प्रेमचंद के कथा साहित्य में सर्वहारा वर्ग का आन्दोलन	डॉ0 कुमारी विजय लक्ष्मी	20–23
6.	कुषाण काल में कला का विकास	मन्दीप शर्मा	24–26
7.	वाल्मीकि रामायण में नारियों की स्थिति	डॉ० नीलमणि कुमार पाठक	27–28
8.	अमरकांत की कहानियों में सामाजिक यथार्थ	डॉ0 मृत्युंजय कोईरी	29–31
9.	प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व	डॉ. दीपक कुमारी	32–34
10.	औपचारिक शिक्षा में छात्र–शिक्षक पारस्परिक सम्बन्धों का महत्व	डॉ0 मधुलिका पाण्डेय, डॉ० सरोजनी सहाय	35–36
11.	'कितने पाकिस्तान उपन्यास में' कमलेश्वर की सांस्कृतिक चेतना	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	37–38
12.	**जनसंख्या-समस्या कारण, निवारण (भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन)**	पवन कुमार सिंह	39–41
13.	भारती के उपन्यासों में चित्रित प्रणय भावना	डॉ0 कृष्णा हुड्डा	42–44
14.	ब्रज लोक कहावतों की प्रासंगिकता	डॉ0 केशवदेव शर्मा	45–46
15.	हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में गमक एंव उसके प्रकार	डॉ0 कृष्णा देवी	47–50
16.	जन जागरण और हिंदी पत्रकारिता	डॉ. राजेश कुमार, प्रमिला देवी	51–52
17.	भारत की नींवः नई शिक्षा नीति	शैफाली गर्ग	53–54
18.	डॉ0 हेमराज निर्मम के रेडियो नाटकों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	55–56
19.	मात्रभाषा	डॉ0 कंचन कुमारी	57–59
20.	भारत में दलितों की आर्थिक स्थिति एवं विकास में डॉ० अम्बेडकर की अहम योगदान	डॉ0 मिथलेश कुमार	60–62
21.	मानव सशक्तिकरण में स्वास्थ्य एवं पोषण की प्रासंगिकता	मंजू बाला	63–65
22.	उषा प्रियवंदा की कहानियों में स्त्री विमर्श एक विवेचण	डा0 गोपाल कृष्ण यादव	66–67
23.	भगत सिंह का मूल वैचारिक तत्वः एक अध्ययन	अश्वनी कुमार	68–73
24.	**संस्कृत काव्य में कुंतक के वक्रोक्ति का ऐतिहासिक आधार**	डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी	74–76
25.	विश्व भाषा की ओर हिंदी	डॉ0 प्रवेश कुमारी	77–79
26.	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सरोकार के समन्वयवादी संत कवि बौआ साहब का दर्शन	पप्पु कुमार	80–82
27.	समकालीन दौर में कविता की सामाजिक भूमिका और गोरख पाण्डेय की काव्य–दृष्टि	अभिमन्यु कुमार राय	83–84
28.	भारतेन्दु की नाट्यकला – एक परिशीलन	संजीव मिश्र	85–87
29.	भारतीय दलितों की सामाजिक, धार्मिक समस्याओं का विश्लेषण	डॉ० मिथलेश कुमार	88–90
30.	कबीरदास–एक क्रांतिकारी कवि	डॉ. सुधा शर्मा	91–92
31.	धर्मबीर भारती के उपन्यास गुनाहों का देवता में सामाजिक समस्याएँ	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	93–94
32.	Impact of accessibility and usage of electronic knowledge services on the efficiency of students in selected technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.	Dharmender Singh1, Dr. Dharampal Singh, Dr. Ram Chander	95–98
33.	Conflict Between Tradition and Modernity in Bhabani Bhattacharya's Novel "Music for Mohini"	Sunita Singh1	99–102
34.	Psychological Analysis of Human characters in Mulk Raj Anand's stories	Dr. Navanit Kumar	103–106
35.	On Functional Relation Of Matrix Argument	Dr. Kumari Saraswati	107–108
36.	Uniform Civil Code: The Necessity And The Absurdity	Dr. Santosh Kumar Sharma	109–112
37.	ROLE OF TECHNOLOGY IN ENHANCING TEACHER PREPARATION	Ms. Kavita Kumari	113–116
38.	पंत की ताज कविता का पूनर्मूल्यांकन	अशोक कुमार	117–118
39.	लोक साहित्य की अवधारणा और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ	संजय कमार	119–120
40.	बदलते गाँव और प्रेमचन्द की यादें	चंद्रमणि किशोर	121–122
41.	भक्ति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग	संजय कुमार	123–124
42.	राष्ट्रीय एकता के प्रतीक : लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल	डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय	125–127
43.	रक्तदान जागृति का मंत्र फूंकता डॉ मधुकांत का उत्कृष्ट उपन्यास ''गूगल बॉय''	पुस्तक समीक्षा डॉ0 रमा कान्ता	128–128

1

काव्य-जगत को आचार्य मम्मट की देन

कनक लता कुमारी

सारांशः–

आचार्य मम्मट विरचित 'काव्यप्रकाश' अलंकारशास्त्र का अद्‌वितीय ग्रंथ है। संस्कृत वाड्मय में अलंकारशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अलंकारशास्त्र के द्‌वारा काव्य के गुण दोषों का निरूपण किया जाता है। कविजन की कृति का प्रसार अलंकारशास्त्र के आधार पर ही किया जाता है। इसके अध्ययन से ही काव्य- कर्ता काव्य के गुण-दोष आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार भाषा ज्ञान के लिए व्याकरण अपेक्षित है उसी प्रकार काव्य रचना में निपुण्य प्राप्त करने के लिए अलंकारशास्त्र का अनुशीलन आवश्यकता है। काव्योत्पत्ति में ही नहीं, काव्य प्रसार में, काव्य को लोकप्रिय बनाने में भी अलंकारशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। काव्यजगत में अलंकार-संप्रदाय के कई आचार्य हुए जैसे-भामह, दंडी, भटोद्भट, वामन, रूद्रट, आनंदवर्धन राजशेखर, कुन्तक भोजराज, क्षेमेंद्र, मम्मट। इनमें आचार्य मम्मट प्रमुख है। इन्होंने अलंकार संप्रदाय के किसी भी आचार्यों का अनुसरण नहीं किया यद्‌यपि उन्हें ध्वनि के प्रचारक तथा समर्थक के रूप में स्मरण किया जाता है। उनके काव्यप्रकाश में आरंभ से अंत तक ध्वनितत्व का ही आधार ग्रहण किया गया है। ध्वनिकार ने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर जिस सार्वभौम ध्वनि सिद्धांत की प्रतिष्ठा की थी, अभिनवगुप्त ने जिसका रस आदि के साथ सुंदर सामंजस्य किया था और अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमेंद्र ने औचित्य- संप्रदाय में जिसका समन्वित रूप प्रस्तुत किया था,

उस ध्वनि तत्त्व को आचार्य मम्मट में काव्य की उत्तमता का प्रायोजक माना है फिर भी वे केवल ध्वनि को काव्य की आत्मा नहीं मानते। उन्होंने विविध काव्यवादो में से एक समन्वित मार्ग निकाला और उसके द्‌वारा काव्य की वास्तविक आत्मा की अनुभूति कराने का प्रयास किया। वस्तुतः काव्य किसी वाद- विशेष में संबंध नहीं रखता। विविध काव्य संप्रदायों के आचार्यों ने काव्य के एक-एक पहलू का निरूपण किया है। उन्होंने तत्वदर्शी मनीषी की भांति काव्य के व्यापक स्वरूप पर दृष्टिगत नहीं किया है। आचार्य मम्मट ने काव्य के क्षेत्र में समन्वय का यह महान् कार्य किया।

अलंकार शास्त्र के प्रथम आचार्य भामह ने काव्य के अलंकार, रचना-कौशल,आदि का ही मुख्य रूप से विवेचन किया था। आचार्य दंडी ने इस विवेचन को कुछ अधिक विस्तृत किया। रीतिवादी आचार्य वामन ने अलंकार का अर्थ व्यापक कर दिया-सौंदर्यमलड्कार:, इसी प्रकार रूद्रट आदि आचार्यों ने काव्य का कुछ अधिक विशद विवेचन किया। किंतु अलंकारवादी और रीतिवादी आचार्य काव्य वहिरड्ग का ही निरूपण करते रहे। उनका ध्यान काव्य की कलात्मकता की ओर ही रहा। उन्होंने काव्यानुभूति अथवा रस की ओर ध्यान नहीं दिया। उधर रस संप्रदाय में एक प्रकार के विशेष आनंद को ही काव्य का सर्वस्व मान लिया गया और विचार तथा कल्पना तत्व की ओर से उदासीनता दिखाई गई। ध्वनिकार ने इन त्रुटियों को देखा और काव्य का सामंजस्यपूर्ण विश्लेषण करने का प्रयास किया। किंतु ध्वनि संप्रदाय का भी मुख्य लक्ष्य ध्वनिनिरूपण ही बना रहा। वक्रोक्ति संप्रदाय ने ध्वनि रस और अलंकार आदि को समन्वित करते हुए भी उक्ति विचित्र्य को ही अपने समक्ष रखा। क्षेमेंद्र ने समस्त काव्यागों में औचित्य की ओर ध्यान दिया किंतु वह भी इस नवीन प्रस्थान के उद्भावक मात्र बनकर रह गए। उसमें प्राण प्रतिष्ठा ना कर सके।

आचार्य मम्मट ने काव्य के वहिरड्ग तथा अंतरंग दोनों पक्षों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने प्राचीन आचार्यों के एकांगी काव्य लक्षणों को समन्वित करके एक सर्वांगपूर्ण काव्य लक्षण का निरूपण किया है। यह ऐसा लक्षण है जिसमें काव्य का शरीर शब्द और अर्थ के रूप में प्रकट हो रहा है। उसकी आत्मा सगुणौ द्‌वारा अभिव्यक्त हो रही है। अदोषौ के द्‌वारा उसके वहिरंग तथा अंतरंग की निर्दोषता दिखाई गई है। सभी प्राचीन तथा अर्वाचीन लक्षणों की अपेक्षा मम्मट का काव्य लक्षण-"तददोषौ शब्दार्थौ सागुणा अनलंकृति पुनः क्वापि।" अधिक व्यापक है। यह सर्वग्राही है। काव्यकला तथा सहृदयानुभूति दोनों का संग्रह इसमें हो जाता है। इसमें काव्य के समस्त अंग परिलक्षित होते हैं। यदि काव्य का स्वरूप शब्दों द्‌वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है, यदि काव्य की कोई परिभाषा हो सकती है तो मम्मट का काव्य लक्षण अग्रगण्य है। इसमें संदेह नहीं। इनके काव्य लक्षण में प्राचीन आचार्यों के काव्य लक्षणों का सार संगृहित है। उत्तर- कालीन अलंकारशास्त्र के आचार्य हेमचंद्र, वाग्भट आदि ने काव्यप्रकाश का ही काव्यलक्षण अपनाया है। कविराज विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ ने नवीन काव्य लक्षण देने का प्रयास अवश्य किया है किंतु उनके काव्य-लक्षण निरूपण में सर्वांगीणता नहीं आ सकी है।

इस काव्य स्वरूप के आधार पर ही काव्यप्रकाश में काव्य के समस्त अंगों का विवेचन किया गया है। काव्य-प्रयोजन,काव्य-हेतु, काव्य-भेद, ध्वनि, रस, गुण- दोष, अलंकार इन सभी काव्य - विषयक विवेचनाआओं में मम्मट ने समन्वयवादी दृष्टकोण ही अपनाया है और काव्यप्रकाश में समस्त काव्य तत्वों का संक्षिप्त किंतु विशद विवेचन किया है।

१.अलंकारशास्त्र के विविध वादों का समन्वय। २.काव्य के समस्त अंगों का यथायोग्य निरूपण। ३. विशिष्ट काव्य प्रयोजन की स्थापना,काव्य का पारमार्थिक प्रयोजन रसास्वाद है यह सरस उपदेश से समन्वित है तथा-अर्थ लाभ आदि व्यवहारिक प्रयोजनों विशिष्ट है। यह ऐसा व्यापक प्रयोजन है जो लोकोत्तरवर्णना निपुण कविकर्म तथा सहृदयों की रसानुभूति दोनों के साक्षात् संबंध रखता है। ४. शक्ति निपुणता और अभ्यास को सम्मिलित रूप से काव्य का हेतु मानना। ५. काव्य का सर्वांगीण लक्षण प्रस्तुत करना, जिसमें रस,अलंकार, गुण और ध्वनि। ६. शब्द,अर्थ तथा शब्द वृत्तियों का विशद-निरूपण-आनंदवर्धन ने जिस व्यंजना वृत्ति की स्थापना की थी, अभिनवगुप्त जिसके रस समन्वित स्वरूप की व्याख्या क थी, मम्मट ने इस व्यंजना का भली-भांति प्रतिष्ठापन किया। साथ ही महिमभट्ट आदि का बलपूर्वक खंडन करते हुए यह भी बताया कि व्यंग्यार्थ अनुमेय नहीं हो सकता। अभिधा और लक्षणा के विषय में भी कितनी ही भ्रांतियों का समूल उच्छेदन किया, जिनका काव्यप्रकाश की व्याख्या में यथावसर उल्लेख किया गया है। ७. सर्वग्राही काव्य प्रकार- उत्तम, मध्यम तथा अधम। काव्य प्रकारों में उन समस्त कृतियों का समावेश हो जाता है जिन्हें सहृदय जनों ने किसी भी दृष्टिकोण से काव्यपद के योग्य माना है। ९.साधारणीकरण की विशद व्याख्या, - विभावादि की अलैकिकता की स्थापना तथा रस-निष्पत्ति-संबंधी विविधवादों की समीक्षा करते हुए अभिनवगुप्त समस्त

रसाभिव्यक्तिवाद की मान्यता का समर्थन। रस की अलौकिकता का निरूपण। १०. देवविषयक रति आदि की भावरुपता मानकर नवरसों का निर्णय।११. ध्वनिकार निर्दिष्ट गुण तथा अलंकार का भेद-निर्णय, गुणों की रसधर्मता का निरूपण तथा तीन गुणों की मान्यता।११. ध्वनिवाद के साथ गुणों का सुंदर सामंजस्य और उनका वैज्ञानिक विभाजन।१२ अलंकारों का रस तथा ध्वनि के साथ समन्वय। १३. प्राचीन मतों की समीक्षा करते हुए अलंकारों का विशद विवेचन उद्भट, रुदद्रट आदि की अलंकार विषयक मान्यताओं का परिष्कार। १४. शब्दालंकार अर्थालंकार तथा उभयालंकार की मान्यता का आधार निर्णय। १५. प्राचीनोक्त अलंकार दोषों का सामान्य दोषों में अन्तर्भाव।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रतीत होता है कि मम्मट का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है। काव्य आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने व्यवस्था स्थापित की है। अलंकारशास्त्र में नवीन मार्गों के उद्भावक भामह, वामन, आनंदवर्धन, कुन्तक और क्षेमेंद्र की श्रेणी में वे नहीं हैं। उनका एक अनूठा मार्ग है, वे अलंकार- शास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य है, जिन्होंने काव्य-जगत के विभिधवादों को सदा के लिए समाप्त कर दिया और विविध समीक्षाशैलियों का सुंदर समन्वय किया है। उन्होंने एक ऐसे सार्वभौम सिद्धांत की प्रतिष्ठा की है जो युग युग तक सर्वमान्य रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

१.काव्यप्रकाश
२.भाषा-विज्ञान
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास
४. काव्यदीपिका
५. काव्यादर्श

कनक लता कुमारी
संस्कृत-विभाग
एस० बी० कॉलेज,आरा
भोजपुर, बिहार

2

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन, साहित्य और दर्शन

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

सारांशः–

''तू कालोदधि का महास्तंभ, आत्मा के नभ का तुंग केतु, बापू! तू मर्त्य–अमर्त्य, स्वर्ग–पृथ्वी, भू–नभ का महासेतु।तेरा विराट यह रूप कल्पना–पट पर नहीं समाता है,

जितना कुछ कहूं, मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है।''

–दिनकर (बापू)

किसी को समय बड़ा बनाता है और कोई समय को बड़ा बना देता है। कुछ समय का सही मूल्यांकन करते हैं और कुछ आने वाला समय का पूर्वाभास पा जाते हैं। कुछ लोग अतीत को परत दर परत तोड़ कर उसमें वर्तमान के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक ऐसे ही युग पुरूष थे, जिन्होंने समय को बड़ा बना दिया और वर्तमान की समस्याओं से कभी मुंह नहीं मोड़ा।

कहते हैं प्रतिभा कभी छिपाये नहीं छिपती। महान पुरूष के सद्गुण मृग में बसी कस्तूरी मृग के समान होते हैं जिसकी सुगन्ध बरबस सब को अपनी ओर खींच लेती है। ऐसे ही युग पुरूष थे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जिनकी, सरलता, सादगी, त्याग, बुद्धिमता एवं दूरदर्शीता, को भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में सराहा गया।

राष्ट्र पर जब–जब संकट का काल–मेघ छाता है; तब–तब प्रभु स्वयं या अपने प्रधान प्रतिनिधि को राष्ट्ररक्षा के लिए भेजते हैं। हमारा देश भी जब अंग्रेजों के अत्याचार से कराह रहा था; जब भारत माता स्वतंत्रता देवी के रूप में परतंत्रता के कारागार में बंदिनी थी, तब उन्हें मुक्त करने के लिए मोहन ने मोहनदास के रूप में अवतार ग्रहण किया।

धन्य है 2 अक्टूबर 1869 का वह शुभदिन जब मोहनदास का जन्म गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान में हुआ था, आज पोरबंदर हमारे लिए अयोध्या, मथुरा, काशी, हरिद्वार, कपिलवस्तु आदि की तरह पवित्र तीर्थ स्थान बन चुका है। गांधी जी के पिता का नाम करमचंद गांधी और माता का नाम पुतली बाई था। **'गांधी'** उनकी वंशगत उपाधि थी। गुजरात तथा दक्षिण के राज्यों में अपने नाम के आगे पिता का नाम लगाने का प्रचलन है और उसके आगे वंशगत उपाधि लगाई जाती है। इसलिए उनका पूरा नाम हुआ मोहनदास करमचंद गांधी; किंतु सारा संसार उन्हें गांधी के नाम से ही जानता है। राष्ट्र की प्रत्येक संतान को उन्होंने बापू की दृष्टि से देखा इसलिए वे **'बापू'** कहलायें। **'राष्ट्रपिता'** शब्द से संबोधित हुए। एक बार विदेश में पत्रकारों ने उनकी संतान संख्या जाननी चाही उनका विनीत उत्तर था– चालीस करोड़। ऐसा उदार था उनका हृदय। जबकि वास्तव में गांधी जी के चार पुत्र थे– हरिलाल गांधी, मणिलाल गांधी, रामदास गांधी और देवदास गांधी। उनके विचार में सभी भारतीय उनकी संतान थे।

गांधी जी भारतवर्ष के महान राजनेता थे। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने भारतीय जनता का नेतृत्व किया। भारत माता की परतंत्रता की बेड़ियों को काटने के लिए उन्होंने जीवन भर यातनाएं सहीं, परन्तु एक पग भी पीछे नहीं हटाया, साथ ही साथ वे उत्तम विचारक और श्रेष्ठ समाज सुधारक भी थे। उन्होंने समाज की बहुत सारी छिपी हुई कमियों को समाज के सामने लाया तथा उन्हें दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया। वे आजीवन सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चले और दूसरों को भी चलने के लिए प्रेरित करते रहें। गांधी जी ने देश की बहुमुखी सेवा की। निःसंदेह भारतवर्ष उनका ऋणी है और ऋणी रहेगा।

पढ़ना आसान है, बोलना सरल है परन्तु लिखना सर्वथा कठिन है। महात्मा गांधी एक राजनेता तो थे ही एक उत्तम विचारक और श्रेष्ठ समाज सुधारक भी थे। परन्तु वे एक उच्च कोटि कें पत्रकार और साहित्यकार भी थे। यह बात सर्वज्ञात है। गांधी जी एक प्रखर एवं कर्मठ पत्रकार थे। उनकी अवधारण थी– **''किसी भी देश की आजादी तभी अक्षुण्ण रखी जा सकती है जब वहां के नागरिक का आत्मिक, बौद्धिक और नैतिक विकास हुआ हो । और यह काम पत्रकारिता का है।''** उन्होंने इंडियन ओपिनियन–(04.06. 1903), यंग इंडिया, नवजीवन, हरिजन, सत्याग्रह आदि पत्रिकाओं का अनेक वर्ष तक सफल एवं कुशल संपादन किया। सत्य एवं न्याय की प्रतिष्ठा में अखबारों की महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका को लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा था कि– **''मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलायी जा सकती। ''अगर मैंने अखबार निकालकर दक्षिण अफ्रिका में बसी हुई भारतीय जमात को उसकी स्थिति न समझायी होती और सारी दुनिया में फैले हुए भारतीयों को दक्षिण अफ्रिका में क्या कुछ हो रहा है इससे इंडियन ओपिनियन' के सहारे अवगत न रखा होता तो मैं अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता था। इस तरह मुझे भरोसा हो गया कि अहिंसक उपायों से सत्य की विजय के लिए अखबार एक बहुत ही महत्वूपर्ण एवं अनिवार्य साधन है।''**

गांधी जी ने अपने आदर्शों के साथ कभी कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने पत्रकारों के लिए एक आधार भूमि बनायी और सिखलाया कि भले ही व्यक्तिगत क्षति क्यों न उठानी पड़े पर जनता के विश्वास और हित के सामने कभी नहीं झुकना चाहिए। वे मानते थे कि समाचार पत्र केवल समाचार पत्र नहीं बल्कि विचार पत्र हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है कि ''**अगर तुम्हे सही लिखने और उचित कार्य करने पर गिरफ्तार किया जाता हो जमानत देने सें इंकार कर या प्रकाशन बंद कर दो। प्रेस बंद करने में सरकार सफल भी होती है तो उससे अधिक महत्वपूर्ण है राष्ट्र का चिंतन।''** उन्होंने पत्रों के माध्यम से राष्ट्र के नागरिकों को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। उनमें राजनैतिक चेतना उत्पन्न की। गांधी जी के पहले पत्रिकायें घटनाओं का ध्यान मात्र खींच देती थी पर इन्होंने अपने पत्रों के माध्यम से साहित्य, संस्कृति, समाज, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों को पत्रकारिता से जोड़ा।

गांधी जी ने समाज में उपेक्षित अस्पृश्यों को नया नाम **'हरिजन'** दिया। **'हरिजन'** पत्र में उन्होंने अपने 'सपनों के भारत' के बारे में लिखा है कि –**'' मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें गरीब से गरीब लोग यह महसूस करेंगे कि यह देश उनका है**

कि उसके निर्माण में उनकी आवाज प्रभावकारी है। ऐसा भारत जिसमें ऊँची और नीची जाति के लोग नहीं होंगे।'' सांप्रदायिकता के बारे में उन्होंने लिखा कि –''**ऐसे भारत में सभी संप्रदायों के लोग पूर्ण सामंजस्य के साथ रहेंगे। छुआछूत के अभिशाप की गुंजाइश नहीं होगी। स्त्रियां भी पुरूषों के समान अधिकार का प्रयोग करेगी।''**

समाज में स्त्रियों की भागीदारी समान रूप से होनी चाहिए ऐसा वे मानते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है कि –''**स्त्रियों के सहयोग के बिना हमारी स्थिति उस अदूरदर्शी व्यापारी के समान है जो आधी पूंजी से व्यापार करता है।''** गांधी जी ने पहली बार स्वतंत्रता संग्राम से स्त्रियों को जोड़ा, जिससे स्वतंत्रता की आग जन–जन तक पहुंची। गांधी जी ने पत्रकारिता को स्वार्थ एवं व्यावसायिकता से दूर रहने की बात कही। पत्रकार जनता के हितों के प्रहरी हैं। अगर वही स्वार्थ लोलुप हो जायें तो राष्ट्र का भविष्य क्या होगा? यह बात वे अच्छी तरह जानत थे। लेखनी को बिल्कुल निष्पक्ष एवं उद्देश्यपूर्ण होना चाहिएं उन्होंने लिखा है कि –''**समाचार पत्र एक प्रचण्ड शक्ति है, परंतु जिस प्रकार निरंकुश जल का प्रचण्ड प्रवाह गांव के गांव डूबो देता है और सारी फसल का नाश कर देता है उसी प्रकार निरंकुश लेखनी का प्रवाह भी सर्वनाश का सृजन करता है।''** वस्तुतः गांधी जी स्वार्थपरता से बचकर ही सजग पत्रकार के रूप में जनमानस पर छा गये थे। भारत में फैली अशिक्षा एवं अंधविश्वास से वे चिंतित थे उन्होंने अपने पत्र में लिखा है कि– ''**एक अर्द्धशिक्षित राष्ट्र न कला की सोच सकता है, न धर्म की, न संगठन की। वे भारत में संगीत को लोकप्रिय बनाना चाहते थे।**'' इसे वे शिक्षा का एक माध्यम मानते थे। संगीत के संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि– **''यह अत्यंत खेद की बात हैं कि संगीत का अध्ययन हमारे देश में अपेक्षित है। इसके बिना पूरी की पूरी शिक्षा ही अधूरी मालूम पड़ती है। प्रसंग वश सिनेमा एवं थियेटर के बारे में उनकी सोच नकारात्मक थी। एक जगह उन्होंने लिखा है यदि मुझे देश का प्रधानमंत्री बनाया गया तो मैं सभी सिनेमा और थियेटरों को बंद कर दूंगा।''** बापू के चिंतन और विचार विशालकाय गांधी वांग्मय में संकलित है। गांधी जी की लेखनी का रचना संसार विस्तृत एवं व्यापक है–**1 आत्मकथा (सत्य के प्रयोग 2. प्रार्थना–प्रवचन (दो भाग), 3. गीता–माता, 4. पंद्रह अगस्त के बाद, 5. धर्मनीति, 6. ब्रह्मचर्य (दो भाग) , 7. आत्मसंयम, 8. दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह 9. अनीति की राह पर, 10 गीता–बोध, 11. अनासक्ति–योग, 12. ग्राम सेवा, 13. मंगल–प्रभात, 14. नीधि–धर्म, 15. आश्रवासियों से, 16. हमारी मांग, 17. एक सत्यवीर की कथा, 18. सर्वोदय, 19. हिन्द–स्वराज्य, 20. हृदय–मंथन के पांच दिन, 21. बापू की सीख, 22. गांधी शिक्षा (तीन भाग), 23. आज का विचार (दो भाग), 24. गांधी जी ने कहा था (नौ भाग) 25. भारत स्वतंत्र कैसे हो?**

गांधी जी का संपूर्ण लेखन गांधी वांगमय के रूप में प्रकाशित हो चुका है, जो साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में समादृत है। यों तो उनका समग्र लेखन महत्वपूर्ण और राष्ट्रोत्थान के लिए समर्पित है परन्तु उनके संपूर्ण लेखन में उनकी आत्मकथा' **सत्य के मेरे प्रयोग'** अत्यन्त विशिष्ट है। आत्मकथा लिखना अत्यन्त ही दुःसाहस का कार्य है। उनके एक निर्मल साथी ने उन्हें आत्मकथा लिखने से मना किया था। **'' आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है, पूरब में तो किसी ने लिखी जानी नहीं और लिखेंगे क्या? आज जिस वस्तु को आप सिद्धांत के रूप में मानते हैं उसे कल मानना छोड़ दें तो? अथवा सिद्धांत का अनुसरण करके जो भी कार्य आप करते हैं उन कार्यों में बाद में हेर–फेर करें तो? बहुत से लोग लेखों को प्रमाणभूत समझकर उनके अनुसार अपना आचरण गढ़ते हैं, वे गलत रास्ते चले जाये तो? इसलिए सावधान रहकर फिलहाल आत्मकथा जैसी चीज न लिखें तो क्या ठीक न होगा?** गांधी जी ने कहा कि –''**मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है, मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओत–प्रोत होने के कारण कथा एक जीवन वृतांत जैसी बन जायेगी लेकिन, अगर उसके हर पन्ने पर मेरे प्रयोग ही प्रकट हों तो मैं स्वयं उस कथा को निर्दोष मानूंगा। मैं ऐसा मानता हूं कि मेरे सब प्रयोगों का पूरा लेखा जनता के सामने रहे, तो वह लाभदायक सिद्ध होगा अथवा यों समझिये कि यह मेरा मोह है। राजनीति के क्षेत्र में हुए मेरे प्रयोगों को तो अब हिंदुस्तान जानता है। यही नहीं बल्कि थोड़ी बहुत मात्रा में सभ्य कही जाने वाली दुनिया भी जानती है। ..... मुझे जो करना है, तीस वर्षों से मैं जिसकी आतुर भाव से रट लगाये हुए हूं वह तो आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है मोक्ष। मेरे सारे काम इसी दृष्टि से होते हैं। मेरा सब लेखन भी इसी दृष्टि से होता है और राजनीति के क्षेत्र में मेरा पड़ना भी इसी के अधीन है।''**

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में कई महत्वपूर्ण घटनाओं का निर्भीक होकर उल्लेख किया है। गांधी जी की लेखनी जन कल्याण में रमती थी, वह भी विशेषतः निर्धन और कमजोर के लिए। गांधी जी ने अपनी लेखनी से हम सबको एक जंतर दिया है– **तुम्हें एक जंतर देता हूं, जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहं तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओं– जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा? क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा। जिनके पेट भूखे है और आत्मा अतृप्त है। तुम तब देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होते जा रहा है।''**

महात्मा गांधी का समग्र लेखन सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम और अपरिग्रह का ज्वलन्त उदाहरण है। उनका संपूर्ण जीवन राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित दिव्य सुगंधित सुमन है। उनका सारा जीवन और लेख सत्य का प्रयोग है। सत्य रूपी सूर्य की किरण से ही उनका पथ प्रोद्भसित हुआ है। वे विभिन्न क्षेत्रों से मधु बटोरते रहे और वे अपने साधना पथ पर बढ़ते रहे। वे 'भगवद्गीता' : तुलसीकृत 'रामचरितमानस' रस्किन की पुस्तक 'अन टू दि लास्ट, खलील जिब्रान की पुस्तक द प्रोफेट , स्वामी विवेकानंद के 'राजयोग' तथा पतंजलि के योगसूत्र से पाथेय लेकर ही संग्राम पथ पर निकल पड़े थे।

महात्मा गांधी बंधनमुक्त जीवन के जन्मदाता थे। वे मानवशास्त्र के हितचिंतक थे। वे उनके तन के चितेरे नहीं वरन् आत्मा के महान शिल्पी थे। उनके आदर्श पुरूष थे मर्यादापुरूषोत्तम श्रीराम और उनका आदर्श राज्य था रामराज्य। मानवता को संवारने के लिए विश्ववंद्य महामानव बापू ने आत्मबलिदान किया। उनकी लेखनी की पवित्रता और तेज का प्रभाव राजा एवं रंक सब पर एक समान पड़ता था। उनका विचार था –**''सच्चे रहो और हृदय को निर्मल और सख्त रखो, दुख में भी प्रसन्न रहो तथा भय और विपत्ति में स्थिर रहो। जीवन में प्रीति रख मृत्यु से मत डरो।''** नामी अंग्रेज होरेस एलेक्जेंडर ने बापू से पूछा – क्या आप अंग्रेजों के लिए कोई संदेश देंगे, तो बापू ने झट कहा– सबसे पहली बात हम यह चाहते हैं कि अब आपलोग हमारी गर्दन पर सवार न रहें। छायावादी कवि सुमित्रनंदन पंत ने ठीक ही लिखा है कि–

बापू! तुमसे सुन आत्मा का तेज राशि आह्वान।
हंस उठते हैं स्नेह हर्ष से पुलकित होते प्राण।।
नवसंस्कृति के दूत, देवताओं का करने कार्य।
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवार्य।।

राष्ट्रकवि दिनकर ने गांधी जी के संदर्भ में लिखा है कि– **बापू ने सत्य, अहिंसा और प्रेम का जो मार्ग दिखलाया है उसपर चलकर विश्व का कल्याण सुनिश्चित है–**

बापू ने राह बता डाली, चलना चाहे संसार चले।
डगमग होतें हों पांव अगर तो, पकड़ प्रेम का तार चलें।।

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष : 9431595318, 9386336807
Email - pandey_ru05@yahoo.co.in

3

कृष्णा सोवती की कहानियों में नारी पृष्ठभूमि एक अवलोकन

डॉ0 गोपाल कृष्ण यादव

सारांशः–

समाज की वर्जनाओं और निषेधों के कारण प्रायः प्रेम संबंध सफल नहीं होते इसकी अभिव्यक्ति कृष्णा सोबती ने बखुबी अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

नई कहानी आन्दोलन में कृष्णा सोबती अकेली कहानीकार हैं जिन्होंने इतनी कम कहानियाँ लिख कर अपनी विशेष पहचान बनाई है। उनकी प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह 'बादलों के घेरे' सन 80 में प्रकाशित हुआ। लेकिन इसकी अनेक कहानियाँ नई कहानी आन्दोलन में चर्चित हो चुकी थी। इसके पूर्व उनकी अन्य चर्चित और विवादास्पद मानी जाने वाली कहानियाँ– 'मित्रों मरजानी'– 'यारों के यार' 'तिन पहाड़' आदि तब प्रकाशित हुई जब नई कहानी का आन्दोलन लगभग उत्तर चुका था। इसके बाद उनकी सिर्फ दो कहानियाँ और छपी है– 'ऐ लड़की' और नामपट्टिका'। अपने कम लिखने के कारणों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है, 'मुझ में एक गहरा ठंडापन है। कभी–कभार लिखने बैठ भी जाती हूँ तो वह मेरे निकट समूची प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है। कुछ भी लिखना विकट एक गम्भीर और जोखिम भरी स्थिति बन जाती है। इसलिए मैं अपने लेखक को कभी पटाती नहीं। दाँव पर नहीं लगाती। अपने से हटकर मैं उसे दूसरा व्यक्ति समझती हूँ और उसकी इज्जत करती हूँ। (1) कई कहानी के बेहद आत्मपरकता वाले दौर में लेखक और भोक्ता के बीच की यह दूरी किसी हद तक आश्चर्यजनक लग सकती है। ऐसा नहीं है कि कृष्णा सोबती के अपने अनुभव और आग्रह उनकी कहानियों में न हों, लेकिन उनके आधार पर उनके जीवन प्रसंगों में प्रवेश की वैसी छूट नहीं मिलती जैसी उस दौर के अन्य बहुत से लेखकों के साथ मिलती है। उनकी कहानियाँ उनके अनुभवों का ताप संजोए रखकर भी उन्हें आत्मवृत्तांत के रूप में लिए जाने की छूट प्रायः नहीं देती।

'बादलों के घेरे' में उनकी लम्बी कथा–यात्रायें समेटती चौबीस कहानियाँ हैं। इसमें उनकी एकदम आरंभिक दौर की कहानियों में 'नफीसा' और 'लामा' सन 1944 की है और 'दो राहे : दो बाहें' सन 59 में मूलतः सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' के एक अध्याय के रूप में लिखित है, जिसमें पात्रों एवं घटना–प्रसंगों को लेकर अधिक मौलिक और नया करने की अधिक गुंजाइस नहीं थी। इन कहानियों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे कहानियाँ आती है जिन्हें आम तौर पर प्रेम और स्त्री–पुरूष सम्बन्धें की कहानियाँ कहा जाता रहा है। 'बादलों के घेरे' 'कुछ नहीं कोई नहीं' 'दो राहे : दो बाहें' आदि उसी वर्ग की कहानियाँ है। इन कहानियों में ही उनकी उन कहानियों के विकास–सूत्र खोजे जा सकते हैं जो आगे चलकर ' मित्रों मरजानी' और 'तीन पहाड़' जैसी कहानियों में पूर्णतः पाते है।। इन कहानियों में, उस दौर के अन्य लेखकों की तरह, एक सैलानी किस्म की युवती को केन्द्र में रखकर, असफल प्रेम की रोमानी और काफी कुछ भावुक लगने वाली स्थितियों को बुना गया है। इन कहानियों का दूसरा वर्ग उन कहानियों से बनता है जिसमें स्त्री की नियति को उसके परिवेशगत द्वन्द्वात्मक सम्बन्धें के सन्दर्भ में आंकने की कोशिश की गई है। इन कहानियों में कृष्णा सोबती निषेध और नकारवादी दृष्टि को खारिज करती हुई स्त्री की यातना को उसके पुरे सामाजिक परिपेक्ष्य में अंकित करती हैं। 'बदली बरस गई' गुलाब जल गंडेरियाँ' और 'आजादी शम्भोजान की ' आदि इस वर्ग की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इन कहानियों का तीसरा वर्ग अविभाजित पंजाब और देश विभाजन की त्रासदी, यातनाओं और विडंबनाओं से संबंधित है। मानवीय सदभाव के क्षरण वाले उस भयावह दौर में भी भावुक हुए बिना कृष्णा सोबती उस मानवीय तत्व को रेखांकित करती है जो मनुष्य में बचे हुए विश्वास को जिन्दा रखे हुए था। 'सिक्का बदल गया' 'डरो मत' मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' और ' मेरी माँ कहाँ....' आदि कहानियाँ इसी दृष्टि से देखी जानी चाहिए। जिन लोगों को कृष्णा सोबती का उपन्यास 'जिन्दगी नामा ' उनके अपने लेखन के सदंर्भ में एक आकस्मिक घटना जैसा लगता है, उन्हें उनकी 'कलंगी' 'जिगरा की बात' 'दादी–माँ' ' बहने' और 'भोले बादशाह' आदि कहानियाँ देखनी चाहिए। 'कृष्णा सोबती की प्रेम संबंधी कहानियाँ अपने सारे रोमानी और भावुक मिजाज के बावजूद, इस तथ्य को नये सिरे से उद्घाटित करती हैं कि तन का धर्म मन के धर्म से अलग नहीं होता। नई कहानी आंदोलन के दौर में जैनेंद्र और अज्ञेय की मनोवैज्ञानिक कहानियों के विरूद्ध काफी कुछ लिखा गया। कृष्णा सोबती उसी परिवर्तित दृष्टि के रचनात्मक स्तर पर व्यक्त करती है। 'बादलों के घेरे' उपर से देखने पर बेहद रोमानी सी कहानी है। उसकी नायिका मन्नो तपेदिक की मरीज है जो अपने संबंधियों की उदासीनता झेलती भवाली के सेनेटोरियम में पड़ी है। एक दिन जब वह अपनी चाची के यहाँ परिवार से मिलने नैनीताल आती है तो दो दिन रूकने के बात होने पर भी वह एक ही दिन बाद वापस लौट जाती है। उसका खाना नौकर द्वारा उसके कमरे में भिजवा दिया जाता है। रवि अकेला व्यक्ति है, बहारी होने के बावजूद जो उसके लिए सहानुभूति ' प्रेम और अपनत्व की जरूरत को समझता है। मन्नो अपनी भावनाओं के ज्वार को कभी बाहर नहीं निकलने देती बुआ मन्नों की इस विडम्बना को समझती है। मन्नो के इस दुर्भाग्य में उसकी अपनी भूमिका भी रही है। दस वर्ष बाद जब मन्नो कभी की जा चूकी है, उसी स्थिति में उसी कॉटेज में, सामने वाले पाइन्स देखते हुए रवि को अभी भी वह विश्वास हौसला देता है कि आज वह होती तो मुझे झेल लेती। ऐसा कुछ कहकर कृष्णा सोबती प्रेम की शक्ति का ही संकेत कर रही होती जिसके अभाव ने मन्नो को मन्नों बना दिया और साहस के अभाव में जिसे स्वीकार न कर पाने के कारण रवि भी उसी राह आ लगा है। 'कुछ नही–कोई नहीं' और 'दोहरी सांझ' जैसी कहानियाँ प्रेम के इसी दुर्निवार आकर्षण को उद्घाटित करती हैं, जिसमें थोड़ी देर को सारे नैतिक और परम्परागत मान–मूल्य बाद में नदी किनारे के वृक्ष की तरह बह जाते हैं। .....'जो हो ही जाए उसका फिर कहना–कराना किसके वश होता है '' । 'सिक्का बदल गया' विभाजन की पृष्ठभूमि पर

मानवीय सदासइता को गहरी संवेदनशीलता से अंकित करती है। 'यारों के यार' में कृष्णा सोबती जैसे दीवार में लगे छोटे आकार वाले पारदर्शी शीशे में से बाहर की पुरी दुनिया पर टिप्पणी करती है। दफ्तर की दुनिया का कुआं बाहर के हराते हुए समुद्र का बोध कराता है। साथियों और यारों के सद्वचनों, फिकरेबाजियों और चूल्हों से पुरी कहानी गुंजती रहती है। दफ्तर के नियम और कायदे ही बाहर की दुनिया पर भी लागू होते है।। मनवीय संबंधों का क्षरण, नंगई और धोखेधड़ी को आदमी का निबाह बना लेना, काले धन की समानांन्तर व्यवस्था गरज यह कि जो दफ्तर में वही सब कुछ बाहर है। कभी इस कहानी की भाषा को लेकर गहरा विवाद लम्बे समय तक बना रहा था। कृष्णा सोबती बौद्धिक और किताबी सहानुभूति से बचकर परिवेश के बीच से हाड़–मांस की वास्तविक स्त्री को मित्रों के रूप में गढ़कर 'मित्रों मरजानी' में एक सम्पूर्ण और कद्दावर औरत को जैसे पहली बार हिन्दी कहानी की जमीन पर खड़ा करती हैं। उसकी जिन्दादिली, चुहल और खिलंदरापन उसे एक ऐसा व्यक्तित्व देते हैं, जो आतंक और पीड़ा एक साथ उपजति हैं। देशज शब्दों के मेल से बने तद्भवों द्वारा कृष्णा सोबती मिन्नों और उसकी मिट्टी के संबंध को अप्रतिम शक्ति से अंकित करती है। ' एक लड़की ' और 'नापमट्का ' जैसी कहानियाँ 'बदली बरस गई' का ही विस्तार है ..... अपनी सम्पूर्णता में ..... जिनमें जीवन के प्रति गहरी आसक्ति और स्त्री की सघन पहचान अपना अर्थ तलाशती दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

निः संदेह समाज में स्त्री की बदलती हुई स्थितियों के कारण ही मध्य वर्गीय स्त्री समाज की एक विशिष्ट पहचान स्थापित हो पायी है। जिसका चित्रण नई कहानी में स्पष्ट देखने को मिलता है ।

संदर्भ :

1. सारिका, जनवरी 79 पृष्ठ–9
2. बादलों के घेरे पृष्ठ–81

डॉ0 गोपाल कृष्ण यादव
हिन्दी विभाग
आर0वाई0 मनिहारी कॉलेज, मनिहारी
कटिहार, बिहार
मो0 न0–9905294779
पुत्र श्री राम नरेश यादव
ग्राम मिर्जापुर बाबर वाया मनिहारी,
जिला कटिहार (बिहार)
पिन–854113

4

गुप्तकालीन समाज

मन्दीप शर्मा

सारांशः–

गुप्त साम्राज्य का संस्थापक 'श्री गुप्त' को माना जाता है तत्पश्चात् घटोत्कच सम्राट बना। किंतु गुप्त काल का वास्तविक एवं प्रथम प्रबल सम्राट चन्द्रगुप्त था। गुप्तकालीन सम्राटों में सफलतम सम्राट समुद्रगुप्त था। गुप्त सम्राटों के लेखों, अन्य पुरातात्विक सामग्री, समसामयिक साहित्य तथा फाहियान के यात्रा विवरण से गुप्त कालीन व्यवस्था के विषय में सूचनाएँ मिलती है। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। शासन की सर्वोच्च सत्ता का उपभोग सम्राट करता था। वहीं व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का उद्‌गम स्त्रोत था। गुप्तों ने सामंतवादी पद्धति का विकास तथा अनुसरण किया। सामन्तवादी सिद्धांत को अपनाये जाने का कारण यह था कि गुप्त साम्राज्य अति विशाल था तथा सत्ता के विकेंद्रीकरण के बिना शासन संचालन बड़ा ही दुष्कर कार्य था। राजा का पद वंशानुगत होता था तथा गुप्त युग में दैवी शक्ति का सिद्धांत मान्य था। कल्याणकारी राज्य होने के कारण लोगों की हर प्रकार की सुविध का ध्यान रखा जाता था। धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी इस काल में काफी उन्नति हुई। लोगों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। व्यापार भी बड़ी उन्नत अवस्था में था, जिससे जनता बड़ी सुखी थी।

गुप्तकालीन सामाजिक जीवन

गुप्त काल से पूर्व समाज में अनेक परिवर्तन हुए तथा भारतीय समाज अनेकानेक पराकाष्ठाओं की प्राप्ति कर चुका था। गुप्ताकालीन सामाजिक जीवन में कई बहुमुखी विकास हुए। तत्कालीन अभिलेखों साहित्य, सूचनाओं तथा पुरातात्विक सामग्री द्वारा ज्ञात होता है कि अपनी स्वाभाविक प्रक्रियानुसार निरंतर विकसित होता हुआ भारतीय समाज गुप्तकाल तक परिपक्व अवस्था प्राप्त कर चुका था।

1.वर्ण व्यवस्था :–

गुप्तयुगीन समाज में वर्ण व्यवस्था पूर्व, रुपेण प्रतिष्ठित थी। भारतीय समाज के परम्परागत चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी अस्तित्व में आ चुकी थी। चारों वर्णों की सामाजिक स्थिति में विभेद किया जाता था। गुप्त काल में स्मृतिकारों ने वर्णव्यवस्था के कतिपय कठोर नियमों का प्रतिपादन किया है। विभिन्न वर्णों के लिए आवास न्याय, दण्ड एवं उत्तराधिकार–संबंधी नियम बनाए गए। वारहमिहिर के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के घर क्रमशः पाँच, चार, तीन तथा दो कमरों वाले होने चाहिए। न्याय व्यवस्था में भी विभिन्न वर्णों की स्थितिनुसार भेद भाव बरते जाने का विधन मिलता है परन्तु इस समय जातिव्यवस्था इतनी जटिल नहीं हो पायी थी, जितनी परवर्ती काल में देखने को मिलती है। सैद्धांतिक रूप से अंतरजातीय विवाह तथा वर्णों के पारस्परिक संबंधों में मुक्त मिश्रण की अनुमति नहीं थी, परन्तु व्यावहारिक रूप में इन नियमों का उल्लंघन किया जाता था। जहाँ तक खानपान का प्रश्न है, इस विषय में शूद्रों को छोड़कर अन्य वर्णों में इसकी काफी छूट थी। जब अंतरजातीय विवाह हो सकते थे तो खानपान के निषिद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ब्राह्मणों को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था, वेदाध्ययन के अनुरुप वे कई शाखाओं में विभाजित हो गए थे। गुप्तकाल में उत्तर भारत में यजु वैदिक ब्राह्मणों की प्रधानता थी और सौराष्ट में सामवेदिक ब्राह्मणों की। शासन, रणक्षेत्र, देशधर्म का भार क्षत्रियों पर था, आपातकाल में क्षत्रिय अन्य कार्य कर सकते थे। वैश्य वर्ण व्यापार वाणिज्य के साथ–साथ कृषि, पशुपालन तथा वस्त्र व्यवसाय आदि भी करने लगे थे। याज्ञवल्क्य ने तो शूद्रों को व्यापारी कारीगर तथा कृषक होने की भी अनुमति दे दी। ह्वेनसांग के विवरण से विदित होता है कि मतिपुर का राजा शूद्र था। गुप्त काल में समाज का निम्नतम वर्ग अंत्यजों का था। फाहियान के अनुसार वे नगर से बाहर रहते थे तथा जब वे नगर में प्रवेश करते तो लोगों को छूत से सचेत करने के लिए लकड़ी बजाया करते थे। इस काल में वर्ण संकरों की जातियाँ भी थी। स्मृति ग्रंथकारों के अनुसार इन वर्णसंकरों की उत्पत्ति अंतरजातीय विवाहों तथा अनुचित यौन संबंधों के द्वारा हुई थी, इस काल में वर्ण परिवर्तन करने की अनुमित थी।

व्यवसायों में कोई प्रतिबंध नहीं था। बहुत से ब्राह्मण व्यापारी, सरकारी नौकर व राजा थे। क्षत्रिय भी व्यापार करते थे। गुप्तकाल में लेखक का कार्य करने वाले को कायस्थ कहा जाता था। दामोदरपुर के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि प्रथम कायस्थ शासन में भाग लेता था तथा वह प्रांतीय सभा का सदस्य होता था। शूद्रक ने कायस्थों की उपमा सर्पो से की है।

2. उपजातियों का विकास :–

गुप्तयुग में उपजातियों का विकास प्रारंभ हो चुका था। ब्राह्मणों का भेद शाखा और गौत्र का उल्लेख करके किया जाता था। क्षत्रियों में उपजातियाँ नहीं थी। क्षत्रिय प्रायः एक वर्ण था तथा वह सदैव सत्कर्मों में लगा रहता था। वैश्य वर्ग में अनेक उपजातियाँ थी। पेशों के कारण शूद्रों में अनेक उपजातियाँ बन गयी थी।

3. दास प्रथा :–

इस काल में दास प्रथा प्रचलित थी तथा इनके लिए विभिन्न नियमों का प्रतिपादन किया गया था जो कि कई प्रकार के होते थे – खरीदे हुए दास, युद्ध बंदी दास, जुए में हारे हुए दास, ऋण न चुकाने पर दास बनना, दास पुत्र, दण्डस्वरूप दास बनना आदि। मृच्छकटिकम् से पता चलता है कि दास के शरीर पर उसके स्वामी का पूर्ण नियन्त्रण होता था। किन्तु यहाँ दास प्रथा पाश्चात्य देशों की दास प्रथा के समान जटिल नहीं थी। एक निश्चित अवधि तक सेवा करने तथा ऋण चुका देने पर दास स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकने का अधिकारी था, उनके साथ व्यवहार में मानवीय आचरण किया जाता था। नारद ने 15 प्रकार के दास बताये है।

4. परिवार :–

प्राचीन काल की तरह परिवार अब भी समाज की आधरभूत इकाई थी। गुप्त युग में संयुक्त परिवार को श्रेष्ठ माना जाता था तथा

परिवार विभाजन निंदनीय था। परिवार पितृप्रधान था तथा पिता की मृत्यु होने पर उसका छोटा भाई अथवा सबसे बड़ा पुत्र परिवार का प्रधान बनता था। परिवार कल्याण तथा समृद्धि के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक कृत्य किये जाते थे। माता, पत्नी, बहु तथा पुत्री के रूप में स्त्री को परिवार में प्रमुख स्थान प्राप्त था।

5. खान–पान :–

गुप्तकालीन समाज में शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही प्रकार के लोग थे। फाह्यान लिखता है कि ''लोग शराब का प्रयोग नहीं करते थे तथा माँस, लहसुन, प्याज भी नहीं खाते थे।'' केवल चाण्डाल ही जो कि समाज से बहिष्कृत थे, सूअर व मुर्गी आदि पालते थे। परन्तु तत्कालीन साहित्य से पता चलता है कि भोजन में मांस, मदिरा आदि का प्रयोग किया जाता था। कालिदास के नाटकों में स्त्री–पुरुषों द्वारा सामूहिक रूप से मदिरापान का उल्लेख है। अभिज्ञानशाकुंतलम् में मांढय नामक ब्राह्मणों द्वारा सूअर का भूना हुआ मांस खाने का उल्लेख है। स्मृति साहित्य बीमार व्यक्ति के लिए तथा श्राद्धों में मांस की आज्ञा देता है। दक्षिणी भारत में राज दरबारों में तथा उच्च वर्ग में मांस से कई प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाये जाते थे। सुख समृद्धि के इस युग में खानपान पर कोई रोक–टोक नहीं थी।

6. वस्त्र आभूषण :–

गुप्त काल के साहित्य ग्रन्थों तथा कलाकृतियों से इस समय के वस्त्र और आभूषणों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पुरुषों के कपड़े प्रायः एक धोती तथा ऊपर ओढ़ने वाला वस्त्र होता था। साधरण लोग सूती वस्त्र तथा धनी सम्पन्न वर्ग के लोग रेशमी, ऊनी तथा बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियों द्वारा साड़ी और पेटीकोट का प्रयोग किया जाता था। पुरुष पगड़ी भी बाँधते थे। स्त्रियाँ चोली व अंगिया का प्रयोग करती थी तथा सीथियन नारियाँ फ्रॉक जैकेट, पायजामे और ब्लाऊज का प्रयोग करती थी। केवल नाचने वाली लड़कियाँ ही सीथियन वस्त्रों का प्रयोग करती थी, अजन्ता की गुफाओं से भी ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ प्रायः धोती और चोली का प्रयोग करती थी।

शारीरिक सौंदर्य की वृद्धि तथा आकर्षण उत्पन्न करने के लिए आभूषणों का प्रचूर प्रयोग होता था, इस समय स्त्री पुरुष समान रूप से आभूषणों का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ मांग के बीच में टीके का प्रयोग करती थी। धार्मिक अनुष्ठानों में सभी प्रकार के आभूषणों का प्रयोग होता था। वात्स्यायन ने नवयुवकों को विभिन्न आभूषण पहनने का परामर्श दिया है। रेशमी वस्त्र को अधिक पसन्द किया जाता था जो कि प्रायः चीन से आयात होता था।

7. शृंगार प्रियता :

कालिदास के अनुसार स्त्रियाँ सुगंधित सामग्री को जलाकर अपने केशों को सुखाती थी। अजंता के चित्रों से विदित होता है कि तत्कालीन केश विन्यास की विधि बड़ी विकसित आकर्षक तथा पेचीदा थी। मेघदूत से पता चलता है कि स्त्रियाँ अपने केशों तथा वेणियों में मंदार के फूल लगाती थी। कम बाल वाली स्त्रियाँ बाल लगाती थी। इस समय पुरुष भी शृंगार प्रिय थे वे शरीर व वस्त्रों पर इत्र लगाते थे। वेश्याएँ अपने साज–शृंगार द्वारा पुरुषों को आकर्षित करती थी। प्रेमिकाएँ प्रेमी से मिलने के लिए सुंदर शृंगार करती थी।

8. आमोद–प्रमोद :

गुप्तकालीन मुद्राओं तथा कालिदास की रचनाओं से विदित होता है कि आखेट राजा तथा उच्च अधिकारियों के मनोरंजन का प्रमुख साधन था। मृच्छकटिकम् के अनुसार पशु–पक्षियों को परस्पर लड़ाकर भी मनोरंजन किया जाता था। मृच्छकटिकम् में द्यूत खेलने का विशद और मनोरंजक वर्णन मिलता है। मुद्राओं में समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय को शिकार करते हुए दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त नगरों में कई नाटकगृह भी होते थे, जिनसे लोगों का मनोरंजन होता था। गायन और नृत्य भी मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

फाह्यान के विवरण से ज्ञात होता है कि लोग पूरे जोश के साथ प्रतिवर्ष उत्सव मनाते थे, उसने विशेषकर 'रथ यात्रा' के उत्सव का उल्लेख किया है, जो लगभग दो रातों तक मनाया जाता था इस उत्सव में सारी रात दीपक जलते थे और बड़ी धूमधम से यह उत्सव चलता था। कामसूत्र में सामूहिक यात्रा, समाज गोष्ठी, उद्यान भ्रमण तथा समस्या क्रीडा प्रमुख उत्सव बताये गये है।

9. स्त्रियों की दशा :

इतिहासकारों का विचार है कि इस युग में स्त्रियों को विलासिता का साधन समझा जाता था। फलतः उनकी दशा को पूर्वकाल की अपेक्षा निम्न कहा गया है। प्रायः विवाह सजातीय होते थे, यदा कदा निम्न वर्ण की कन्या का विवाह उच्च वर्ग में हो जाता था, ऐसे विवाह को 'अनुलोम' कहा जाता था। स्मृति ग्रंथ इसकी मान्यता देते है। नारद एवं पाराशर की स्मृति से विधवा विवाह का समर्थन मिलता है। किंतु बृहस्पति इसे मान्यता नहीं देते। उन्होंने विधवा के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य, व्रत, उपवास, तप दान आदि में लगे रहने का विद्यान प्रस्तुत किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में विधवाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी, उन्हें कठोर साधना का जीवन बिताना पड़ता था। गुप्त युग में कन्याओं का विवाह 12–13 वर्ष की आयु में होता था। उनका उपनयन संस्कार बंद हो गया था। याज्ञवल्क्य स्मृति कन्या के उपनयन एवं वेदाध्ययन का निषेद करती है। सती प्रथा का उल्लेख केवल 510 ई0 के ''भानुगुप्त के एरण अभिलेख'' में मिलता है, जिसके अनुसार उसके मित्र गोपराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी सती हो गयी थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा न तो समाज में लोकप्रिय हो पायी और न ही इसको शास्त्रीय मान्यता मिली।

समाज में वेश्याओं के अस्तित्व के प्रमाण भी मिलते है। कामसूत्र में गणिकाओं को दिये जाने वाले प्रशिक्षण का विवरण दिया गया है। मुद्राराक्षस से पता चलता है कि उत्सवों के समय बड़ी संख्या में वेश्याएं सड़कों पर निकलती थी, मंदिरों में कन्यायें देवदासी के रूप में नृत्यगान करती थी। कालिदास ने उज्जयिनि के महाकाल मंदिर में नृत्यगान करने वाली देवदासियों का विवरण दिया है।

पर्दाप्रथा का प्रचलन नहीं था, स्त्रियाँ स्वतंत्रता पूर्वक विचरण कर सकती थी। किन्तु कुलीनवर्ग की महिलायें बाहर निकलते समय अपने घूंघट डालती थी। गुप्तकालीन स्मृतियों में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को मान्यता दी गई तथा स्त्रीधन का दायरा विस्तृत कर दिया। पुत्र के आभाव में पति की सम्पत्ति पर पत्नी का अधिकार होता था।

समाज के उच्च वर्गों का जीवन सुखी तथा आमोद पूर्ण था। संगीत, नाटक, नृत्य आदि के द्वारा लोग मनोरंजन करते थे। कामसूत्र में इस प्रकार के सुख–सम्पन्न नागरिकों की दिनचर्या का वर्णन मिलता है। किन्तु यही स्थिति समाज के निम्नवर्गों की नहीं थी।

अभिज्ञानशाकुंतलम में अनुसूया को इतिहास का ज्ञाता कहा है। भवभूति माधव नाटक में माधवी चित्र अंकित करने तथा संस्कृत समझने योग्य दर्शाई गई है। अमरकोष में शिक्षिकाओं के लिए उपाध्याया, उपाध्यायीय और आचार्या शब्द आए है। अतः गुप्तकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में ह्रास हुआ।

निष्कर्ष :–

गुप्तकालीन समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि गुप्त काल में परवर्ती काल की अपेक्षा काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके थे, एक महत्वपूर्ण पक्ष राजतन्त्र से सम्बन्धित है कि जिन क्षेत्रों के राजाओं ने गुप्त राजाओं के सामन्तीय अधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, उनका शासन उन क्षेत्रों में जारी रहा। कृषि उत्पादन पर भी पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया गया और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इस काल में सिंचाई ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। भूमि को उपहार स्वरूप धार्मिक वर्गों को देने की प्रथा सामान्य बात हो गई थी और ब्राह्मण लोग राजाओं पर अपना प्रभाव डालने लगे थे। साधारण किसानों की स्थिति में काफी गिरावट आयी। समाज में वर्ण व्यवस्था जारी रही, परन्तु इसी के साथ–साथ बहुत से सामाजिक गुटों या समूहों विशेषकर अछूतों को वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया। समाज में महिलाओं की स्थिति में भी पर्याप्त गिरावट आयी।

पुस्तक सूची

1. **IGNOU** भारत–प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खण्ड–8, ईकाई 33, गुप्तकाल, अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र व्यवस्था, पृष्ठ–24 से 26
2. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डी.एन.झा. एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, अध्याय–12, उत्तरी भारत का इतिहास 300 से 650 ई0 (सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति) पृष्ठ–303 से 317
3. प्राचीन भारत का इतिहास (आदिकाल से 1000 ई0 तक), लेखक आर.के. मजूमदार तथा ए.एन. श्रीवास्तव, अध्याय 15, गुप्तवंश, प्रकाशक एस.डी.बी. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4075–नई सड़क, दिल्ली, पृष्ठ 468 से 471
4. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, लेखक कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, एम. श्रीवास्तव अध्याय 31, गुप्तयुगीन संस्कृति, प्रकाशक यूनाईटेड बुक डिपो, यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद, पृष्ठ 425 से 426
5. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डॉ. औमप्रकाश, प्रकाशक विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0 लि0, अध्याय 13, गुप्त साम्राज्य पृष्ठ 287 से 292

मन्दीप शर्मा
एम.ए. इतिहास, यूजीसी नेट गांव बेरला, तहसील बाढ़डा
जिला चरखी दादरी (हरियाणा) – 127312
मो. – 09671583483, 8053156731
E-mail: historymandeep@gmail.com

5

प्रेमचंद के कथा साहित्य में सर्वहारा वर्ग का आन्दोलन

डॉ0 कुमारी विजय लक्ष्मी

सारांशः–

सहित को साहित्य माना जाता हैं। पर साहित्य में केवल विशिष्ट लोगो की हितधारणा का पुरूस्कार अक्सर होता दिखाई देता है। परिणामताः शोषित व्यक्ति की वेदना को नजर अंदाज किए जाने के कारण वह सदियों से अमानवीय जीवन जीने के लिए अभिषप्त या। चाहे साहित्य हो या जीवन एक ढर्रे पर हमेशा बने नहीं रह सकता। साहित्य की सभी विधाओं के साथ ही हिन्दी कहानी और उपन्यास भी बदलाव चाहता था। मनोरंजन केवल साहित्य लक्ष्य नहीं हो सकता तो साहित्य मानवीय सुख–दुखों की अभिव्यक्ति भी होता है। हिन्दी कहानी एवं उपन्यास समाजिक जनजागरण की भूमिका से संपृक्त होने के कारण सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक गैर बराबरी को वे अंकित करते हुए मानवीय अधिकारो के प्रति अपना दायित्व निर्वाह करने की ललक रखते है।

देश की आजादी केवल कुछ लोगो की न रहकर वे सारे देश की बने इसलिए उपेक्षित लोगों की वाणी और वेदना को कहानी एवं उपन्यास अमित्यक्त करता है। निराला एवं मुक्तिबोध की सामाजिक बदलाव की भूमिका कहानी और उपन्यास में आ जाती है। कहानी एवं उपन्यास विद्या में प्रेमचंद का अविर्भाव विशेष महत्व रखता है परंपरागत अवरोधो को तोड़कर वे सामान्य मनुष्य के दुखो को मुखरित करते है। प्रेमचंद की सर्वहारा मुक्ति की भूमिका अछूत उद्धार की दस्तक देती है। जिस समय डॉ0 बाबासाहब आम्बेडकर 'चवदार झील' पानी के लिए आंदोलन चलाते है उसी समय साहित्य में प्रेमचंद 'ठाकुर का कुआँ' कहानी लिखिकर प्रकृति निर्मित पानी पर सबका समान अधिकार का नारा लगाते है। डॉ0 बाबा साहब आम्बेडकर जिस समय 'काला राम मंदिर' प्रवेश के समता की लड़ाई लड़ते है उसी समय प्रेमचंद 'मंदिर' नामक कहानी लिखिकर बाबासाहब के आंदोलन को साहित्यिक शक्ति प्रदान करते है।

प्रेमचंदोतर कहानी एवं उपन्यास तो वर्ष 1960 के बाद विशेषकर सर्वहारा के पक्ष में खड़ा होता है। इस समय मार्क्सवादी विचारधारा ने सारे रूढ़ी एवं बंधनों को झकझोकर सर्वहारा की आवाज बुलंद की। संविधान निमार्ण के बाद सामाजिक एवं आर्थिक समता की बात कहानी एवं उपन्यासो पर भी हावी होते है। आरक्षण का लाभ उठाकर उपेक्षित पीढ़ी अपनी वेदना का बयान कहानी एवं उपन्यासों के द्वारा करने लगी। महाराष्ट्र का दलित साहित्य इस बात का पुखता सबूत है, जिसका अनुकरण हिन्दी कहानी एवं उपन्यास भी करता है। कुल मिलाकर हिन्दी कहानी एवं उपन्यास सर्वहारा मुक्ति की लड़ाई लड़ते नजर आते हैं। जिसका युग सापेक्षता की द्वष्टि से सर्वहारा के पक्ष में सर्वहारा मुक्ति की दस्तक देना है।

शोध विषयः–

प्रास्तुत शोध आलेख का विषय प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सर्वहारा वर्ग का आन्दोलन के अध्ययन से संविधित है।

मुख्य शब्दावलीः– सुसप्त, अधोमुखी, अभिव्यंक्ति, अपरिहार्य, दुर्बलताओ, कारूणिक, मर्माहत, रियायत, अख्यितार, सुगबुगाहट, जन्हाई, जेंजात।

शोध विधिः– विवरणात्मक, व्याख्यात्मक एवं विश्लेषण।

शोध विवरणः– प्रेमचंद का आविर्भाव काल सकमण काल या एक और भारतीय जनता स्वाधीनता की आकांक्षा में उनींदी आँखों को खोलने की चेष्ठा में थी तो दूसरी और विदेशी सत्ता का शिकंजा अधिकाधिक कसता जा रहा था। जमीदार पूँजीपति के माध्यम से प्रेमचंद के साहित्य का मूल उद्देश्य दलित और शोषित वर्ग की चेतना को उगाना था। गरीबी और अमीरी की बढ़ती हुई खाई को पाटने की भूमिका का निर्माण करना था। इन निर्माण प्रक्रिया में वे जीवन की अद्योमुखी प्रवृत्तियों का उन्नयन कर उन्हें जीवन के कल्याणकारी स्वरूप की उन्मुख कर देने के लिए सदैव सचेष्ठ रहें हीन से हीन और दृश्ट समझे जाने वाले मनुष्य में कहीं अत्यंत प्रच्छन्न एवं सुसुप्त रूप से देवता है, उस देवता को जमाने में उनका विश्वास रहा और उनका साहित्य इस चेष्टा को व्यापक रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। शोषक के कुरूप कारनामें को वे सतत अंकित करते रहें और उनके प्रति शोषित वर्ग में रोश व्यक्त करने की प्ररेणा देते रहे।

प्रेमचंद अपने युग के महान कलाकार थे। अतः तत्कालीन समाज उनके साहित्य में विषवता के साथ अभिव्यंजित हुआ है। उस युग की कोई समस्या या कोई स्थिति ऐसी नहीं है जिसका उनकी लेखनी ने श्रृंगार न किया हो ग्राम भारत महादेश की आत्मा है, उनका प्रमुखता से उनके साहित्य में उल्लेख न होना अपरिहर्य था। उन्होंने उनकी समस्याओं को दुर्बलताओं, स्थितियों आदि को बड़े करीब से देखा और परखा, उनका विश्लेषण किया तथा उनकी व्याख्या की। वरदान, सेवासदन, प्रेमश्रम, कायाकल्य कमभूमि और गोदान उपन्यासों में ग्रामीण समस्याएँ उभरकर प्रस्तुत हुई है। प्रेमचंद ने पद–पद पर परेशान करने वाली कठनाईयों, संबदो अत्याचारों और शोषण की कारूणिक एवं मार्मिक सिथतियों की अभिव्यक्ति बड़े पैमाने पर की है किंतु प्रेमचंद ने केवल करूणा की ही अभिव्यक्ति नहीं की बल्कि शोषित पीड़ित मानवता, सर्वहारा वर्ग को जागृत और संगठित का अंदोलन करने को भी प्रेरित किये थे अच्छी तरह जानते थे कि इस अपढ़ मूढ़ की करूणा की अभिव्यक्ति मात्र उनकी मुक्ति का साधन नहीं हो सकती मुक्ति के लिए वो स्वयं संगठित हो अपनी हस्ती का अहसास कराना होगा – प्रयास करना होगा। बलिदान करना होगा। प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से भौतिक रूप में उसके जीवन की वास्तविकता को प्रकट कर और मानिसिक दृष्टि से उसे सजग बना स्थिति से ऊपर उठने के लिए संगठित होने की प्रेरणा दी। प्रेमाश्रम की मूल कथा सर्वहारा वर्ग के संगठन संघर्ष और अंदोलन की कथा है। प्रेमचंद ने इस वर्ग को शोषण के विरूद्ध अंदोलन करने के लिए प्रेरित तो किया ही उसे इस दिशा में बहुत हद तक सफल होते भी दिखलाया है।

कर्मभूमि में वर्ग संघर्ष की चर्चा प्रारंभ से अंत तक निरन्तर

चलती रहती है। प्रत्येक पात्र अमीरी और गरीबी का प्रश्न उठाता है और समाज की दुरवस्था के लिए शोषण कर्ता धनी वर्ग को उत्तरदायी ठहराता है। तथा उसके विरूद्ध आंदोलन करने के लिए कटिबद्ध रहता है अमर जैसा गांधी वादी पात्र भी समाजिक विषमता से ममहित होकर क्रांति की बात सोचता है। उसकी आवेशमयी स्थिति का वर्णन प्रेमचंद करते है– अमर के अतः कारण में क्रांति का तुफान उठ रहा था। उसका बस चलता तो आज धनवानो का अंतकर देता, जो संसार को नरक बनाए हुए ।

है। प्रेमचंद समाज में व्यारत वैशम्य के हृदयग्राही चित्रण तक ही सीमित नहीं रहे, उससे आगे बढ़कर उन्होंने शोषित वर्ग को अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए जन संगठन के सारे जनान्दोलन का मार्ग भी दिखाया है। रंगभूमि की सुखदा का कथन– मैं इन महल निवासियों को दिखा दूंगी की जनता के हाथों में भी कुछ हैं। .....मैं इन्हें दिखा दूंगी की जिन गरीबो को तुम अब तक कुचलते आये हो वही अब साँप बनकर तुम्हारे पैरों से लिपट जाएँगे। अब तक यह लोग उनसे रियायत चाहते थे, अब अपना हक माँगगे रियायत न करने का उन्हें अख्यितार है, घर हमारे हक से हमें कौन वंचित रख सकता है। रियासत के लिए कोई जान नहीं देता, पर हक के लिए जान देना जानते है। सर्वहारा वर्ग के लिए शोषण से मुक्ति पाने की अदम्य भावना का प्रतीक है। शोषितों को अपने अधिकारों के लिए प्रेरित करते हुए वह पुनः कहती है– इन स्वामियों से इंसाफ की आशा छोड़ दो तुम्हारे पास कितनी शक्ति है, इसका उन्हें ख्याल नहीं है वे समझते है यह गरीब हमारा कर ही क्या सकते है। मैं कहती हूँ तुम्हारे ही हाथों में सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फसाद नहीं करना है सिर्फ हड़ताल करना है, यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मंजूर नहीं किया। और यह हड़ताल एक दो दिन की नहीं होगी। यह उस वक्त तक रहेगी, जब तक बोर्ड अपना फैसला रद्द करके हमें न दे दे। कर्मभूमि में ही नैना के कथन के माध्यम से प्रेमचंद ने सर्वहारा वर्ग के भीतर आंदोलन करने की प्रवृति का उन्मेश दिखलाया है। वह कहती है– गरीबी बहुत दिनों तक गरीब नहीं रहेंगे और वह जमाना दूर नहीं जब गरीबो के हाथ में शक्ति होगी। विप्लव के जन्तु को छेड़–छेड़ कर न जगाओं। उसे जितना ही छेड़ोगे उतना ही झल्लाएगा और वह उठकर जन्हाई लेगा और जोर से दहाड़ेगा तो फिर तुम्हें भागने की राह न मिलेगी। रंगभूमि की कथा पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद ने अछुतो की समस्या के वर्णन के माध्यम से शहरों से दहातो तक व्याप्त राजनीतिक चेतना और आन्दोलन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। गाँवो और शहरों से मिलो तथा धनीवर्ग के आश्रम में कार्य करने वाले निम्नवर्गीय पात्रों – धोबियों, खटिको, धौसियो, जमीदारों, कोंचवानो, जूता सीने वालो को संगठित होकर उपने अधिकारों के लिए आंदोलन करते दिखाया है। सर्वहारा वर्ग की इसी कथा का एक सूत्र विकसित होकर हरिद्वार के निकटवर्ती चमारों के एक गाँव तक पहुँचता है जहाँ वह जमीदार कृषक संघर्ष और मंदी के कारण उत्पन्न होने वाली लगान की समस्या तथा जन संघर्श का प्रतीक बन जाती है शोषण की चक्की में पिसने वाले सर्वहारा वर्ग के पात्रो में धीरे–धीरे सुगबुगाहट होती है, वे संगलित होते है और आगे चलकर अपने संगठन के बल पर आन्दोलन करने के लिए कटिबद्ध होते हैं। कर्मभूमि में इसका सच्चा स्वरूप दिख पड़ता है। मंदी के कारण किसानों की हालत दयनीय हो गयी है। किन्तु जमींदार के करिन्दें लगान वसूलने के लिए किसानो पर जोर जुल्म ढाह रहे हैं। इस पर उनमें उत्तेजना का भावभर जाता है। स्वामी आत्मानंद किसानों को सम्बोधित करते हुए कहता है– महंत को उत्सव मनाने के लिए रूपये चाहिए। हाकीमों को बड़ी–बड़ी तलब चाहिए, उनकी तलब में कभी नहीं हो सकती। वे अपनी शान नहीं छोड़ सकते। तुम मरों या जीयों उनकी बला से! वह तुम्हें क्यों छोड़ने लगे।.. ..... आओ आज हम सब चलकर महन्त जी का मकान और ठाकुर द्वारा घेर ले। जब तक लगान बिलकुल न छोड़ दे। कोई उत्सव न होने दे। आत्मानंद के इस कथन में सर्वहारा वर्ग चेतना धोतित होती है तथा उनमें व्याप्त आंदोलन करने की कटिबद्धता का ज्ञान होता है। कर्मभूमि में ही प्रेमचंद ने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक आंदोलनों एवं उनसे उत्पन्न परिस्थितियों का यथातथ्य विवरण प्रस्तुत किया है वे गांधी जी द्वारा चलाये जाने वाले आन्दोलन के औचित्या–न्योचित्य पर प्रकाश डालते है। किन्तु प्रेमचंद ने शुद्धतः गांधीवादी भावना का पृष्टपेंशन नहीं किया है बल्कि सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन को सही और समयोचित करार दिया है। इस प्रकार प्रेमचंद संघर्ष और आंदोलन का पक्षधर बनकर उनमें जागृति का संचार करते है। शोषित वर्ग को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए आततायी हृदय परिवर्तन की बाते न सोचकर जनशक्ति जनसंगठन और जन संघर्ष की अनिवार्यता पर बल देते है। जिसके लिए आन्दोलन आवश्यक है। वे राजसत्ता की अनिवार्यता को अस्वीकार करते हुए उसके खात्मे की बात करते है। कर्मभूमि में वे कहते है– गवनेमेन्ट तो कोई जरूरी नहीं। पढ़े–लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाये रखने के लिए संगठन बना लिया हैं उसी का नाम गवर्नमेन्ट है गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवनेमेन्ट का खात्मा हो जाता है। रंगभूमि की रचना के आस–पास प्रेमचंद ने "कातिल" नामक कहानी लिखी थी। जिसमें वे धर्मवीर नामक एक पात्र से कहबाते है– असली आजादी तभी मिलेगी जब हम उसका मूल्य चुकाने को तैयार रहेगें। आज अगर हिन्दुस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिये जाये तो आज स्वराज मिल जाये, इस तरह आजाद हुआ आयरलैण्ड इस तरह आजाद हुआ और हिन्दुस्तान भी इसी तरह आजाद होगा। प्रेमचंद के इन शब्दों में संघर्ष और आन्दोलन का भाव निहित है। उन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने सर्वहारा वर्ग की क्रमशः विकसित मानसिक स्थिति का वर्णन किया है।

सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन की चरम परिणति गोदान में देखने को मिलती है। वस्तुतः गोदान प्रेमचंद की सम्पूर्ण औपन्यासिक गति विधियों की चरम परिगति है। जिन–जिन तथ्यों को अपने प्रारंभिक उपन्यासों मे लेकर चले है उन सब की सम्मिलित परिणति गोदान है। गोदान में पुरूश पात्रों की अपेक्षा नारी पात्र अधिक मुखर, अधिक संघर्षशील, अधिक आंदोलन कारिणी का गाँव के पंच होरी पर तीस मन अनाज और सौ रूपये का डाँड लगाते है तो धनिया पंचो को जली कटी सुनाती है। उसके स्वर में उत्तेजना एवं यथार्थ कहने की असीम क्षमता है। पंचो को आड़े हाथों लेकर वह कहती है– मैं एक दाना न अनाज दूँगी न कौड़ी डाँड। जिसमे बूता हो चलकर मुझसे ले! अच्छी दिल्लगी है सोचा होगा डाँड के बहाने इसकी जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरो को दे दो बाग–बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ओं । धनिया के जीते जी यहीं नहीं होने का और तुम्हारी

लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। गोदान में शोषण चक्र में पिसते हुए छोटे किसानों के दयनीय जीवन का तो वर्णन हुआ ही है साथ ही साथ उससे मुक्ति पाने के लिए उनकी विद्रोह मानवता उनके द्वारा चलाये गये संघर्ष पूर्ण अंदोलनो का भी चित्रण हुआ है। प्रेमचंद ने इस विद्रोह भावना को शीर्षको ब्रिटिश सरकार जमींदारों और साहुकरों के विरूद्ध किसानो के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है जिसका उत्कर्ष गोबर और धनिया के चरित्रों में हुआ है गोबर किसानो के द्वारा चलाये गये आंदोलन का नेतृत्व करता है यद्यापि चारित्रित सबलता के अभाव में वह बीच में ही भटक जाता है। फिर भी यह प्रेमचंद का दृष्टिदोष नहीं है, बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों एवं देश काल के मद्धेनजर इसे यथार्थ तथ्य ही माना जाना चाहिए। गोदान में चलाया गया किसान आंदोलन वसतुतः सर्वहारा की असंगठित शक्ति के एकीकरण का प्रयास है।

प्रेमचंद की सम्पूर्ण औपन्यासिक परिधि में संचरण करने तथा तथ्यों के अवगाहन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में शोषण के विरूद्ध संघर्ष एवं आंदोलन करने वाले पात्रों का सृजन किया है तथा उनके माध्यम से तत्कालीन भारतीय जन जीवन में व्याप्त समस्याओं के समाधान ढूढने का प्रयास किया है रंगभूमि में सूरा का जुझारन और तीखा रूप वास्तव में प्रेमचंद के मन की चेतना को व्यक्त करता है। सूरा के माध्यम से प्रेमचंद अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध स्वयं को सामने लाते हैं प्रेमाश्रम में बलराज और गोदान में गोबर जैसे पात्रों के माध्यम से संघर्ष का मसान जलाने तथा सर्वहारा वर्ग में अंदोलन करने की भावना को उजागर किया है।

प्रारंभ में प्रेमचंद यह विश्वास करते थे कि मनुष्य के भीतर का देवत्व जागेगा। उन्होंने जहाँ समाज के पीड़ित सर्वहारा वर्ग को जगाने उन्हें इकत्रित करने तथा आन्दोलन करने के लिए प्रेरित किया वहीं उन्होने शोषक के देवत्व को जगाने का प्रयास किया। किन्तु क्रम–क्रम से उनका यह विश्वास डगमगाता चला गया। उनकी मान्यता हैं कि देवत्व जब न्याय रक्षा के लिए जाग नहीं पड़ता तो उसकी उपादेखता ही क्या? मंगलसूत्र में वे कहते है– देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दें। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है अगर उसकी आँखो में यह कुव्यवस्था खटकती ही नही तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह भी नहीं और यहाँ देवत्व बनने की जरूरत भी नहीं। देवताओं में ने भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्था धारणाये फैलाकर इस अनीति को ऊपर बनाया है। इसलिए वे मनुष्य को भी जगाना चाहते है। उसके भीतर संघर्ष करने तथा दरिंदा बने लोगों के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए ही दबी पीड़ित मानवता को ललकारते है। वे कहते है– "नहीं मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा दरिन्दो के बीच में उनसे लड़ने के हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजो का शिकार बनना देवतापन नही जड़ता है।

प्रेमचंद की कतिपय कहानियों में यह अभिव्यक्त हुआ है 'मैकू' शीर्षक कहानी में नशाखोरी के विरूद्ध संघर्ष का उल्लेख है। नशाखोरी रोकने वाले स्वंय सेवको के समर्थन में मैकू कहता है– जो लोग दूसरो को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देने को खड़े है उनपर वहीं हाथ उठाएगा, जो पाजी है, कमीना है, नार्मद है, मैकू फिसादी है, लठैत है गुंडा है पर कमीना और नामर्द नहीं हैं। कह दो पुलिस वालों से चाहे तो मुझे गिरफ्तार कर ले। उसी प्रकार 'समरयात्रा' शीर्षक कहानी में जब पुलिस चौधरी को पकड़ ले जाती है। तब नौहरी चिल्लाकर कहती है– अब सब जने खड़े क्या पुछते रहे हो। देख ली अपनी दुर्दशा या अभी कुछ बाकी है। आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा है। आज हम इतने बेशरम है कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते। हम इतने स्वाथी इतने कायर न होते तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ो से पीटते। जब तक तुम गुलाम बने रहोगे उनकी सेवा टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा चोकर मिलता रहेगा, लेकिन जिस दिन तुमने कंधा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह खाते रहोगे? कब तक मुर्दो की तरह पड़े गिद्धो से अपने आपको नोचवाते रहोगे। अब दिखा दो कि तुम भी जीते जागते हो और तुम्हें भी अपनी इज्जत आवरू का कुछ ख्याल है। जब इज्जत ही न रही तो क्या करोगे खेतीबारी करके धन कमाकर जीकर ही क्या करोगे? क्या इसलिए जी रहे हो कि तुम्हारे बाल–बच्चे इसी तरह लातें खाते जाये, इसी तरह कुचले जाए? वह सबको ललकार ओजपूर्ण वाणी में कहती है– छोड़ो यह कायरता आखिर एक दिन खाट पर पड़े–पड़े मर जाओगे। क्यो नहीं इस धरम की लड़ाई में आकर वीरों की तरह मरते। नेहुरी के कथन से सर्वहारा वर्ग के आंदोलन का स्वरूप स्पष्टता इलकता है। उन्होंने अपनी कहानियों में सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन की सफल अभिव्यक्ति की है।

निष्कर्षः– प्रेमचंद सर्वहारा वर्ग के प्रबल समर्थक उनके अंदोलन के पक्षधर थे, बल्कि वे उनके विजय का कामी थे। उनका विश्वास था कि सर्वहारा शोषण की चक्की में पिसने से मुक्त होगे, उनका भी समय आयेगा अपनी पत्नी शिवरानी देवी से उन्होनें कहा या हम लोगो में वह शक्ति आयेगी वह हमारे सुख का दिन होगा जब यहाँ मजदूरों और काश्तकारों का राज होगा। मेरा ख्याल है कि आदमी को उम्र औसतन दूनी हो जायेगी। प्रेमचंद का यह कथन भारतीय मानसिकता, भारतीय संस्कार और भारतीय इंसान की समझ पर गहरी पकड़ को स्पष्ट करता है मार्क्सवादी के नाम पर केवल क्रांति–क्रांति कहने और इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे से ही उन्हेंने अपने को नहीं बांधा बल्कि सर्वहारा का पक्ष लेते हुए वर्ग संघर्ष और जाति संघर्ष को स्पष्ट करते ऐसा लेखन दिया है। जो हमें बैचेन कर देता है और व्यवस्था में तुरंत बदलाव की मांग करता है।

संदर्भ सूची

1) आलोचना के बदलते मानदंडन और हिन्दी साहित्य शिवकरण सिंह पृ. 485
2) आधुनिक राजनीतिक सिद्धांतजैन और फाडिया पृ. 414
3) मुंशी प्रेमचंद दलित पीड़िता मानवता के हस्ताक्षर प्रमचंद पृ. 01 जैन का लेख पृ.215
4) उपन्यासकार प्रेमचंद की सामाजिक चिंताः डॉ0 सरिता राय पृ. 43
5) प्रेमाश्रम पृ. 44

6) प्रेमाश्रम पृ. 154

7) रंगभूमि पृ. 448

8) कर्मभूमि प्रेमचंद पृ. 217

9) कथाकार प्रेमचंद सं0 डॉ राम दरश मिश्रा तथा ज्ञान्नंद गुप्त–पृ. 52

10) गोदान पृ. 131

मुख्य भाब्दावली:–

सुसुप्त, अधोमुखी, अभिव्यंजित, अपरिहार्य, दुर्बलताओ, कारूणिक, ममहित, रियायत, अख्तियार, सुगबुगाहट, जन्हाई, जैजात।

डॉ0 कुमारी विजय लक्ष्मी

C/o – गोदावरी कुंज विश्वश्वैरया कॉलोनी

सलोनाटांड, बरमसिया बी– देवघर (झारखण्ड)– 814112

मोबाइल न.– 7488776769 / 9234835120

E-mail:- kumaribijaylakshmi23@gmail.com

6

कुषाण काल में कला का विकास

मन्दीप शर्मा

सारांशः–

विम कैडफिसेस के पश्चात् कुषाण शासन की बागडोर कनिष्क के हाथों में आयी। कनिष्क निश्चित रूप से भारत के कुषाण राजाओं में सबसे महान है, उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में उसका नाम प्रभामण्डल से युक्त है। बौद्ध कला का विकास कुषाण राजाओं के संरक्षण में भी होता रहा। प्रसिद्ध कुषाण शासक कनिष्क एक महान निर्माता था। उसके शासनकाल में अनेक स्तूपों व विहारों का निर्माण हुआ। मौर्यकाल के पश्चात् विभिन्न सामाजिक समूहों द्वारा कला को संरक्षण दिए जाने के कारण इसका विस्तार भारत और इसके बाहर भी हुआ। अब यह केवल राज्य के अधीनस्थ नहीं रही। मौर्यकाल के पश्चात् एक परिवर्तन आया : पत्थर जैसी न टूटने वाली सामग्री को कलात्मक अभिव्यक्ति का आधार बनाया गया। इस काल में भारत से बाहर के कला रूपों और यहाँ के कला रूपों के बीच आदान–प्रदान हुआ, जिससे कई कला केन्द्रों का जन्म हुआ तथा गाँधार व मथुरा कला का जन्म हुआ । सारनाथ व अमरावती कला केन्द्रों का विकास हुआ ।

पृष्ठभूमि :–

मौर्य काल में वास्तुकला एवं मूर्तिकला विकसित अवस्था में पहुँच गई थी। अशोक के स्तम्भ तथा उन पर जानवरों की आकृतियाँ और खुदाई का काम परिपक्व कला का प्रमाण है। मौर्य काल की एक विशेषता यह थी कि इसमें पत्थर पर पॉलिश करके उसे चिकना बनाया जाता था। इस प्रकार की शीशे जैसी चमक दूसरे किसी काल में देखने को नहीं मिलती। खुदाइयों से मौर्यकालीन बहुत सी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। इससे पता चलता है कि कलाकृतियों का निर्माण राजकीय घरानों तक ही सीमित नहीं था। बल्कि जनता तक उनकी पहुँच थी। इसी कारण जब राजकीय कला का ह्रास हुआ और नये कला रूप सामने आए तब भी मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण होता रहा।

ई0 पूर्व 200 से सन् ई0 300 के बीच की कला की निम्नलिखित विशेषतायें थी :–

1. कला सम्बन्धी गतिविधियों का सम्बन्ध धर्म से था और कलाकृतियों में धर्म परिलक्षित होता था।
2. इस काल में बुद्ध की मूर्ति बनाई जाने लगी, इसके पहले बोधीवृक्ष स्तूप, चरण चिन्ह् आदि के रूप में ही पूजा की जाती थी।
3. स्तूपों, चैत्यों और विहारों के निर्माण को लोकप्रियता मिली।
4. कलाकृतियों में किसी एक ही धर्म का प्रतिबिम्बन नहीं होता था, उदाहरण स्वरूप भरहूत एवं सांची स्तूपों में केवल बुद्ध के जीवन की झाँकी ही नहीं बल्कि यक्ष, यक्षिणी नाग और अन्य लोकप्रिय देवताओं के चित्र भी अंकित है।
5. इस प्रकार स्तूपों को सजाने के लिए प्राकृतिक दृश्य भी अंकित किए जाते थे।
6. दूसरी संस्कृतियों से आदान–प्रदान के कारण इस काल की कलाकृतियों में गैर भारतीय कला की छाप भी मिलती है, खास तौर पर यह बात गांधार कला पर सटीक बैठती है। कनिष्क के काल में कला के क्षेत्र में दो स्वतन्त्र शैलियों का विकास हुआ।

1. गाँधार शैली 2. मथुरा शैली

इन दोनों को कनिष्क की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया गया।

1. गाँधार कला शैली :–

यूनानी कला के प्रभाव से देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कला की जिस नवीन शैली का उदय हुआ। उसे 'गाँधार शैली' कहा जाता है। गाँधार शैली में भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया है। इस पर रोमन कला का भी स्पष्ट प्रभाव है इसका विषय बौद्ध है, इस कारण कभी–कभी इस कला को यूनानी बौद्ध, इंडो ग्रीक, ग्रीको रोमन कला भी कहा जाता है। इस शैली की मूर्तियाँ अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के अनेक प्राचीन स्थलों से प्राप्त हुई है। इसका केन्द्र गाँधार ही था और इसी कारण ये गाँधार कला के नाम से अधिक लोकप्रिय है।

बौद्ध मूर्तियाँ :–

गाँधार कला के अन्तर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्वों की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण हुआ। ब्राह्मण और जैन धर्मो से संबंधित मूर्तियाँ इस कला में प्रायः नहीं मिलती, मूर्तियाँ काले सलेटी पाषाण चूने तथा पक्की मिट्टी से बनी है। ये ध्यान, पदमासन धर्मचक्र प्रवर्तन, वरद तथा अभय आदि मुद्राओं में ही साथ ही साथ बुद्ध के जीवन तथा पूर्वजन्मों से संबंधित विविध जन्म, महाभिनिष्क्रमण, संबोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण आदि का अंकन भी इसी शैली में किया गया है। कलाकारों को उपवासरत तपस्वी के शरीर का यथार्थ चित्रण करने में अद्भुत सफलता मिली है। नसों व पसलियों को अत्यन्त कुशलता पूर्वक उभारा गया है, पेट अंदर धंसा हुआ है किन्तु मुखमण्डल की शांति दृढ़ इच्छा शक्ति को प्रकट करती है।

गाँधर शैली की मूर्तियों की कुछ अलग विशेषताएँ है जिनके आधार पर वे स्पष्टतः भारतीय कला से अलग की जा सकती है इसमें मानव शरीर के यथार्थ चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, माँसपेशियों, मूँछों, लहरदार बालों का अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से प्रदर्शन हुआ है। बुद्ध की वेशभूषा यूनानी है और उनके पैरो में जूते दिखाये गये है। प्रभामण्डल सादा और अलंकरण रहित है और शरीर से अत्यन्त सादे अंग प्रत्यंग दिखाने वाले झीने वस्त्रों का अंकन हुआ है। घुंघराले बाल यूनानी देवता अपोलो की नकल प्रतीत होती है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व मूर्तियों के अतिरिक्त गाँधार शैली की कुछ देवी–मूर्तियाँ भी मिलती है। इनमें हारीति तथा रोमा अथवा एथिना देवी की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हारीति को मातृदेवी के रूप में पूजा जाता था तथा वह सौभाग्य व धन–धन्य की अधिश्ठात्री थी।

गाँधार शैली में निर्मित बुद्ध तथा बोधिसत्व मूर्तियाँ ही विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। इन मूर्तियों में आध्यात्मिकता तथा भावुकता न होकर बौद्धिकता एवं शारीरिक सौंदर्य की ही प्रधानता दिखाई देती है। अपने यूनानी स्वरूप के कारण यह भारतीय कला की मुख्य धारा से पृथक रहीं तथा इसका क्षेत्र पश्चिमोत्तर प्रदेश तक सीमित रहा। यूनानी मनुष्य के सौंदर्य तथा बुद्धि को ही सर्वेसर्वा समझते थे। भारतीय दृष्टि में लौकिकता के स्थान पर अमरत्व और ससीम के स्थान पर असीम की प्रधानता थी। यूनानी विचार नैतिक तथा बुद्धि प्रधान था जबकि भारतीय विचार अध्यात्मिक एवं भावना प्रधान था किंतु भारत के बाहर गाँधार कला का व्यापक प्रभाव रहा। इसमें चीनी, तुर्किस्तान, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान की बौद्ध कला को जन्म दिया। कुषाण काल में दो कला केन्द्र विकसित हुए जिनमें से एक का नाम गाँधार कला केन्द्र तथा दूसरा मथुरा कला केन्द्र था।

गांधार कला केन्द्र प्रथम शताब्दी ई0पू0 से लेकर 5वीं शताब्दी ई0 तक रहा। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह स्थान ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ न केवल विदेशियों से ही सम्पर्क संभव था, अपितु विदेशियों का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ा। इन विदेशियों में ईरानी, यूनानी, रोमन, शक तथा कुषाण सम्मिलित थे।

ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में गाँधार कला के उदाहरण हद्दा और जैलियन में मिले है। ये कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। यही कला हद्दा से बामियान और वहाँ से चीनी तुर्किस्तान और चीन पहुँची। गाँधार कला के अन्तर्गत मूर्तियों में शरीर की आकृति को सर्वथा यथार्थ दिखाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरे शब्दों में यह यथार्थवादी कला है।

2. मथुरा कला शैली :–

कुषाण काल में मथुरा भी कला का प्रमुख केन्द्र था, जहाँ अनेक स्तूपों, विहारों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। इस समय तक शिल्पकारी तथा मूर्ति निर्माण के लिए मथुरा के कलाकार दूर–दूर तक प्रख्यात हो चुके थे। यहाँ से अनेक हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इनमें अधिकांश कुषाण युग की है।

कनिष्क तथा वासुदेव के काल में मथुरा कला का सर्वोत्कृष्ट विकास हुआ। प्रारंभ में यह माना जाता था कि गाँधार की बौद्ध मूर्तियों के प्रभाव एवं अनुकरण पर ही मथुरा की बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ, परन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि मथुरा की बौद्ध मूर्तियाँ गाँधार से सर्वथा स्वतन्त्र थी तथा उनका आधर मूल रूप से भारतीय ही था। कनिष्क के शासनकाल में महायान बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त हो गया। इसमें बुद्ध की मूर्तिरूप में पूजा करने का विधान था। बौद्धों की तृप्ति अब केवल प्रतीक पूजा से नहीं हो सकती थी, उन्हें बुद्ध को मानव मूर्ति के रूप में देखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इसी भावना से मथुरा के शिल्पियों द्वारा पहले बोधिसत्व तथा फिर प्रतिमाओं का निर्माण किया। जहाँ तक गाँधार का प्रश्न है, वहाँ हमें किसी प्रकार के धार्मिक आंदोलन का प्रमाण नहीं मिला है।

मथुरा से बुद्ध एवं बोधिसत्वों की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई मूर्तियाँ मिली है, उनके व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिलता है। बुद्ध मूर्तियों में कटरा से प्राप्त मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखित है यह मूर्ति समग्र रूप से कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त प्रशंसनीय है, इसके अतिरिक्त मैत्रिय कश्यप, अवलोकितेश्वर आदिबोधिसत्व मूर्तियाँ भी मथुरा से मिलती है। ये सफेद चित्तीदार लाल एवं खादर पत्थर से बनी है ये मूर्तियाँ आध्यात्मिक एवं भावना प्रधान है, अनेक मूर्तियाँ वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण आदि उनके जीवन की विविध घटनाओं का कुशलतापूर्वक अंकन मथुराकला के शिल्पियों द्वारा किया गया है, यहाँ के कलाकारों ने ईरानी तथा यूनानी कला के कुछ प्रतीकों को भी ग्रहण कर उन पर भारतीयता का रंग चढ़ा दिया, यही कारण है कि मथुरा की कुछ बुद्ध मूर्तियों में गाँधार मूर्तियों के लक्षण दिखाई देते है। मथुरा शैली में उपासकों की भी मूर्तियाँ मिली है तथा शिल्पकारों के भी सुंदर नमूने मिलते है। बुद्ध एवं बोधिसत्व के अतिरिक्त मथुरा से कनिष्क की एक सिररहित मूर्ति मिली है। जिस पर 'महाराज राजाधिराजा देवपुत्रों कनिष्को' अंकित है। अभयमुद्रा में आसीन बुद्ध की एक मूर्ति 'अन्योर' से मिली है जिसे 'बोधिसत्व' की संज्ञा दी गई है। इस पर कनिष्क संवत् 51 अर्थात् 129 ई0 की तिथि अंकित है।

इसके अतिरिक्त मथुरा के शिल्पियों ने बुद्ध–बोधिसत्व मूर्तियों के अतिरिक्त हिन्दू एवं जैन मूर्तियों का भी निर्माण किया, हिन्दू देवताओं में विष्णु, सूर्य, शिव, कुबेर, नाग, यक्ष की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई है जो अत्यन्त सुन्दर एवं कला पूर्ण है। लक्ष्मी को कमल पर बैठी मुद्रा में दिखाया गया है। जैन मूर्तियाँ दो प्रकार की है – खड़ी मूर्तियाँ जो कायोत्सग्र मुद्रा में तथा बैठी हुई मूर्तियाँ जो पदमासन में है। तीर्थकर प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर 'श्रीवत्स' का पवित्र मांगलिक चिन्ह अंकित है। इनकी चौकी पर लेख भी उत्कीर्ण है जिनसे उनकी पहचान की जा सकती है। इस प्रकार मथुरा के कलाकारों का दृष्टिकोण असांप्रदायिक था ओर उन्होंने बौद्ध, जैन तथा हिन्दू सभी के लिए उपयोगी प्रतिमाओं को प्रस्तुत किया।

कुषाण सम्राटों का भारतीय संस्कृति में योगदान :–

कुषाण लोगों की अपनी कोई विकसित संस्कृति नहीं थी, किन्तु जब वे भारत या उसके सीमान्त प्रदेशों में बसे तो उन्हें भारतीय और यूनानी संस्कृति को अपनाने में देर न लगी। उनके सिक्के अभिलेख और कलाकृतियाँ इस बात की साक्षी है कि उन्होंने इन दोनों संस्कृतियों को अपनाया। वे योग्य शासक थे। उन्होंने इस समन्वित संस्कृति को ऐसा प्रोत्साहन दिया कि यह खूब फली–फूली। उत्तरी भारत की जनता को यूनानी, शक और पल्लवों की लूटमार से अब मुक्ति मिली और कुषाणों ने सारे उत्तरी भारत में शांति और सुव्यवस्था स्थापित की। इस राजनैतिक शांति के युग में भारतीय संस्कृति की प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। धर्म, साहित्य, कला, विज्ञान, व्यापार सभी दिशाओं में अभूतपूर्व प्रगति हुई। गुप्त राजाओं से पहले कुषाण राजाओं का युग भारत के सांस्कृतिक विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसे गुप्तकालीन संस्कृति की पृष्ठभूमि कहना अत्युक्ति न होगी।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार हम देखते है कि कुषाण काल में स्थापत्य और मूर्तिकला अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयी और शिल्पियों ने कला के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत किए। ये शिल्पी अब राजकीय सहायता पर ही आश्रित नहीं रहे, क्योंकि कई व्यापारियों, श्रद्धालुओं और अन्य लोगों ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया।

कला रूप और कथ्य प्रस्तुति में निरंतर विकास होता रहा, मसलन, आरंभिक शिल्प चित्रकला मिट्टी की मूर्ति जैसी संरचनात्मक अभिव्यक्तियों का विकास परिपक्व मूर्ति कला के रूप में हुआ। इस

काल में सपाट व गोलकार दोनों ही प्रकार की शिला मूर्तिकला का विकास हुआ, प्रतीकात्मक वस्तुओं की जगह मूर्तियों ने ले ली। इस प्रकार के परिवर्तन का सबसे अच्छा उदाहरण बुद्ध की मूर्तियाँ है।

गाँधार, मथुरा, अमरावती में अलग–अलग कला रूपों का विकास हुआ, हालांकि इन कला रूपों में धार्मिक विषयों को प्रमुखता प्राप्त हुई है, पर मनुष्य एवं प्रकृति का चित्रण भी हुआ है। इस प्रकार के चित्रों में उस काल की सामाजिक और आर्थिक जिंदगी की हल्की झांकी मिल सकती है। मथुरा में उत्कीर्ण भिक्षुओं संरक्षकों और सेवकों की मूर्तियाँ इसका अच्छा उदाहरण है।

पुस्तक सूची

1. IGNOU भारत–प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खण्ड–6, ईकाई–26, कला एवं वास्तुकला, पृष्ठ–37
2. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डी.एन.झा. एवं कृष्ण मोहन श्रीमली, प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, अध्याय–9, मौर्यात्तर काल, पृष्ठ–247
3. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, लेखक कृष्ण चन्द श्रीवास्तव एवं एम. श्रीवास्तव अध्याय–26, कुषाण युगीन समाज और संस्कृति, प्रकाशक यूनाईटेड बुक डिपो, 21 यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद, पृष्ठ–335 तथा 353 से 358 तक
4. प्राचीन भारत का इतिहास (आदिकाल से 1000 ई0 तक), लेखक आर.के. मजूमदार तथा ए.एन. श्रीवास्तव, अध्याय–13, कनिष्क का साम्राज्य, महायान बुद्ध धर्म और कला का विकास, प्रकाशक एस. डी.बी. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4075–नई सड़क, दिल्ली, पृष्ठ–383
5. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डॉ. ओमप्रकाश, प्रकाशक विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0 लि0, अध्याय–11, मौर्यात्तर काल का इतिहास, पृष्ठ–219–220

मन्दीप शर्मा

एम.ए. इतिहास, यूजीसी नेट गांव बेरला, तहसील बाढ़डा
जिला चरखी दादरी (हरियाणा) – 127312
मो. – 09671583483, 8053156731
E-mail: historymandeep@gmail.com

7

वाल्मीकि रामायण में नारियों की स्थिति

डॉ० नीलमणि कुमार पाठक

सारांशः–

वाल्मीकि रामायण महज्जीवन का महाकाव्य है। इसमें नृवंश (रघुकुल), वानरवंश (बालिसुग्रीवादि के कथानक) और राक्षसवंश (रावणादि के कथानक) वर्णन के व्याज से उदात्त जीवन की उपादेयता को मुहुर्मुहुः रेखांकित किया गया है। इन राजवंशों में परस्पर संघर्ष नृवंश और वानरवंश का राक्षसवंश के विरोधस्वरूप चित्रित हुआ है। प्रत्येक राजवंश भी अपने अन्तःविरोधों से दो–चार होता रहा है, यथा– राम का वनवास, सुग्रीव और बालि का परस्पर संघर्ष और विभीषण द्वारा सर्वसमर्थ लंकाधिपति रावण का विरोध। आशय है कि तीनों राजवंशों में विरोध का आदिमस्वर परिवार–कुटुम्ब के बीच से ही फूटा है। परिवार के बीच से उठी चिंगारी ही कालक्रम में परिस्थितिवश ज्वाला बन कर रामायण में शुभाशुभ घटनाओं को आलोकित करती है और जनसामान्य कृत्याकृत्य के संबंध में अपनी मति बना लेता है। जनसाधारण में वाल्मीकि रामायण यह स्पष्ट सन्देश पहुँचाने में समर्थ होता है कि स्त्रियाँ सम्मानीय हैं, अनुपेक्षणीय हैं क्योंकि कैकेयी के कोप, सीता का अपहरण, तारा और मन्दोदरी की किंकर्तव्यता समाज को बहुत कुछ सोचने के लिए विवश करता है। रामायण कथा के विस्तार और समापन में सीता, कैकेयी, तारा और मन्दोदरी ने अपने–अपने तरह से प्रभूत योगदान किया है।

वाल्मीकि रामायण में स्त्रियों की स्थिति अधिकतया मानमर्यादा और पारिवारिक संरचना द्वारा ही व्याख्यायित है। इस महाकाव्य में नारी कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में और माता के रूप में बहुलता से चित्रित है।

वाल्मीकि रामायण में नारी कन्या के रूप में

परिवार में कन्याओं के प्रति स्नेह, दुलार का भाव था। उनसे किसी प्रकार का द्वेष, द्रोह या घृणा नहीं की जाती थी। परिवार में कन्याओं का लालन–पालन पूरे मनोयोग के साथ किया जाता था। उनके व्यक्तित्व विकास के सारे उपक्रम रचे जाते थे। पुत्री अपने पिता की 'दयिता' अर्थात् प्रीति–पात्र थी। यह धारणा थी कि गुणवती कन्या की प्राप्ति दीर्घ तपस्या से ही संभव है।

सीता को खेत में पाकर जनक अहोभाव से भर उठे थे और अपनी स्नेहराशि से सीता को सँवार दिया था। राजा जनक की बड़ी रानी भी सच्ची माता की भाँति भरपूर स्नेह से सीता का लालन–पालन किया था। कन्याओं का समुचित लालन–पालन होने के बावजूद परिवार में कन्या के विवाह को लेकर चिंता रहती थी।

कन्याओं का विवाह –

कन्या के लिए सुयोग्य वर की तलाश आज की ही भाँति तदानींतन माता–पिता को उद्वेलित करता था। कन्याओं का सुपात्र के साथ उपयुक्त ढंग से विवाह सम्पन्न कराना बड़े महत्त्व का कार्य था, इसे माता–पिता गम्भीरता से लेते थे। पूर्ण विचार–विमर्श, नियत सिद्धांत के सहारे कन्या के लिए वर का चुनाव किया जाता था। कुशनाभ की कन्याओं का विवाह–प्रसंग इसका उदाहरण है। राजा जनक ने भी सीता के अनुरूप शील–सामर्थ्य वाला पति मिले इसके लिए विशाल स्वयंवर का आयोजन कर अनेक राजाओं के शत्रुता को भी मोल ले लिया था। कन्या के जन्म के साथ ही परिवार पर एक महान् दायित्व आ जाता था। कन्याओं के प्रति परिवार के उदात्त चिंतन का ही परिणाम था कि विवाहोपरान्त भी सुधीजन नारी की उपेक्षा भाव मात्र से ही व्यथित हो जाते थे– सीता हरण के पश्चात् राम यह सोचकर बड़ी दुःखी हुए थे कि यदि लोगों के समूह में राजा जनक मुझसे सीता का कुशल पूछ बैठें तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा–

किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः। (वा.रा. 4/64/11)

विवाह पूर्व कन्याओं का चित्रण

कुमारी कन्याओं को मांगलिक तथा उनकी उपस्थिति को शुभ शकुन माना जाता था। जब राम वन से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते है– तब कुमारी कन्याएँ उनके आगे चलती हैं– ''कन्याः ..... रामस्य पुरतो ययुः (वा.रा. 6/128/38)। धार्मिक एवं सार्वजनिक व्रत–उत्सवों में अविवाहित कन्याओं की उपस्थिति मांगलिकता और शोभा को बढ़ाने वाली थी। राजा के राज्याभिषेक के समय कन्याओं ने उनपर जल छिड़का था।

जब से राजा जनक ने सीता को पुत्री के रूप में ग्रहण किया था, तभी से उनके सुख–समृद्धि की अतिशय वृद्धि होने लगी थी। कन्यादान पिता के लिए एक पुण्याधायक कर्म था, पुत्री के लिए वर प्राप्त करना, पिता का धार्मिक एवं अनिवार्य कर्तव्य था।

कन्याओं का शिक्षा का प्रबंध –

रामायण में मुख्य स्त्री पात्रों के अनुशीलन से यह संकेत मिलता है कि विवाह–पूर्व उनको उपयोगी शिक्षा प्रदान की जाती थी। विवाह–पूर्व ही उन्हें वैदिक और स्मार्त क्रिया कर्मों की शिक्षा दी जाती थी एवं वे मन्त्रवित् भी होती थी। राम के यौवराज्याभिषेक के दिन कौसल्या अग्नि में मन्त्रों सहित आहुति प्रदान कर रही थीं–

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा
अग्निं जुहोति स्म तदा मंत्रवत्कृतमङ्गलम्। (वा.रा. 2/20/15)

सीता संध्योपासन तत्पर थीं। तारा भी मन्त्रों की जानकार थीं। कर्मकांड की शिक्षा के अतिरिक्त कन्याएँ शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करती थीं। इस तरह से ज्ञान के स्रोत उनके माता पिता, ब्राह्मण, अभ्यागत और ऋषि मुनि हुआ करते थे।

कन्याओं को धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। सीता राजधर्म की जानकार थी (अभिज्ञा राजर्धाणाम् 2/26/4)। इसके अतिरिक्त कन्याओं को संगीत–नृत्य – वाद्य आदि ललित क्रियाओं की शिक्षा दी जाती थी। रावण के अंतःपुर में रमणियाँ वाद्य यंत्रों के प्रयोग में प्रवीण थी।

यहाँ तक की उन्हें सैन्यगतिविधियों की भी शिक्षा दी जाती थी। देवासुर–संग्राम में कैकेयी अपने पति के साथ समर भूमि में गई

थी। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में रानी कौसल्या ने अश्व की बली दी थी। अपने तलवार के तीन वार से घोड़े का शिरश्च्छेदन किया था। रावण की लंका में सीता की राक्षसी पहरेदारिनें शस्त्रधारिणी महिला सैनिक थीं।

आशय है कि रामायण में स्त्रियों के जीवनोपयोगी सर्वविधशिक्षण की सुविधा थीं। कौमार्य काल में कन्याएँ अत्यधिक औपचारिकता के बंधनों से मुक्त रहती थी। नगर के उद्यानों में वे आभूषण से सुसज्जित होकर भ्रमण किया करती थी। कुशनाभ की कन्याओं के प्रसंग से यह स्पष्ट होता है।

विवाहोपरांत कन्याएँ 'वधू' पद को प्राप्त करती थी। पूर्व के संस्कार और शिक्षा दीक्षा उन्हें विवाहोपरांत नए परिवेश में सामंजस्य बैठाने में भरपूर सहयोग देते थे। अनुभवहीन पुत्रवधू को सास शिक्षित करती थी कि असाधारण परिस्थितियों में पति के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए। रामायण में सास–ससुर और पुत्रवधू के बीच स्नेहसिक्त संबंध चित्रित है।

परिणीता

रामायण में यह प्रबल धारणा उपस्थित है कि 'गतिरेका पतिर्नार्याः महाराज दशरथ को छोड़कर पुत्र के साथ वन जाने को तत्पर माता कौसल्या को राम यही कहकर समझाते हैं कि स्त्री का समग्र धर्म पति के आस–पास ही संवर्धित होता है। पत्नी के लिए उसका पति ही देवता, गुरु, सुहृद, गति, धर्म, प्रभु और सर्वस्व है। अतः उसकी सर्वतो भावेन भक्ति ही पत्नी का एकमात्र कर्तव्य है।

रामायण कालीन समाज पत्नी से कठोर अनुशासन और आत्म–त्याग का अभिलाषी था। पतिव्रता एवं साध्वी नारियों का वर्णन रामायण में बहुतायत में प्राप्त है। यह अनुपम घटना है कि– ''सीता की पति–भक्ति विवाहोत्तर सुख–भोगों, वनवास के कष्टों, अपहरण के अपयश, राज्याभिषेक के गौरव और वैभव तथा अंतिम परित्याग की मर्मन्तक वेदना जैसी उत्तरोत्तर विषम परिस्थितियों में भी अखंड और अविचलित बनी रही।'' रामायण सीता के महच्चरित्र का ही गायक है– काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्। (वा.रा. 1/4/7)

सच्चरित्र स्त्रियों का समाज में अत्यधिक सम्मान था। उनका अनादर करना मौत का वरण करने के समान था।

पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले। (वा.रा. 6/111/67)

समाज भी स्त्रियों की रक्षा के लिए तत्पर था। सीता अपहरण के समय बलाबल का भान होते हुए भी जटायु सीता को रावणपाश से बचाने के लिए अपने प्राणों से खेल जाता है। विवाहित स्त्रियाँ पति की शुभेच्छा से व्रतों एवं नियमों का अनुष्ठान करतीं तथा ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा देती थीं।

परिणीताओं की रक्षा करना पतियों का सबसे बड़ा कर्तव्य था। पत्नियों की भरण–पोषण की समुचित व्यवस्था करना पतियों का परम दायित्व था। जब राम सीता को छोड़कर अकेल वन जाना चाहते हैं तब सीता उन्हें फटकारते हुए कहती है कि– ''शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि।'' (वा.रा. 2/30/8)

सारांशतः आशय है कि पति और पत्नी दोनों से यह समाज को अपेक्षा रहती थी कि वे दोनों परस्पर सहयोगी और एक–दूसरे के पूरक बनें। यह मान्यता थी कि पति पत्नी संयुक्त रूप से अपना कर्म–फल भोगते है– ''भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।'' (वा.रा. 2/27/5)

स्त्रियाँ माता के रूप में

रामायण में रेखांकित किया गया है कि पत्नी के जीवन की गौरवमय परिणति, उसके व्यक्तित्व का पूर्णतम विकास मातृत्व में ही संभव हो पाता है। वंश–प्रवर्तन, स्त्री के समस्त स्नेह और सौन्दर्य की सफलता का सूचक था। पुत्र प्रसव कर के पत्नी अपने पति को एक तरह से जन्म देती है, और ''धात्री'' इस पद से अलंकृत होती है और जननी कही जाती है। पत्नी का बंध्या होना पति के लिए कष्ट का कारण था। राक्षस सुमाली ने अपनी पुत्री कैकसी से कहा था– बेटी! तुम स्वयं प्रस्तुत हो कर महर्षि पुलस्त्य के पुत्र मुनीश्वर विश्रवा को अपना पति बनाओ, इससे तुम्हारे धनेश्वर कुबेर जैसे तेजस्वी पुत्र होंगे, जो राक्षस जाति का संवर्धन करेंगे। संतान के व्यक्तित्व निर्माण में माता का समधिक योगदान होता था। पारिवारिक जीवन का वह केन्द्र बिन्दु होती थीं। राम कहते हैं– ''स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः।'' (वा.रा. 2/26/32) मेरी सभी माताएँ स्नेह, प्रेम, सेवा सभी दृष्टियों से एक समान हैं।

संक्षेप में रामायण में नारी के तीन रूप पुत्री, पत्नी और माता पर विशेष ध्यान दिया गया है। परिवार एवं समाज की समृद्धि एवं शांति के लिए इनका सर्वतोभावेन संस्कारित होना अनिर्वाय समझा गया है, इसके विपरीत मार्ग अपनाने पर परिवार और समाज का अहित होना शंकित है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची :–

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खंड) गीता प्रेस, गोरखपुर
2. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (द्वितीय खंड) गीता प्रेस, गोरखपुर
3. रामायण कालीन समाज (शांति कुमार नाथूराम व्यास), सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 1987
4. रामायण कालीन संस्कृति (शांति कुमार नाथूराम व्यास), सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 2001

डॉ० नीलमणि कुमार पाठक
महावीर स्थान, मौलाबाग
आरा, भोजपुर – 802301
मो.नं. – 810237064

8

अमरकांत की कहानियों में सामाजिक यथार्थ

डॉ0 मृत्युंजय कोईरी

सारांशः–

समाज के निम्न वर्ग अपनी हालत पर जीवन–यापन करने पर विवश हैं। भारत के अन्नदाता किसानी–जीवन से तंग आकर मजूरी करने के लिए मजबूर हैं। एक ओर देश में बेरोजगारों की फौज खड़ी है। वहीं दूसरी ओर साक्षात्कार में भाई–भतीजावाद, सोर्स–सिफारिश और रिश्वत का खेल जारी है। समाज में स्त्रियों के साथ अत्याचार हो रहे हैं। समाज के ऐसे ज्वलंत मुद्दा को अमरकांत अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर करते हैं। अमरकांत की 'इंटरव्यू', 'दोपहर का भोजन', 'कुहासा', जिंदगी और जोंक', 'बहादुर', 'लड़का–लड़की', 'पलाश के फूल', 'प्रिय मेहमान' और 'मछुआ' आदि कहानियाँ समाजिक यथार्थ का जीता–जागता उदाहरण है।

विषय–प्रवेश :

'इंटरव्यू' कहानी में अमरकांत समाज की बेरोजगारी और साक्षात्कार में चल रहे सोर्स–सिफारिश, भाई–भतीजावाद और रिश्वत को उजागर करते हैं। युवक आज इस तरह बेरोजगार हैं कि वह राशनिंग विभाग में साठ रुपये की क्लर्की के एक रिक्त पद के लिए इंटरव्यू के निर्धारित समय से पहले लगभग तीन–साढ़े तीन सौ उम्मीदवार पहुँच चुके हैं। इंटरव्यू में मोटे तौर पर तीन श्रेणी के कैंडीडेट हैं। प्रथम श्रेणी में वे हैं, जो इंटरमीडिएट तक की योग्यता प्राप्त कर चुके हैं। जिनकी पढ़ाई एक–दो साल पहले छूट गयी है। नौकरी की तलाश में यहाँ–वहाँ भटक रहे हैं। कहानीकार के शब्दों में–

''उनको चंद महीनों या सालों से नौकरी नहीं मिल रही थी। वे बिना सिफारिश, योग्यता तथा स्वास्थ्य के दिन भर या तो लू या पानी या कड़ाके की सर्दी में छोटे–छोटे प्रेसों, प्राइवेट दफ्तरों, मिल–फैक्टरियों के चक्कर लगाया करते और सभी जगहों से कुत्तों की तरह दुरदुराये जाते।''[1]

बहरहाल दूसरी श्रेणी में वकील, होमियोपैथ डॉक्टर, वैद्य तथा हकीम की है। ये मशहूर और चर्चित वकील, होमियोपैथ डॉक्टर, वैद्य और हकीम के सामने इनकी हालत दयनीय है। अंतिम और तीसरी श्रेणी में कुछ खानदानों के हैं। जिनकी आर्थिक स्थिति तेजी से बिगड़ रही है। उनके घर वालों ने जबरन भेजा है। इंटरव्यू में कुछ उम्मीदवार को बुलाया गया। ताकि किसी को संदेह ना हो कि रिश्वत और संपर्क से उम्मीदवार का चयन किया गया। इसलिए जितने उम्मीदावर को बुलाया गया। उससे केवल नाम और पता पूछकर बाहर भेज दिया जाता है। अंत में नगर राशनिंग अधिकारी बाहर निकलकर सूचना दी।

कहानीकार के शब्दों में–

''यह सूचित करते हुए हमें खुशी हो रही है कि हमने इस जगह के लिए एक योग्य व्यक्ति को चुन लिया है। इस हालत में अब और लोगों का इंटरव्यू लेना सम्भव नहीं था। अब शाम भी हो गई है। आप लोग जिस तरह यहाँ कष्ट करके आए और शान्तिपूर्वक खड़े रहे, उसके लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं, साथ–ही–साथ यह भी आश्वासन देते हैं कि भविष्य में और जगहें खाली होने पर आप सबको मौका दिया जाएगा।''[2]

एक साधारण क्लर्क से लेकर उच्च पद की नियुक्ति में बड़े अधिकारियों और नेता–मंत्रियों तक का हाथ किस प्रकार रहता है। जिसका प्रमाण 'इंटरव्यू' कहानी के पात्रों के माध्यम से देखिए–

''राशनिंग डिपार्टमेंट तो भ्रष्टाचार का अड्डा है।''

एक ने खुशी प्रकट की 'चलो अच्छा हुआ कि नहीं लिए गए।'

'मन्त्री तक खाने लगे हैं, फिर इन छोटे–मोटे अफसरों की क्या बात!''[3]

'दोपहर का भोजन' कहानी में अमरकांत निम्नवर्गीय समाज के यथार्थ को उपस्थापित किया है। गरीबी को सब जानते हैं। इसीलिए माँ–पत्नी सिद्धेश्वरी की जिद करने पर भी पेट भर जाने आ अभिनय करते हैं। सिद्धेश्वरी का बड़ा लड़का रामचन्द्र काम की तलाश में है। दोपहर को जब माँ खाना परोसती है। तब वह पहले एक गिलास पानी गटगटा लेता है। फिर छोटे–छोटे टुकड़े को मुँह में लेकर धीरे–धीरे चबा रहा है। रोटी का एक टुकड़ा शेष रहते ही माँ के द्वारा और एक रोटी ला देने की जिद करती है। तब रामचंद्र कहता है–

''नहीं–नहीं, जरा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं तो यह भी छोड़ने वाला हूँ। बस, अब नहीं।''[4]

माँ की ममता बेटा को भूखा रहने नहीं देना चाहती। स्वयं वह क्यों न भूखी रहे। सिद्धेश्वरी को पुत्र–प्रेम ने कम–से–कम आधी रोटी देने की जिद कराती है। तब एक गरीब पुत्र का माँ के प्रति मातृत्व–प्रेम देखिए–

''अधिक खिला कर बीमार डालने की तबीयत है क्या? तुम लोग जरा भी नहीं सोचती। बस, अपनी जिद। भूख रहती तो क्या ले नहीं लेता?''

बहरहाल रामचंद्र की भाँति मँझला पुत्र और पति चन्द्रिका प्रसाद को मालूम है कि घर में कम रोटी है। लेकिन वह कसम देकर या जिद करके थोड़ा–सा लेने पर विवश कर देती हैं। माँ की जिद पर मँझला थोड़ा–सा दाल माँग लेता है। जहाँ माँ दाल से कटोरे भर देती है। पति मुंशी चन्द्रिका प्रसाद दो रोटियाँ, कटोरा भर दाल और चने की तली सब्जी का एक–एक ग्रास को इस तरह चबा रहा है। जैसे बूढ़ी गाय जुगाली कर रही है। पैंतालीस का चन्द्रिका पचास–पचपन का लगने लगा है। वह थाली में बचे–खुचे दानों को बन्दर की तरह बीन रहे हैं कि सिद्धेश्वरी बड़ा लड़का की कसम देती हुए कहती हैं–

''बड़का की कसम, एक रोटी देती हूँ। अभी बहुत–सी रोटी हैं।''[6]

सच्चाई तो यह है कि रसोई में केवल एक रोटी शेष बची है। फिर भी वह रोटी लेने की सौगंध देती हैं। प्रसाद कसम को रखने के लिए गुड़ मांग लेता है। जब शेष एक रोटी को लेकर खाने की तैयारी करती है। तभी उनकी नजर सोया हुआ छोटा पुत्र पर गयी। जिसमें से आधी

छोटा पुत्र को रख देती है। और आधी रोटी के साथ सिद्धेश्वरी एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ जाती हैं। मुँह में पहला टुकड़ा लेते ही आँखों से मजबूरी और विवशता के आँसू निकल पड़े। यह वर्तमान समाज के गरीब परिवारों की हालत है।

देश के अन्नदाता अपनी खेती से परिवार का भोरण–पोषण करने में असमर्थ हैं। वे विवश होकर अपने पुत्र को शहर जाकर रिक्शा व मजूरी करने को प्रेरित करते हैं। 'कुहासा' नामक कहानी में कहानीकार झींगुर किसान की विवशता और किसान पुत्र दूबर की दर्दनाक मौत के माध्यम से समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। बारिश नहीं होने पर और गाँव में मजूरी का काम नहीं मिलने पर झींगुर अपने सतरह साल के पुत्र को गाँव के अन्य लड़के की भाँति शहर जाकर पैसा कमाने के लिए डाँटते–फटकारते हैं। किसानों की दयनीय स्थिति कहानीकार के शब्दों में–

''सावन का महीना था, पर आकाश में बादल का नामोनिशान तक नहीं था। तारे जगमग–जगमग कर रहे थे। हवा तेज चल रही थी जैसे हाकड़। आषाढ़ भी बिन बरसे बीत गया था। बारिश न होने से खेती चौपट हो गई थी और गाँव में मर–मजूरी का कोई काम भी नहीं था। जब चारों ओर त्राहि–त्राहि मची हुई थी और गरीब दाने–दाने को तरस कर घास–पात खाने लगे थे।''[7]

शहर में दूबर को पहले दिन पार्टी के बर्तन, कड़ाई, जूठे पत्तल और अन्य कूड़े को साफ करने का काम मिलता है। काम करने के बाद भूखा दूबर बासी पूड़ियाँ जो लकड़ी की तरह कड़ी, महकती कोंहड़े की सब्जी, पुलाव, चटनी और दही पर कुत्ते की तरह टूट पड़ता है। खाने के बाद डेढ़ रुपये लेकर निकला। रात को चौक–चौराहे पर गुजार लेता है। दूबर राशन मंडी में मजूरी, स्टेशन के ओवरब्रिज में काम करता और पेट की क्षुधा शांत करता। शहर में चुनाव की घोषणा होते ही नेता के चमचे रामचरन हर पार्टी से पैसा लेकर बेबस कुली–मजदूरों को रिक्शा और मकान दिलाने का झूठा आश्वासन देकर हाथ में झंडा थमा कर गली–गली में हर दिन अलग–अलग पार्टी का नारा लगवाते हैं। एक–दो रुपये और रास्ते में थोड़ा बहुत खिला–पिला देते हैं। नेता कुर्सी में बैठ जाते हैं। लेकिन कुली–मजदूर को प्रतिदिन खाने के लिए मजूरी करना ही पड़ता। इन्हें जाड़े में बिन कम्बल से रात गुजारने पर विवश हैं।

किसी समाज सेवी या दयालु नेता से कम्बल मिल जाता है। फिर उस कम्बल को लेने के लिए भिखमंगे से लेकर रामचरन जैसे चमचे टूट पड़ते है। नेता के दलाल गरीब ग्रामीण दूबर को टी.बी. कैन्सर जैसे घातक बीमारी का भय दिखाकर तीस रुपये की जगह पचीस रुपये देकर ले लेते हैं। कुहासा से रात बर्फ हो गई थी। कम्बल के बिना बेचारा दूबर ठंड से रात को मर जाता है। आज किसान का पुत्र शहर में मजूरी करते दुनिया से विदा हो रहे हैं।

'जिंदगी और जोंक' कहानी का रजुआ समाज में हर प्रकार से पीड़ित और शोषित है। रजुआ पर झूठा आरोप लगाकर पीटना। हिसाब से ज्यादा काम कराया जाना और मजूरी कम देना। संवेदनहीनता की पहचान है। जमुनालाल के वहाँ जाने में देर होने पर रजुआ को जमुनलाल पहले गाल में दो थप्पड़ जड़ देता है फिर गरजता हुआ बोलता है–

''सुअर, धोखा देता है? कह देता नहीं आऊँगा। अब आज मैं तुझसे दिन–भर काम कराऊँगा, देखें कौन साला रोकता है। आखिर हम भी मुहल्ले में रहते हैं कि नहीं।''[8]

रजुआ को प्रकृति का भी प्रकोप झेलना पड़।। पहले हैजा हो जाता है। फिर खुजली। इस कठिन परिस्थितियों में भी जीने की लालसा कम नहीं होती है। वह पशु जैसा जीवन जीते हुए भी मस्त रहता है। जब जहाँ जितना मिल जाता। वह प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लेता है। यथा–

''उसके हाथ में एक रोटी और थोड़ा–सा अचार था और वह सूअर की भाँति चापुड़–चापुड़ खा रहा था। बीच–बीच में वह मुस्करा पड़ता, जैसे काई बड़ी मंज़िल सर करके बैठा हो।''[9]

गरीब आदमी पशु जैसा जीवन जीने पर मजबूर है। सरकार गरीब की उत्थान की बातें करती है। केवल बात करने से समाज बदल नहीं जाती है। आदमी को आदमी बनाये रखने के लिए गरीबों के प्रति अपनी दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है।

'बहादुर' एक नौकर के प्रति उच्चवर्ग के अत्याचार व अन्याय की मार्मिक कहानी है। कहानी के नायक बारह–तेरह वर्ष का बहादुर मालिक के घर में नौकर का काम करता है। मालिक के घर में सारे काम करने के बाद भी गाली और मार खाने पर विवश है। मालिक के पुत्र का अत्याचार देखिए–

''मेरा बड़ा लड़का किशोर काफी शान–शोकत और रोब–दाब से रहने का कायल था और उसने बहादुर को अपने अनुशासन में रखने की आवश्यकता महसूस की थी। फलतः उसने अपने सभी काम बहादुर को सौंप दिये। सबेरे उसके जूते में पालिश लगनी चाहिए। कॉलेज जाने के ठीक पहले साइकिल की सफाई जरूरी थी। रोज ही उसके कपड़ों की धुलाई और इस्त्री होनी चाहिए और रात में सोते समय वह नित्य अपने शरीर की मालिश कराता। पर इतनी सारी फरमाइशों को पूर्ति में कभी–कभी कोई गड़बड़ी भी हो जाती। जब ऐसा होता किशोर गर्जन–तर्जन करने लगता, उसको बुरी–बुरी गालियाँ देता और उस पर हाथ छेड़ देता। मार खाकर बहादुर एक कोने में खड़ा होता चुपचाप।''[10]

बहरहाल बहादुर के साथ केवल मालिक का लड़का ही अपना अधिकार नहीं जमाता। बल्कि निर्मला भी बात–बात पर गुस्सा उतारती है। यथा–

''निर्मला का गुस्से से बुरा हाल हो गया। उसने लपककर उसके माथे पर दो तीन थप्पड़ दिये– सूअर कहीं के।''[11]

साथ–ही एक सीधे–साधे, लाचार, बेबस नौकर पर रिश्तेदार जान–बूझकर रुपये चोरी का झूठा आरोप भी लगाते हैं। गाल पर लगातार मताचा के ऊपर तमाचा जड़ देते हैं। बहादुर को कुत्ते की तरह दुरदुराया जाने लगा। किशोर को अपने–आपको क्या समझता कि वह बहादुर की जान के पीछे हाथ धोकर पड़ गया था। अंततः वह गाली–गलौज और मार–पीट खाकर किसी प्रकार जान बचाकर भाग जाता है। नौकर के प्रति उच्चवर्ग के संवेदनहीन रवैया देखकर मुझे उदय प्रकाश की 'हीरालाल का भूत' कहानी स्मरण हो आता है। जिस कहानी में ठाकुर हरपाल सिंह की हवेली में हीरालाल जिन्न की तरह काम करता है। लेकिन ठाकुर जमीन–जायदाद से लेकर बीबी तक

की इज्जत लूट लेता है। किंतु जब हीरालाल को पागल कुत्ता ने काटा तब दवा–दारू का पैसा तक नहीं देता है। मालिक के प्रति निष्ठापूर्वक काम करने वाले नौकर की दर्दनाक मौत से आत्मा को झकझोर देता है।

समाज की कामुकता प्रवृत्ति के लोग गरीब लड़की–स्त्री को मनोरंजन का साधन समझते हैं। वे अपनी हवस का शिखार बनाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। अमरकांत की 'लड़का–लड़की' और ''पलाश के फूल' कहानी इस प्रवृत्ति के लोगों का यथार्थ को उजागर करती है। 'लड़का–लड़की' कहानी की तारा एक क्लर्क की लड़की है। एक ओर घर की आर्थिक कठिनाइयों का सामना करती है। दूसरी ओर तीन मील पैदल चलकर कॉलेज की पढ़ाई करती है। जहाँ कामुकता के लोभी चंदर अपने प्रेम के जाल में फंसा कर शारीरिक शोषण करता है। लेकिन विवाह की बात आते ही, वह तारा पर ही उलटा आरोप लगाकर शादी से इंकार कर दी। लेकिन तारा भी आक्रोश में आकर चंदर के मकसद को उजागर करती है–

''मतलब स्पष्ट है। प्यार की चरम परिणति है शादी, इसी मंजिल तक पहुँचने के लिए संघर्ष और कुरबानियाँ दी जाती है। लेकिन अब यह मंजिल प्राप्त हो जाती है, तो आपको खुशी नहीं होती। इसका अर्थ है कि आपके संघर्ष की बातें जिम्मेदारियों से बचने और स्वार्थ को छिपाने का बहाना है। मैंने तो जीवन के आरंभ से ही संघर्ष किया है, आपने क्या किया? आप भूख जानते हैं? आपको गरीबी, जलालत, घुटन, ऊब, निराशा का पता है? साफ तो यह है कि आपको एक नारी–देह की जरूरत है और जरूरत है अपने अहंकार की तृप्ति की।''[12]

'पलाश के फूल' के रायसाहब भी इसी प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं, जो पन्द्रह–सोलह वर्ष की अंजोरिया के पिताजी भुलई को मार–पीटकर हाथ–पाँव तोड़वाकर अपाहिज बना देते हैं। फिर इलाज का पैसा उधार में देते हैं। वहीं खाने के लिए गल्ला भी भेजवा देते हैं। ताकि वह अपनी बेटी को काम के लिए भेजे। और वह अपनी हवस का शिकार बना सके। रायसाहब मिठाई, साड़ी, साबुन, कंघी आदि सामान देकर अपने प्रति प्रेम–भाव उत्पन्न करके तीन साल तक शारीरिक शोषण किया। जब अंजोरिया रखैल बनकर रहने की आग्रह करती है, तब रायसाहब अपनी रैखल तक बनना नहीं चाहता। वह शैतान और माया का चक्कर समझकर एक रोज चुपके से वहाँ से खिसक जाता है। समाज में कामुकता के लोभी रायसाहब जैसे अनेक रायसाहब हैं, जिनका भंडाफोड़ अमरकांत अपनी कहानियों के माध्यम से करते हैं।

निष्कर्ष : अमरकांत की अधिकांश कहानियाँ शासन–प्रशासन का भ्रष्टाचार, नौकरों की यातना, स्त्रियों की बेबसी, किसान–मजदूरों की दयनीय दशा और बेरोजगारों की फौज के मुख्य कारणों का यथार्थ चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं।

संदर्भ–संकेत

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, अमरकांत, राजपाल, दिल्ली, संस्करण : 2015, पृ0– 14
2. उपरिवत् पृ0– 16
3. उपरिवत् पृ0–17
4. उपरिवत् पृ0–28
5. उपरिवत् पृ0–28
6. उपरिवत् पृ0–31
7. उपरिवत् पृ0–78
8. उपरिवत् पृ0–35
9. उपरिवत् पृ0–36
10. हिन्दी समय. कॉम
11. उपरिवत्
12. उपरिवत्

डॉ0 मृत्युंजय कोईरी
द्वारा, कृष्णा यादव
करम टोली (अहीर टोली)
पो0 – मोराबादी थाना – लालपुर राँची,
झारखंड–834008

9

प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व

डॉ. दीपक कुमारी

सारांशः–

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में कालजयी रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं उनके साहित्य में दमन,उत्पीडन और शोषण आदि सामाजिक बुराईयों की हर अवस्था का यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है। प्रेमचन्द का साहित्य एक प्रकार से सम्पूर्ण भारतीय मध्यवर्ग के जीवन का प्रतिबिम्ब है। प्रेमचन्द साहित्य को जीवन की आलोचना मानते हैं और साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव जीवन है। उन्होंने लगभग साढे तीन सौ कहानियां लिखी, जो मानव जीवन को केन्द्र में रखकर लिखी गई। प्रेमचन्द ने आदर्श और यथार्थ के प्रति अपना जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया ,वह आज भी उतना ही विचारणीय है जितना उस समय था। उनकी आरंभिक कहानियों में हमें आदर्श स्वरूप दिखाई देता है लेकिन साहित्कार जब समाज के यथार्थ से गुजरता है तब उसके अनुभवों में कडवापन आ जाता है।प्रेमचन्द की कहानियों हमें आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व देखने को मिलता है। उनकी शुरूआती दौर की कहानियों में आदर्श व अन्तिम रचनाओं में यथार्थ के दर्शन होते हैं इसी द्वन्द्व के कारण उनके साहित्य में हम आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का स्वरूप देखते हैं। इस शोध–पत्र का उद्देश्य प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व को चित्रित करना है।

बीज शब्दः आदर्श, यथार्थ, द्वन्द्व, साहित्यकार, मध्यवर्ग, युग–निर्माता

आमुखः– प्रेमचन्द को हिन्दी कथा–साहित्य में एक युग निर्माता के रूप में जाना जाता है। विचार और कला के रूप में हिन्दी कहानी को स्थापित करने वाले युग परिवर्तनकारी पहले कहानीकार प्रेमचन्द ही थे। उनके लेखन का आरंभ रवीन्द्रनाथ की कहानियों के प्रभाव और अनुवाद से होता है जिसमें राष्ट्रीयता की भावना मूल है। स्वाधीनता संग्राम और राष्ट्र की चेतना का कोई ऐसा पहलू नहीं,जिस पर उन्होंने न लिखा हो।भारतीय नवजागरण की दृष्टि से स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनका योगदान किसी राजनेता से कम नहीं है।उनके कथा साहित्य में राजनीतिक आन्दोलनों की छाया देखी जा सकती है। स्वदेशी–प्रचार ,बाल–विवाह, विधवा–विवाह, अस्पृश्यता, किसान, मजदूर, शिक्षा आदि समाज–सुधार के मुद्दे प्रेमचन्द की कहानियों में मिलते हैं।सच कहें तो प्रेमचन्द का कथा–साहित्य भारतीय इतिहास व समाज का आईना है।

प्रेमचन्द ने स्वयं कहा है ''कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नही होती वरन् कहानीकार का उद्देश्य मनुष्य चरित्र के अंग को दिखाना है।''1

प्रेमचन्द ने अपनी लेखन–यात्रा की शुरूआत 1907 ई.में की,जो उनकी मृत्यु 1936 तक अबाध गति से चलती रही। उनकी पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'1907 में जमाना पत्रिका में छपी। प्रेमचन्द ने कुल मिलाकर लगभग 300 कहानियॉ लिखी हैं जो 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं। इन कहानियों को पढने से पता चलता है कि जहॉ प्रारंभिक दौर की कहानियों में राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित भावात्मक अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरे दौर में प्रेमचन्द सामाजिक व आर्थिक चेतना से परिष्कृत होते गए।

यहॉ सबसे पहले हम यह जान लेते हैं कि 'आदर्श–यथार्थ का द्वन्द्व'क्या होता है –

मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश के अनुसार,''आदर्श का अर्थ–श्रेष्ठतम अवस्था,पराकाष्ठा रूप,दर्पण,अनुकरणीय वस्तु या उदाहरण आदि।''2

आदर्शवादी का अर्थ–अपनी रचना में आदर्शवाद का अनुकरण करने वाला,सिद्वान्तों के अनुकरण पर जोर देने वाला।

मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश के अनुसार,''यथार्थ का अर्थ–सत्य,प्रकृत,उचित,दरअसल,वस्तुतः आदि।''3

यथार्थ और आदर्श के संबंध में प्रेमचन्द ने विस्तार से विचार किया है और किसी भी बंधी–बंधाई,विचार–प्रणाली के साथ अपने को जोड लेने के स्थान पर अपने लिए स्वतंत्र मार्ग का निर्माण किया है। वे समाज में यथार्थ ही देखना चाहते हैं और आदर्श को भी भूल नहीं पाते। इन दोनों के अति रूप के समर्थक नहीं हैं क्योंकि मानव स्वभाव विसंगतियों से भरा हुआ है।प्रेमचन्द साहित्य के सन्दर्भ में समाज के वास्तविक द्वन्द्व का चित्रण करते हैं–

मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश के अनुसार,''द्वन्द्व का अर्थ है–राग–द्वेष आदि परस्पर विरोधी भावों से उत्पन्न।''4

इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियों में हम समाज के आदर्श व यथार्थ रूप में द्वन्द्व का भी समन्वय देखते हैं क्योंकि साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से ही समाज में बदलाव ला सकता है। कथा सम्राट के रूप में विख्यात प्रेमचन्द का साहित्य द्वन्द्वों के साथ समाज की यथास्थिति को दिखाते हुए उसमें एक परिवर्तन भी चाहता है।उनका यही युगान्तकारी दृष्टिकोण ही उन्हें आधुनिक विचारक की संज्ञा प्रदान करता है।

प्रेमचन्द की प्रारंभिक दौर की कहानियॉ राष्ट्रीय सुधार व मयार्दाओं के साथ–साथ हृदय परिवर्तन की कहानियॉ हैं। प्रेमचन्द द्वारा लिखी गई प्रथम कहानी है 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न'–इस कहानी में प्रेमचन्द ने संघर्ष, त्याग और बलिदान के दो समान्तर कथा सूत्रों को एक साथ नियोजित किया है। दिलफिगार अपनी माशूका दिलफरेब के लिए अपना सब कुछ त्यागकर निरंतर संघर्ष करते हुए प्रेम का उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है तो राजपूत सिपाही अपने देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देशभक्ति का हक अदा करता है। देश और प्रेम की यह कथा अंत में 'देशप्रेम' का जो प्रभाव छोडती है वह अत्यंत प्ररेणादायक है।

कहानी के अन्त में कहा भी कहा गया है ''खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की अनमोल चीज है।''

'सोजे–ए– वतन' की अन्य कहानियों –शेख–मजमूर,यही मेरा वतन है,सांसारिक प्रेम और देश आदि में भी देशभक्ति और देश की मिट्टी के साथ जो भावात्मक अनुराग प्रस्तुत किया है, वह तत्कालीन स्वतंत्रता संघर्ष के लिए पुनर्जागरण की आदर्श प्ररेणा से ओत–प्रोत है।

पंचपरमेश्वर,नमक का दरोगा,दामुल का कैदी आदि कहानियों में मनुष्य की सत्य–असत्य की प्रवृतियों के द्वन्द्व में आदर्श हृदय–परिवर्तन का उद्देश्य भी सामने आता है।

'पंचपरमेश्वर' कहानी में जुम्मन शेख पंचपरमेश्वर के आसन पर बैठकर सोचते हैं कि, ''मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठ हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा वह देववाणी के सदृश है–और देववाणी में मेरे मनोविकारों का समावेश कदापि न होना चाहिए।मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं।''5

इस कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने सामाजिक आदर्श को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। तत्कालीन समाज के सामने ऐसे उदाहरण रखे,जिससे समाज में बुर्जगों पर हो रहे अन्याय को रोका जा सके और समाज के सामने एक नई मिशाल दी जा सके। इस प्रकार उन्होंने इस कहानी के द्वारा समाज के सामने समाज के

यथार्थ रूप का चित्रण करके आदर्शवाद की नई दिशा प्रदान की। इस नई परम्परा के सूत्र से मनुष्य के सामने जो द्वन्द्व आता है उसका चित्रण भी प्रेमचन्द की कहानियों में मिलता है।

यथार्थ का मूल सिद्वान्त है–वस्तु को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करना,न कि उसे कल्पना के रंग में रंगना। यथार्थ के ठीक विपरीत आदर्श है,जिसमें वस्तु को वास्तविक रूप में न देखकर लेखक अपने संस्कार के आधार पर मानव हित,लोककल्याणकारी अथवा नीतियुक्त समझकर अपनाने के उद्देश्य से सामने रखता है।वे जानते थे कि समाज से अलग व्यक्ति का अस्त्वि नहीं है। इसी अस्तित्व को बचाने के लिए उन्होंने समाज के सामने आदर्श व यथार्थ दोनो रूपों को सामने रखा।

डॉ. पुष्पपाल सिंह प्रेमचन्द की कहानियों के यथार्थ के बारे में चर्चा करते हुए कहते हैं कि ''प्रेमचन्द ने कहानी को यथार्थ की प्रस्तुति का नया धरातल प्रदान किया है। उन्होंने मनुष्य,समाज और उसके जीवन परिवेश को कथा के केन्द्र में लाकर खडा कर दिया है। सामान्य व्यक्ति उनकी कहानियों का नायक बना।''6

'नमक का दरोगा' नामक कहानी में हमें सत्य, न्याय, धर्म, नैतिकता, ईमानदारी, न्यायभावना, धर्मनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता जैसे मूल्य दिखाई देते हैं।

इस कहानी में प्रेमचन्द लोभ के सामने ईमानदारी को, अन्याय के आगे न्याय को और अमानवीयता के विरूद्व सच्ची मानवीय भावना को सर्वोपरि रखते हैं। वंशीधर अपनी ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा के द्वारा आलोपीदीन का हृदय परिवर्तन करते हैं।इस प्रकार प्रेमचन्द की अन्य कहानियों में भी आर्दशवाद का सर्वोपरि रूप में दिखाई देता है। ईदगाह, बूढी काकी, बडे घर कीबेटी, अळगोझा, बडे भाई साहब आदि भी आदर्शवादी कहानियॉ हैं। प्रारंभिक दौर की कहानियों में सत्य, ईमानदारी, परोपकार जैसे मानवीय नैतिक मूल्यों पर प्रेमचन्द का अटूट विश्वास था।

किसी रचनाकार के लिए अपनी ही बनाई हुई परम्परा तोडना बहुत मुश्किल काम होता है। प्रेमचन्द ने यह काम निरन्तर अपने से जुझते हुए अपना आत्मवलोकन करते हुए किया।अपने को जॉचते हुए ,अपने अंतविरोधों को समझते हुए यदि कोई रचनाकार तत्कालीन ऐतिहासिक सच्चाईयों के बदलाव के साथ अपने–आप को भी बदलता है तभी वह कालजयी और महान रचनाकार होता है। प्रेमचन्द की दूसरे दौर की कहानियों में भावुक आदर्शवाद के साथ ही एक सचेत बदलाव भी लक्षित किया जा सकता है–विषय चयन और उद्देश्य दोनों ही स्तरों पर। गॉधीवादी सिद्वान्तों एवं आदर्शों को सिद्व करने के लिए हृदय–परिवर्तन और आदर्शवादी निष्कर्ष देने की प्रवृति इस दौर में भी मौजूद है। इस दौर में आदर्श को वे वास्तविक परिस्थितियोंके संदर्भ में रखकर देखते हैं। इससे धीरे–धीरे उनकी कहानियों में एक ऐसी द्वन्द्वात्मक स्थिति का निर्माण होने लगा जिसकी परिणति ठोस यथार्थवादी विधान में होती है। दूसरे दौर की शुरूआती कहानियों–समर–यात्रा, शतरंज के खिलाडी, आहुति, जुलुस, सत्याग्रह, सवा सेर गेहूँ आदि को रखा जा सकता है।

'सत्याग्रह' यहॉ मूल नैतिक शक्ति के रूप में केन्द्र में था।भारतीय स्वाधीनता संग्राम के एक नाजुक किन्तु महत्वपूर्ण पहलू हिन्दू–मूस्लिम एकता को बनाए रखने का भी यह दौर था।

'जुलूस'कहानी का मुसलमान पात्र इब्राहीम अली पूर्ण स्वराज्य के समर्थन में निकाले गए जुलूस का नेतृत्व करता है और घोडों के नीचे कुचल दिया जाता है।सॉस छोडने के पूर्व वह अपनी अंतिम इच्छा के रूप में यह निर्देश दे जाता है कि ,''उसका शव गंगा जल से नहलाकर कब्र में दफनाया जाये।''7

'शतरंज के खिलाडी'प्रेमचन्द के ऐतिहासिक बोध के विकास–क्रम की कहानी है। इस कहानी को प्रेमचन्द ने पतनशील सांमतवादी युग के संदर्भ में स्वाधीनता की चेतना को मिर्जा और मीर के शतरंज के खेल के बहाने से अभिव्यक्त किया है।भावुक आदर्शवाद की जगह एक तार्किक आदर्शवाद अब प्रेमचन्द के रचना विधान में जगह पाने लगा था। सत्य और अहिंसा के मूल्य पर लडे. जा रहे स्वाधीनता संघर्ष की समीक्षा भी उनकी कहानियों में दिखाई पडती है जो समसामयिक राजनीति के पटलपर महात्मा गॉधी के प्रयोग और असफलताओं से उपजे परिदृश्य की समीक्षा है।

'समर यात्रा' कहानी में एक जगह सत्याग्रहियों का नायक कहता है,''अपना काम करना और अपनी दशा पर संतोष रखना यह आदर्श है,लेकिन आपका यही देवत्व,आपका यही सीधापन ओपके हक में घातक हो रहा है।''8

प्रेमचन्द ने जून,1921 ई.में 'स्वराज्य के फायदे'नाम से बीस पन्नों का एक पैम्पलेट लिखा था अब उसका स्वरूप और लक्ष्य दोनों ही बदल गए। अप्रैल,1930 के हंस में उन्होंने 'स्वराज्य से किसका अहित होगा'शीर्षक लेख में इस परिवर्तित स्रूप को स्पष्ट किया है।वे लिखते हैं –''इसमें सन्देह नहीं कि स्वराज्य का

आन्दोलन गरीबों का आन्दोलन है।अंग्रेजी राज्य में गरीबों,मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है उतनी समाज के किसी और अंग की नहीं। उन पर लगान बढता जा रहा है,सख्तियां बढती जा रही हैं। कौंसिलों में उनके हितों का कोई रक्षक नहीं।वे जमींदारों के चंगुल में ऐसे बुरी तरह फॅसे हैं कि दबाव में पडकर वे उन्हीं को अपना प्रतिनिधि बनाने पर मजबूर होते हैं जो उनके हितों का भक्षण करते हैं।'' 9

प्रेमचन्द का यह यथार्थ उनकी कहानियों 'सवा सेर गेहूँ','ठाकुर का कुँआ','सद्गति','पूस की रात','कफन' इत्यादि में अभिव्यंजित होता है।

'सवा सेर गेहूँ' कहानी खत्म करते हुए वे कहते हैं कि,''इस वृतान्त को कपोल कल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है।ऐसे शंकरों और विप्रों से यह दुनिया खाली नहीं है।''10

'पूस की रात' और 'कफन' मे तो वे निराश होकर किसान को मजदूर और मजदूर को भिखारी बनाकर सारे मानवीय रिश्तों और संबंधों से उपर पेट का जला बना देते हैं।प्रेमचन्द ने 'पूस की रात'(मई,1930) में किसान की वास्तविक हालत को नाटकीय अभिव्यक्ति दी है। किसान,विशेष रूप से छोटे किसानों की तबाही की दास्तान इसमें है।वर्तमान सन्दर्भों में प्रेमचन्द का साहित्य इसीलिए भी प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि लगभग सौ साल बाद भी मजदूर–किसानों की हालत दयनीय बनी हुई हैं। आज भी वे ऋण की समस्या से वैसे ही जूझ रहे हैं।

'कफन' कहानी में घीसू और माधव पेट की आग का जैसा अमानवीय चेहरा इस कहानी में उभरता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थ का वास्तविक चित्रण इतना विकराल और भयानक हो जाता है कि इसमें पति–पत्नी,बाप–बेटे का रिश्ता सब कुछ स्वाहा हो जाता है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हम प्रेमचन्द की कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समाज का यथार्थ देख सकते हैं उन्होंने यथार्थ का चित्रण करते हुए आदर्श की स्थापना पर बल दिया। वे अपने पात्रों के माध्यम से आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व का चित्रण करते हैं। उन्होंने इस द्वन्द्व को दूर करने का समाधान आदर्शोंमुखी यथार्थवाद के द्वारा दिया,जिसका जीवन्त रूप उनकी कहानियों में देखा जा सकता।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द का द्वन्द्व जितना व्यक्तिक है उतना सामाजिक भी। उनके पात्रों के बीच जो द्वन्द्व चलता रहता है,यह उनका अपना द्वन्द्व होते भी व्यापक सामाजिक संदर्भ बन जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक धरातल पर विलक्षण ढंग से किया है।

सन्दर्भ–सूचीः

1. प्रेमचन्द, मानसरोवर प्रभाग–1, मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, 2011 प्राक्थन से
2. संकलनकर्ता–कृष्ण कान्तदीक्षित, सूर्यनारायण उपाध्याय– कमल प्रकाशन,नई दिल्ली–110002,पृष्ठ संख्या–126
3. वही,पृष्ठ संख्या–788
4. वही,पृष्ठ संख्या–
5. प्रेमचन्द, मानसरोवर प्रभाग–1, मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर,2011प्राक्थन से
6. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानीः सोच और समझ, आत्माराम एण्ड संस,1986,पृष्ठ संख्या–19,20
7. प्रेमचन्द, मानसरोवर की कहानियां, धीरज पॉकेट बुक्स, मेरठ, पृष्ठ संख्या–50 8. वही, पृष्ठ संख्या–54
9. प्रेमचन्द, मानसरोवर भाग–1,मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, 2011 पृष्ठ संख्या–76
10. प्रेमचन्द, मानसरोवर भाग–1,मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर,2011 पृष्ठ संख्या–20

डॉ. दीपक कुमारी
सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग
चौधरी बंसीलाल
विश्वविद्यालय,भिवानी
(हरियाणा)
मोबाइल
नंबर–9467405913
ईमेल–kumarideepak982@gmail.com

10

औपचारिक शिक्षा में छात्र–शिक्षक पारस्परिक सम्बन्धों का महत्व

डॉ0 मधुलिका पाण्डेय, डॉ० सरोजनी सहाय

सारांशः–

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। उसकी विवेकशीलता ही उसे पशु एवं पशुवत् जीवन से अलग करती है। विवेक के लिए ज्ञान और ज्ञान के लिए शिक्षा का होना अति आवश्यक होता है। अतः मानव–जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। अति प्राचीन काल से ही शिक्षा प्रदान करने और शिक्षा ग्रहण करने की परिपाटी प्रचलित रही है। ज्ञान अथवा शिक्षा प्रदान करने और ग्रहण करने के लिए ही गुरु–शिष्य का सम्बन्ध बना है। प्राचीन काल में शिक्षा ग्रहण करने के लिए छात्र गुरुकुल अथवा आश्रमों में जाया करते थे। उस काल में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ करता था। गुरु पितातुल्य एवं भगवान तुल्य माने जाते थे। अपने शिष्यों के प्रति गुरुओं का व्यवहार भी पितातुल्य हुआ करता था। वे अपनी संतान की भाँति शिष्यों के भविष्य के प्रति चिंतित रहते थे और उनके सर्वांङ्गीण विकास के लिए पूरी निष्ठा एवं तत्परता से प्रयत्न किया करते थे। वे निःस्वार्थ भाव से शिक्षा प्रदान करने हेतु परस्पर सुदृढ सम्बन्ध स्थापित करते थे। शिक्षा प्रदान करने को ही अपना कर्म एवं धर्म मानते थे। साथ ही शिष्य भी गुरु को भगवान मानते हुए उनके उपदेश को ग्रहण करते थे तथा उनके निर्देश का पालन करते थे। कुल मिलाकर दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध एक आदर्श उपस्थित करता था।

धीरे–धीरे गुरुकुल परम्परा के समाप्त होने के साथ ही गुरु–शिष्य के पारस्परिक सम्बन्धों में गिरावट आने लगी। गुरुकुल अथवा आश्रमों के स्थान पर विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की स्थापना होने लगी। आज के भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका बदल रही है। ऐसे में शिक्षक और विद्यार्थी वर्ग अछूते कैसे रह सकते हैं। आज शिक्षक–छात्र का सम्बन्ध व्यावसायिक हो गया है। शिक्षक मानने लगे हैं कि छात्रों को पढ़ाना उनकी विवशता है क्योंकि इसी कार्य के लिए उन्हें वेतन मिलता है। शिक्षा प्रदान करना वास्तव में उनकी रोजी–रोटी है। दूसरी ओर छात्रों के मन मस्तिष्क में भी यह बात बैठ गई है कि शिक्षा प्रदान करके शिक्षक उनपर कोई उपकार नहीं करते। शिक्षा ग्रहण करने के लिए उन्हें शुल्क देना पड़ता है। इस नई विचारधारा का शिक्षक–छात्र के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और शिक्षक–छात्र के सम्बन्ध की गरिमा बिखरने लगी। शिक्षकों का अपने छात्रों के प्रति पिता–तुल्य व्यवहार नहीं रहा और छात्रों के हृदय में भी शिक्षकों के प्रति आदर का भाव घटने लगा। शिक्षकों के व्यावसायिक सोच एवं छात्रों की बदलती हुई भावनाओं का पूर्वानुमान करते हुए कवि–कुल–चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है जो शिक्षक शिष्य का धन हरता है और उसकी शोक का समाधान नहीं करता है वह धोर नरक का वासी होता है। साथ ही वह छात्र भी शोचनीय होता है जो अपने शिक्षा ग्रहण करने रूपी व्रत को छोड़ देता है तथा गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता है।

शिक्षक एवं छात्र दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों में गिरावट एवं दोनों की भूमिकाओं में होनेवाले बदलावों के कारणों की जाँच की जाय तो यह बात सामने आती है कि आज के शिक्षकों द्वारा शिष्यों में भेदभाव करना, अशैक्षणिक वातावरण बनाना, हिंसक प्रवृत्तियों को जन्म देना, पैसों को ही अपना लक्ष्य बनाना आदि कारणों से ही स्थिति तनावपूर्ण बन रही है। दूसरी तरफ आज के शिष्य भी संस्कारहीन, मर्यादाहीन तथा चरित्रहीन बनकर शिक्षक–छात्र के मधुर सम्बन्धों की छवि को खराब कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक–छात्र के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर मनोवैज्ञानिक, शिक्षाविदों, विचारकों, समाज सेवियों तथा सामान्य जनों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। यद्यपि शिक्षक अपने छात्रों से पारस्परिक सम्बन्ध को सरल एवं सुसाध्य बनाने के लिए अनगिनत निर्णय ले रहे हैं लेकिन वे इसे विभिन्न प्रकार से व्यक्त कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में विरजिनिया विश्वविद्यालय में Classroom Assessment Scoring System (CLASS) को विकसित किया गया है। इस पद्धति का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करनेवाले शिक्षक एवं छात्रों के बीच एक विशिष्ट प्रकार की पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करना है ताकि छात्रों में सीखने की प्रवृत्ति जाग्रत हो सके। इस पद्धति में शिक्षण के दस आयामों को बताया गया है जो छात्रों की उपलब्धियों एवं सामाजिक विकास से जुड़ा होता है। दसो आयामों को तीन विस्तृत संवर्गों जैसे भावात्मक सहयोग, कक्षा संगठन एवं शैक्षणिक सहयोग में विभक्त किया गया है।

भावात्मक सहयोग के अन्तर्गत एक शिक्षक छात्रों को भावुक बनाने, सुखद सम्बन्ध बनाने, आनन्द का अनुभव कराने, सीखने के प्रति उद्दीप्त करने, वर्ग में सुखद अनुभव कराने तथा स्वायत्तता अथवा स्वतन्त्रता का अनुभव प्रदान करने में सहयोग प्रदान करते हैं। भावात्मक सहयोग में चार बातें सम्मिलित होती है– सकारात्मक वातावरण, नकारात्मक वातावरण, शिक्षक की अति संवेदनशीलता तथा छात्रों के प्रति आदर का भाव। एक शिक्षक को छात्रों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए उनके साथ सुखद एवं भावात्मक लगाव होनी चाहिए। किसी भी स्थिति में शिक्षकों एवं छात्रों के बीच नकारात्मक वातावरण जैसे क्रोध, गुस्सा, शत्रुता तथा आक्रमक होने जैसी स्थिति पैदा नहीं होनी चाहिए। शिक्षक को छात्रों की शैक्षणिक एवं भावात्मक आवश्यकताओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व का बोध होना चाहिए, छात्रों के परिप्रेक्ष्य में आदर भाव के अन्तर्गत शिक्षक द्वारा छात्रों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध किस अंश तक एवं वर्गों में छात्रों की अभिरुचि पर शिक्षक कितना बल देते हैं, आता है।

कक्षा संगठन के अन्तर्गत एक शिक्षक छात्रों के व्यवहार को नियंत्रित करते हुए उनसे अधिक से अधिक सीखने की क्रियाओं को विकसित करने में सहायक होते हैं तथा छात्रों के आचरण को व्यवस्थित करते हैं। योग्य शिक्षक छात्रों के बुरे आचरण का प्रबोधन करते हैं। समय–सारिणी द्वारा वर्ग संचालन अच्छी तरह से करते हैं। एक शिक्षक के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि छात्र अच्छी तरह से समय–सारिणी को समझ पाते हैं अथवा नहीं। शिक्षक को इस बात का ध्यान देना चाहिए कि उनकी अपनी क्रियाओं तथा निर्देशन से

छात्रों को अधिक से अधिक समय सीखने की क्रियाओं में व्यतीत करने को मुहैया करा पाते हैं अथवा नहीं।

शैक्षणिक सहयोग के अन्तर्गत शिक्षक छात्रों के ज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास के लिए प्रभावपूर्ण ढंग से सहयोग प्रदान करते हैं। वे शैक्षणिक विकास–विमर्श एवं क्रियात्मकता को प्रयोग में लाकर छात्र को उच्च स्तर पर सोचने की कुशलता को बढ़ावा देते हैं तथा उसे रूढ़िगत एवं रटे–रटाये बोलने की खामियों का बोध कराते हैं। वे एक छात्र को पुनर्निवेशन (Feedback) द्वारा सहभागिता तथा सीखने की क्रिया को विस्तारित करते हैं। भाषा प्रतिरूपण द्वारा छात्र को भाषा को प्रयोग में लाने के लिए प्रेरित करते हैं, सुविधा प्रदान करते हैं तथा उत्साहित करते हैं।

विद्वानों का यह मत है कि जो छात्र शिक्षक से नजदीक, सकारात्मक तथा सहयोगपूर्ण सम्बन्ध रखते हैं वे उच्च स्तर की उपलब्धि प्राप्त करते हैं तथा जिन छात्रों का शिक्षक से प्रतिकूल अथवा संघर्षपूर्ण सम्बन्ध होता है उनको उपलब्धि नहीं हो पाती है।

शिक्षक–छात्र के पारस्परिक सम्बन्धों के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने शोध किया है। क्रोनिनजर तथा ली (2001) एवं ह्वाइट लॉक (2006) ने अपने अध्ययनों में बताया है कि एक शिक्षक को कक्षा के हर एक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से जानना चाहिए तथा व्यक्तिगत रूप से उसके सम्पर्क में रहना चाहिए। छात्र के नाम को लेकर पुकारना चाहिए तथा उसकी रुचि के सम्बन्ध में जानकारी रखनी चाहिए।

पाइएन्टा (1999) रूडासिल, रिमफॉफमैन जस्टिस एवं पेन्स (1906) तथा स्पैन्डालर एभन्ट, गजेली तथा फाल्डोवस्की (2011) ने अपने अध्ययनों में बताया है कि एक शिक्षक को व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक छात्र के साथ समय व्यतीत करना चाहिए। विशेषकर ऐसे छात्रों के साथ ज्यादा समय व्यतीत करना चाहिए जो लज्जालु, चिड़चिड़ा या हठी होते हैं।

पेन्टा (2001), रिमकाफमैन (2002), हेमेटर तथा कॉनराव (2012) ने अपने अध्ययनों में बताया है कि शिक्षक को इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि वे अपने छात्रों को सुस्पष्ट संदेश दे रहे हैं अथवा अस्पष्ट। चारने (2002) डोनाई, पैरी एवं विंस्टिन (2003) वेन्टजेल (2010) ने अपने अध्ययनों में बताया है कि शिक्षक को वर्ग में सकारात्मक वातावरण बनाने के लिए छात्रों को सिर्फ यह नहीं बताना चाहिए कि वे छात्रों से सम्बन्ध बढ़ा रहे हैं, बल्कि यह बताना चाहिए कि वे छात्रों से सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं। छात्र शिक्षक द्वारा सम्बन्ध को बढ़ाने के तरीके को देखते है और यह भी देखते हैं कि शिक्षक उनके प्रति कितना स्नेह एवं आदर का भाव रखते हैं। शिक्षक के व्यवहार के बाद ही वे अपने व्यवहार का मानक बनाते हैं। वे शिक्षक के मजबूत मनोभाव की परख करते हैं। वे उनकी सकारात्मक एवं नकारात्मक योजनाओं या चतुराई को भी ध्यान में रखते हैं।

ग्रेगारी तथा विन्सिटिन (2004) एवं वेज्टजेल (2010) ने अपने अध्ययनों में बताया है कि शिक्षक को यह अनुमान करना गलत होगा कि छात्रों के प्रति दयालु होना तथा उनका आदर करना ही उनके उपलब्धियों के लिए पर्याप्त होता है। एक आदर्श कक्षा में एक से अधिक उद्देश्य होते हैं। एक तरफ शिक्षक को छात्रों के उच्च स्तरीय शैक्षणिक प्रदर्शन औचित्य को कायम रखना पड़ता है तो दूसरी तरफ उन्हें छात्रों को अपने शिक्षकों, सहपाठियों तथा स्कूल से भावात्मक लगाव के लिए अवसर प्रदान करना पड़ता है।

विद्वानों का मत है कि एक शिक्षक के लिए अपने छात्रों के स्वभाव (मिजाज) को समझना आवश्यक होता है तभी शिक्षक छात्रों को सीखने का उचित मार्गदर्शन कर सकते हैं। एक शिक्षक को अपनी शारीरिक गतिविधियों, चेहरे के भावों तथा वाणी से हमेशा यह प्रदर्शित करना चाहिए कि छात्र यह महसूस कर सकें कि शिक्षक हमलोगों में बहुत दिलचस्पी लेते हैं।

वावेलवाई (1969) वेन्डूस (1986) तथा हार्टर (2012) एवं मैककम्ब्स (1986) ने क्रमशः Attachment Theory, Social Cognitive Theory एवं Self System द्वारा स्पष्ट किया है कि सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित कर ही शिक्षक एवं छात्र के पारस्परिक सम्बन्ध को सुदृढ़ किया जा सकता है। शिक्षक को अपने छात्रों को हमेशा प्रोत्साहित करना चाहिए। डोसी तथा रामन (2002) ने अपने अध्ययन में बताया है कि छात्र वर्ग में तीन मानसिक आवश्यकताओं– योग्यता, स्वायत्तता एवं सम्बद्धता के लिए आते हैं और यह उन्हें शिक्षक–छात्र के पारस्परिक सम्बन्धों से प्राप्त होता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा गठित राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (NAAC) ने भी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के मूल्यांकन में श्रेणी के लिए पाठ्यक्रमों, शिक्षकों की योग्यता, छात्रों की सहभागिता तथा उनमें नेतृत्व की भावना आदि का जो मापदंड निर्धारित किया है, वह शिक्षक–छात्र के सुदृढ़ पारस्परिक सम्बन्ध से ही सम्भव हो सकता है।

निष्कर्षः– मूलतः गुणवत्तापूर्ण शिक्षण एवं छात्रों के सीखने के लिए शिक्षक–छात्र के बीच सकारात्मक सम्बन्ध का होना आवश्यक होता है। एक योग्य शिक्षक से ही कठिन परिश्रम की प्रेरणा मिल सकती है। भलि प्रकार विद्या ग्रहण करना विद्यार्थियों का परम कर्तव्य होता है। विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह अपने शरीर, बुद्धि, मस्तिष्क, मन और आत्मा के विकास के लिए पूरा–पूरा यत्न करे। अनुशासनप्रियता, नियमितता, समय पर काम करना, उदारता, दूसरे की सहायता करना, सच्ची मित्रता, पुरुषार्थ, सत्यवादिता, नीतिज्ञता–देशभक्ति विनोद प्रियता आदि गुणों से विद्यार्थी का जीवन सोने के समान निखर उठता है। आज सबसे ज्यादा जरूरत है कि शिक्षक–छात्र दोनों ही अपनी भूमिका और सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए अनुशासन में रहकर अपने दायित्वों को ईमानदारी से निभावें और यदि कभी स्थिति तनावपूर्ण बनती भी है तो आपस में मिलजुल कर समस्या का समाधान ढूंढ़े। तभी दोनों सही अर्थों में अपनी सही भूमिका निभाते हुए सम्बन्धों में सामंजस्य और संतुलन बना पायेंगे।

डॉ0 मधुलिका पाण्डेय
महावीर स्थान, मौलाबाग, आरा
बिहार – 802301
मोबाईल नं. – 7717752414
डॉ0 सरोजनी सहाय
गृह विज्ञान विभाग
महन्त महादेवानन्द महिला कॉलेज,
आरा (बिहार)

11

'कितने पाकिस्तान उपन्यास में' कमलेश्वर की सांस्कृतिक चेतना

डॉ0 प्रवीण कुमार

सारांशः–

मनुष्य परमात्मा की सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है। प्रकृति द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं से सन्तुष्ट ना रहकर वह अपने सुख साधनों की ओर बढाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि का ऐसा वरदान दिया है। जो उसे संसार के अन्य सभी जीव जंतुओ से अलग करता उसने काव्या, कला, दर्शन और शिल्प आदि की रचना की है। संस्कृजि शब्द 'सभ' उपसर्ग पूर्वक क्र धातु से वितृत प्रत्यय लगाकर भूषण भूत अर्थ में सूट का आगम करके संस्कृति शब्द निवपन्न होता है।

1. जिसका अर्थ है संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना, सुन्दर या पूर्ण बनाना, सजाना, सवारना, परिकृत करना, परिकृत करना, सुसज्जित करना।

वैयक्तिृक, सामाजिक राजनैतिक, समस्त क्षेत्रों में परालौकिक, अभुदय की चेष्ठा ही सुस्क्रतिहै। आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार '' स्वभाव से ही या प्रकृति की किसी रचना को पूर्ण मानकर संतुष्ठ नही होता बल्कि नित्य ही उसे अधिक पूर्ण या सुन्दर बनाने , उसके चरमोतकर्षतक पहुचाने के प्रयत्न मनुष्य की बुद्धि और सौन्दर्य का परिचय देते है। मानव का यही विकास संस्क्रति है ।

2. डा0 देवराज के अनुसार कलात्मक सर्जन और चिन्तन की सम्पर्ण क्रियाओ का ऐसा समन्वय जो व्यक्तिव और जीवन के लिए सक्षम उपयोगी ना होते हुए भी उसे समृद्ध बनाना है, उसे संस्कृति कहते हैं।

3. संस्कृति प्रायः उन गुनो का सुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत या समृद्ध बनाते हैं। मानवीय जीवन के विकास एवं उत्थानके लिए भारत में सोलह संस्कारों की योजना की गई है।संस्कार का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक मानसिकऔर बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से हैं। अंग्रेजी में कल्चर शब्द का अर्थ– कर्सग, उत्पादन, पालन, जुताई आदि होता है। कल्चर शब्द की निष्पत्ति लैटिन कोलर धाातु से हुई है। जिसका मूल अर्थ हल चलान अथवा पूजा करना है, कोलर के पास्ट फार्टिसिपिल कुल्टस से लैटिन शब्द हुल्टुरा निष्पन्न हुआ, जिसका विकास मध्यकालीन अंग्रेजी व फ्रैंच में कल्चर शब्द से हुआ सन् 1420 ई0 में अंग्रेजी में कल्चर का प्रयोग कवि कार्या हल चलाना और पशुपालन आदि अर्थ में हुआ है।

4. साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की संस्कृति ही उसे समानता एवं स्वरूप प्रदान करती है। जब हम मनुष्य को सामाजिक प्राणी और साहित्यकार को समाज का व्याख्यता सिद्ध करते है तो इससे हमारा अभिप्रायः समाज से ना होकर समाज की संस्कृति से होता है संस्कृति में मानव स्वभाव का परिष्कार, संस्कार होता है। संस्कृति मानव जीवन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो सदा सर्वदा विकसित होती रहती है मानव के उत्थान एवं पतन के साथ ही संस्कृति का निर्माण तथा पतन होता है जैसे–जैसे हमारी संस्कृति में आरोह–अवरोह आए है, देशकाल, परिथिति तथा आक्रांताओं के कारण परिवेश में परिवर्तन आया है वैसे ही संस्कृति का आंतरिक और बाइच पक्ष आन्दोलित हुआ है। और इस आन्दोलन को हमारे साहित्य ने ही शब्दाभित किया है।

5. संस्कृति के साथ–साथ लोक संस्कृति पर भी विचार करना उचित होगा। लोक संस्कृति का सम्बंध विशेष क्षेत्र के विशिष्ठ लोक जनमानस से होता है ब्रजमण्डल की ब्रज संस्कृति राधा–कृष्ण की रसमयी लीलाओं से अनुप्राणित है। पंजाब की संस्कृति पर सिख गुरूओं की अर्मतमयी बाजी का विशेष प्रभाव है। लोक मानस को अभिव्यक्ति लोक साहित्य के रूप में होती है।

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार लोक साहित्य के निर्माण के पीछे एक सामूहिक लोक मानस की कल्पना अनेक विहानों ने की है। उनकी विचार धाराओं के अनुसार लोक–गीतों तथा लोक कथाओं आदि की रचना समस्त लोक एक साथ करता है।

6. स्वतन्त्रयोत्रर हिन्दी साहित्य को विकास और नई दिशा देने में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान है अनेक उपन्यासों में आम हिन्दुस्तानी की दिखाई देती है। इसीलिए उनकी रचनाओं में रोजी, रोटी, पति–पत्नी की कलह और प्रेम, शंकाएं और निराशाएं आदि सव कुछ अपने रूप में ही यर्थाथ रूप में ही आते हैं। एक सडक सत्तावन गलियाँ, बदनाम गली, डाक बंगला, लौटे हुए मुसाफिर, तीसरा आदमी, समुद्र में खोया हुआ आदमी एवं काली आँधी प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कितने पाकिस्तान लेखक की सुप्रसिद्ध रचना है। प्रस्तुत शोध पत्र में कितने पाकिस्तान में संस्कृति का धार्मिक पहलू, नैतिक पहलू, दार्शनिक पहलू परसंक्षिप्त विभार किया गया है। भारत उपमहाद्वीप में विभाजन का कारण केवल एक ही प्रतीत होता है।और वह है धार्मिक कटट्रवादिता एवं सम्प्रदायिकता जिसके कारण मानव से मानव नफरत के भूचाल में धॅस गया क्या हुआ बोसनिया साइप्रस सोनियन, में क्या हो रहा है, आज के अफगानिस्तान में प्रत्येक काफी धर्म की आड में नफरत के सहारे अपने ही लोगों के खिलाफ, एक दूसरा पाकिस्तान ईजाद करना चाहता है।

7. भारत की संस्कृति में जो स्थान धार्मिकता को मिला वह सम्भवतः प्रन्य किसी को नही मिला महमूद गजनबी ने सोमनाथ के मन्दिर को सत्रह बार लूटा लेकिन लांगों की श्रृद्धाके कारण वह आज भी देदी पयमान है। भारत के शत्रु देश जैसे–पाकिस्तान, चीन–इनकी इच्छा यही है कि भारत का विभाजन करके नए–नए पाकिस्तान बनाए जाए एक तलवार सक या वैचारिक भिन्नता से पाकिस्तान बनते हैं भाज में सभी जातियों एवं वर्णो ने अपने सिद्धान्तों के सहारे अपना अलग सम्प्रदाय धर्म स्वीकार किया है। जब भी उन पर कोई जोर जबरजस्ती आयी तो वे इस बात पर लाचार हो गये तथा असहाय होकरी उसी सम्प्रदाय में मिल गए। देश के पतन के लिए धर्म की सर्वोपरि भागीदारी रही है। इस देश के उपनिषद व धर्म शास्त्र और कुछ नही वे केवल ब्रह्ममणवादी अत्याचारों, वर्णवादी अनाचारी और ईश्वरवादी आस्था को स्थापित रिने वाले पश्चाताप के ग्रन्थ हैं। धर्म के नाम पर संस्कृतियाँ बनती है। पर कालान्तर में धर्म से मुक्त

होकर मानव व संस्कृतियों में तब्दील हो जाती है पराबीन भारत में धर्म का दुरूपयोग करके मुस्लिम सिख तथा हिन्दू सव अपना अपना स्वार्थ पूरा करने में जुटे थे मुस्लिम समुदाय से जिन्ना साहब, सिख धर्म से मास्टर तारा सिंह तथा हिन्दू धर्म की आड में अज्ञानी मानव अपनी हत्या एवं आत्महत्या तक कर लेता है क्योकि इस्लाम नफरत नही सिखाता परन्तु पाकिस्तान की बुनियाद नफरत पर रखी हुई है। इस्लाम जैसा मजहब किसी मुल्क की सरहदों में कैद नही किया जा सकता

8. मनुष्य धर्म को ही अन्तिम सहारा मानता है। धर्म मानव मात्र के कल्यागार्थ ही अस्तित्व में आया था, लेकिन वर्तमान धर्माचार्यो ने इसे एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। कितने पकिस्तान' उपन्यास, में विरासत में, मिली सेंस्कृति, नैतिक पहलू का चित्रण किया है। सम्प्रभुसना की खातिर जिन्ना साहब ने अंग्रेजों के सामने अपनी फरियाद रखी जिससे अंग्रजों को ऐसा अवसर मला जिसे वे हाथ से नही देना चाहते थे अंगेज का इतिहास इसबात का प्रमाण है। कि जहाँ जहाँ उनका राज्य था उसे उन्होने विभाजित करके छोडा ताकि जाते वक्त उल्देहा के लोग हमारी तरफ ध्यान ना कर सके तथा आपस में झगडा करते रहे यदि ऐसा ना होता तो भारत का आखिरी तरफ ध्यान नही कर सके माउण्टवेटन सुख चैन से नींद नही जा सकता था जो मनमर्जी से अंग्रजों ने जितना चाहा उतना लूटा, यहाँ के दिलों को जीता, यहाँ की संस्कृति में दरार पैदा की। अंग्रेजों को भारत की संस्कृति विकास एवं उन्नति से कुछ भी लेना देना नही क्या। वे तो व्यापारी थे और व्यापार तक ही उनका चित्रन था लेकिन अंग्रेज 1947 में यह निशचित करके आए थे कि भारत को आजादी देनी ही पडे तो आजादी कैसे दी जाए। नहरू और पटैल को लंगडा भारत सौंप दिया और जिन्ना को दीमक लगा पाकिस्तान थमा दिया जाए। भारत की संस्कृति का नैतिक पहलू यही था कि हर नागरिक अपनी मातृभूमि को दासता की वैडियो से अलग रखना चाहता था। भारत की संस्कृति में स्वतन्त्रता एक अधिकार था। प्रत्येक नागरिक देश को स्वतन्त्र कराने के लिए अपना नैतिक कर्तव्य समझता था। खुली हवा में हर कोई जीना चाहता था। इसलिए लब भी पाकिस्तान का जन्म होता तब उसमें स्वतन्त्रता का प्रमुख मुददा उभलकर सामने आ जाता है। जहॉ भी विभाजन हो समाज का बटवारा हो, देशो की पृथकता हो सभी में अनेक पाकिस्तान या एक मजहब धर्म सिद्धान्त सर्वोपरि होते हैं कमलेश्वर ने भारतीय संस्कृत के सभी उपमानों का निर्वाह अपने श्रेष्ठाय उपन्यसों में भी किया है। हमारी संस्कृति के नैतिक पहलू ईमानदारी, आपसी सौहार्द, अहिंसा त्याग, नारी पूजा, बडो का सतकार, बच्चों के प्रति स्नेह भाव है। विघ्न में इतनी क्रान्तियॉ वैज्ञानिक उपलब्धियो के पश्चात भी हम जातिवाद को निलांजलि नहीं दे पा रहे। संस्कृति की खातिर जातिवाद का जहर बहुत उग्र रूप ले चुका है। कभी मेरठ, मुरादाबाद, अहमदाबाद, अलीगढ, जयपुर तो कभी आगरा में, साम्प्रदायिकता अपना वास्तविक स्वरूप दिखाई बिना ना रहती जैसे आग की चिंगारी दबी रहती है। और तेज झोवा आने पर विकराल रूप धारण कर लेती है उसी प्रकार साम्प्रदायिकता संस्कृति के साथ मिलकर न जाने कितने पाकिस्तान पैदा करती है।

निष्कर्षः— प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृति की व्यापक परिभाषा दी गई है। पाकिस्तान बन जाने से पूर्व भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में जिन युवाओं तथा प्रबहुजनों ने अपनी शौर्य साहस एवं वीरता का परिचय दिया इसका उल्लेख प्रस्तुत पत्र में है। इसलिए इसे कितने पाकिस्तान संज्ञा देने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक विवेचन किया गया है। आज धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर विवाद, उभरते हुए प्रतीत होते हैं। भारतीय संस्कृति ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति सर्वमान्य धरोहर वेद, गीता, उपनिषद, रामायण, महाभारत से उद्घृत अंशों द्वारा जन चेतना जगाने की भरपूर कोशिश की गई है। रचनाकार ने धर्म की परिभाषा सम्प्रदायों, मजहबों, पन्थों आदि से ऊपर उठकर की है। वे परोपकार को श्रेष्ठ, आचरन को और अच्छे चरित्र को धर्म के अर्न्तगत मानते है। मानवीय मूल्यों को वे अपने उपन्यासों में सर्वोपरि स्थान देते है। डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा डॉ0 एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में कमलेश्वर की सांस्कृतिक चेतना

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः—

1 स्व0 चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा, संस्कृति शब्दार्थ कोश, पृ0 11
2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी. अशोक के फूल, भारतीय संस्कृति, पृ0 75
3 स्व0 धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, हिन्दी साहित्य कोश, भाग, पृ0 868
4 डॉ0 रविन्द्र दरगन : आधुनिक हिन्दी कविता :संस्कृति मूल्य, पृ0 18
5 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, भक्तिकालीन हिन्दी निर्गुन काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ0 31
6 धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनासर,सम्वत् 2015, पृ0 6907 कमलेश्वर, 'कितने पाकिस्तान' पृ0 93
8 कमाले वही, पृ0 110

डॉ0 प्रवीण कुमार
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल, हरियाणा

12

जनसंख्या-समस्या कारण, निवारण (भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन)

पवन कुमार सिंह

सारांशः–

स्वतंत्रता की दिवस-२०२० के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से अपने उद्बोधन में भारत के प्रधानमंत्री ने भारत में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या पर चिंता व्यक्त की और इसको नियंत्रित करने की बात कही। यह शायद स्वतंत्रता के बाद पहला अवसर है जब देश के प्रधानमंत्री ने जनसंख्या वृद्धि की समस्या पर इतने बड़े मंच से विचार रखे और भारतीय समाज के संदर्भ में इस संवेदनशील मुद्दे को पुनः चर्चा में ला दिया।

उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण को देशभक्ति के बराबर बताया उन्होंने कहा, **"समाज का वह लघु वर्ग, जो अपने परिवारों को छोटा रखता है सम्मान का हकदार है वह जो कर रहा है वह देश भक्ति का कार्य है।**

आजादी के बाद से लगभग ३५ बार जनसंख्या नियंत्रण पर निजी विधेयक लाकर संसद सदस्यों ने इस मुद्दे को उठाया परंतु सामूहिक प्रयासों के अभाव में यह अपने अंजाम तक पहुंचने में नाकाम रहे क्यों? यह एक अत्यंत चिंतनीय प्रश्न है।

जीव विज्ञान के आधार परएक या आपस में संबंधित अनेक जाति के जीवोंके एक विशेष क्षेत्र में उपस्थित समूह को जनसंख्या कहते हैं यह एक स्व-नियंत्रित तंत्र है।

जनसंख्या का अध्ययन एक विषय के रूप में जनांकिकी (डेमोग्राफी) के अंतर्गत किया जाता है जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों डेमो (जनता) तथा ग्राफी (लिखना) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है जनता के विषय में लिखना इसके अंतर्गत जनसंख्या की अवधारणा, सिद्धांत और पद्धति को समझने के साथ-साथ जनसंख्या की सही वस्तुस्थिति का भी अध्ययन किया जाता है ।

जनसंख्या वृद्धि के कई सिद्धांत दिए गए हैं इनमें सबसे प्रमुख अंग्रेज अर्थशास्त्री और जनसांख्यिकीय विचारक **माल्थस थॉमस रॉबर्ट** का जनसंख्या वृद्धि सिद्धांत है उन्होंने सन १७९८ में जनसंख्या के सिद्धांत पर एक निबंध,**"जनसंख्या सिद्धांत पर एक लेख"** प्रकाशित किया उनका सामान्य विचार था कि भरण पोषण के साधनों की अपेक्षा जनसंख्या की बढ़ने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है अर्थात जनसंख्या ज्यामितीय गति (१,२,४,८,१६....) से बढ़ती है, जबकि भरण पोषण के साधन गणितीय गति (१,२,३,४,५.....) से बढ़ते हैं प्रत्येक २५ वर्षों के पश्चात जनसंख्या दुगनी हो जाती है, और दो शताब्दियों में जनसंख्या और भरण-पोषण के साधनों में अंतर २५६ से ९ और तीन शताब्दियों में यह ४०९६ और १३ तथा २००० वर्षों में क्या अंतर लगभग अनिश्चित हो जाएगा | माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत ने जनसंख्या और भरण पोषण के साधनों के बीच एक संतुलित संबंध बनाए रखने की आवश्यकता पर सफलतापूर्वक प्रकाश डाला

जनसंख्या वृद्धि को समझने के लिए हमें जनांकिकीय संक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं का भी अध्ययन करना पड़ेगा।डब्लू० एस० थॉमसन द्वारा १९२९ में प्रस्तुत और १९४५ में फ्रैंक० डब्ल्यू० नेटोस्टीन द्वारा संशोधित जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत में तीन अवस्थाओं तथा पांच प्रकारों का वर्णन है।

अवस्था-I-

प्रकार-1यह आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारंभ होने से पहले की जनांकिकीय प्रवृत्तियों को प्रकट ।करती है

अवस्था-2- यह अवस्था प्रौद्योगिकी क्रांति के साथ प्रारंभ होती है इस अवस्था को तीन वर्गों में बांटा जाता है।

प्रकार-2- इस अवस्था में जन्म दर लगभग ३५प्रति हजार बनी रहती है जबकि मृत्यु दर घटकर २०प्रति हजार हो जाती है इस प्रकार जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है जिसे जनसंख्या का विस्फोट कहते हैं,**भारत इस अवस्था को पार कर चुका है**।

प्रकार–३- इस अवधि में जन्म दर ३५ प्रति हजार से घटकर १७-१८ प्रति हजार और मृत्यु दर २० से घटकर १३-१५ प्रति हजार रह जाती है परिणाम स्वरूप जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आ जाती है परंतु जनसंख्या में वृद्धि जारी रहती है **भारत इस अवस्था को प्राप्त करने वाला है।**

प्रकार-४- इसमें जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों ही निम्न होते हैं जनसंख्या अधिक परंतु स्थिर रहती है **भारत इस अवस्था को लगभग २१ वी शताब्दी के मध्य में प्राप्त करेगा।**

अवस्था-3-

प्रकार-५-यहजनांकिकीयसंक्रमण की **अन्तिम अवस्था** हैइस अवस्था में जन्म दर मृत्यु दर से कम हो जाती है और जनसंख्या का ह्रास होने लगता है

आज भारत के पास विश्व के कुल क्षेत्रफल का माध्यम २.४ प्रतिशत भाग है किंतु उसे विश्व की कुल जनसंख्या के १७.५ प्रतिशत का पालन पोषण करना पड़ता है इस प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरा है जबकि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सातवां स्थान है।

२००१ में भारत की जनसंख्या १०२.७ करोड़ थी जो २०११ तक बढ़कर १२१ करोड़ हो गई है।वर्तमान में भारत की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि १७.६४ प्रतिशत है जो पिछली दशकीय वृद्धि २१.५ प्रतिशत से लगभग ४ प्रतिशत कम है। भारत और चीन की आबादी का अंतर १० साल में २३ करोड़ ८० लाख सेघटकर १३ करोड़ १० लाख रह गया है। चीन ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति व संतुलित जनसंख्या नीति के बल पर अपनी जनसंख्या वृद्धि पर काफी हद तक नियंत्रण कर लिया है। भारत की जनसंख्या की वर्तमान वार्षिक दर १.६४ प्रतिशत है यदि भारत की वार्षिक वृद्धि दर को ०.९प्रतिशत तक लाया जाए तब भी **२०४५के बाद भारत चीन को पीछे छोड़कर विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश होगा।**

जनसंख्या रिपोर्ट भारत सरकार के अनुसार भारत की जनसंख्या वृद्धि दर में वर्ष २०४७ के बाद से कमी आएगी, वर्ष २०४७ तक भारत की जनसंख्या बढ़ कर अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच जाएगी और उस वक्त देश की जनसंख्या करीब १.६१ अरब होगी

भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर को पाँच अवधियों में विभक्त किया जाता है।

1. 1891-१९२१-- अवरुद्ध जनसंख्या।
२. १९२१ - १९५१-- मर्यादित वृद्धि।
३. १९५१ - १९८१-- तीव्र ऊंची वृद्धि दर।
४. १९८१ - २००१-- उच्च वृद्धि परंतु मंद होने के स्पष्ट संकेत।
५. २००१ - २०११-- मंद वृद्धि दर

भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के निम्न कारण हैं।

- जन्मदर का मृत्यु दर से अधिक होना।
- अशिक्षा के कारण परिवार नियोजन कार्यक्रम से अनभिज्ञ होना।
- उत्तम स्वास्थ्य सेवाओं के कारण शिशु मृत्यु दर में कमी, जीवन स्तर में सुधार।
- रूढ़िवादिता- पुरुष प्रधान देश होने के कारण सामाजिक रीति रिवाज के अनुसार पुत्र प्राप्ति के लिए संतानों की वृद्धि करना।
- कम उम्र में विवाह, वैसे तो भारत में शादी की एक उम्र निर्धारित है लड़की के लिए १८ वर्ष के लड़के के लिए 21 वर्ष परंतु इसका सख्ती से पालन ना होना।
- जनन योग्य व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि।
- अवैध प्रवासियों की बढती जनसंख्या।
- धार्मिक व जातिगत अंधविश्वास।

जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याएं :-

- **बेरोजगारी**-वर्तमान की सबसे विकराल समस्या है शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत उचित रोजगार न मिलने से युवा वर्ग कुंठित और निराशा के वातावरण में हैं और देश के विकास में अपना योगदान नहीं दे पाते हैं।
- **गरीबी**-जनसंख्या वृद्धि से देश में गरीबी का दुष्चक्र चला है अर्थात गरीब व्यक्ति शिक्षा, स्वास्थ्य, धन आदि के अभाव में अशिक्षित रहकर और गरीब हो रहे हैं इससे गरीब अमीर के मध्य एक बड़ी खाई पैदा हो गई है।
- **अपराध में वृद्धि** - शिक्षित युवा रोजगार न मिलने पर निराश होकर गलत रास्ते पर चलकर अपराध करने लग जाते हैं जनसंख्या वृद्धि से जैसे-जैसे बेरोजगारी बढ़ी है वैसे-वैसे अपराधों में भी वृद्धि हुई है
- **प्रदूषणवृद्धि** - प्रकृति द्वारा प्राप्त निशुल्क उपहार पानी, वायु, मृदा आदि में किसी प्रकार के अवांछित तत्वों का मिलना प्रदूषण है जनसंख्या वृद्धि ने हर प्रकार के प्रदूषण (जल,वायु,मृदा) में बेतहाशा वृद्धि की है पश्चिमी देश जहां जनसंख्या कम है वहां का प्रदूषण स्तर बहुत कम है।
- **पर्यावरण असंतुलन**- बढ़ती जनसंख्या के कारण लोग गांव से रोजगार की तलाश में औद्योगिक शहरों की ओर पलायन करते हैं इससे वहां जनसंख्या घनत्व बढ़ने के कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगता है अधिक जनसंख्या का पालन पोषण करने के लिए, भूमि से अधिक अन्न उगाने के लिए कीटनाशक रसायनों का प्रयोग पर्यावरण असंतुलन पैदा करता है बेमौसम बारिश, बाढ़, सुनामी, तूफान इसी पर्यावरण असंतुलन की देन है।
- **बढ़ती महंगाई**-अर्थशास्त्र में मांग व पूर्ति के नियम के अनुसार यदि वस्तुओं की पूर्ति कम और मांग ज्यादा है तो वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है जनसंख्या वृद्धि ने प्रत्येक वस्तु की मांग में भारी वृद्धि की है इसके फलस्वरूप महंगाई लगातार बढ़ती जा रही है।
- **जीवन स्तर में कमी-** जनसंख्या वृद्धि के फल स्वरुप एवं बढ़ती महंगाई के कारण गरीब लोगों के जीवन स्तर में निरंतर कमी होती जा रही है।

हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी भी है, क्योंकि भारत में जिसकी वोट उसी की कुर्सी और कोई भी राजनीतिक दल अपने वोट बैंक को कम नहीं करना चाहता। जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए भारत सरकार को उच्चतम कठोर कानूनी कदम उठाने होंगे जैसे - शिक्षा का विस्तार, विवाह योग्य आयु में वृद्धि और उसकी सख्त मॉनिटरिंग, शादी व जन्म का पंजीकरण करना अनिवार्य,परिवार नियोजन कार्यक्रम को सख्ती से लागू करना, पालन करने वालों को प्रोत्साहन और पालन न करने वालों पर जुर्माना या दंड का प्रावधान, अनाथ बच्चों को गोद लेने पर प्रोत्साहन,दो से अधिक बच्चे वाले लोगों को किसी भी प्रकार के चुनाव (ग्राम पंचायत से लोकसभा, राष्ट्रपति तक)रोक,दो से अधिक बच्चे होने की स्थिति में उस दंपत्ति पर भारी आर्थिक दंड लगाया जाए तथा सरकारद्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएं बंद की जाए,सीमित परिवार वाले व्यक्ति को नौकरी में वरीयता दी जाए,परिवार नियोजन के फायदे व जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम के बारे में लोगों के मध्य सभी प्रकार के संचारमाध्यमों से प्रभावी ढंग से जागरूकता फैलाई जाए। उपरोक्त सभी उपायों को अमल में लाकर तथा देश वासियो को जनसंख्या समस्या के प्रति जागरूक बनाकर निश्चित रूप से हम देश की जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित कर पाने में सफल होंगे।

आजादी केबाद से बनी सभी सरकारों द्वारा इस दिशा में किये गए सभी प्रयास नाकाफी रहे है,परन्तु वर्तमान सरकार द्वारा लिए गए दीर्घकालिक कठोर फैसलों से लग रहा है सरकार निश्चित रूप से कुछ कठिन कानून बनाकरजनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करेगी और हमारा देश तीव्रगति से विकास के पथ पर अग्रसर होकर विश्वगुरु की उपाधि को पुनः प्राप्त करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. हिंदुस्तान संपादकीय-16 अगस्त 2020
२. परीक्षा मंथन पत्रिका
३. मानव भूगोल - माजिद हुसैन , पृष्ठ संख्या: 94-95
४. भूगोल -डी० आर० खुल्लर,पृष्ठ संख्या: 25-26

५. भारतीय अर्थव्यवस्था-रूद्रदत्त , के० पी० एम० सुंदरम,पृष्ठ संख्या : 22
६. जनसंख्या रिपोर्ट- भारत सरकार-2011

पवन कुमार सिंह

(प्रवक्ता-अर्थशास्त्र), मुरली मनोहर इण्टर कॉलेज ईशपुरटील (शामली)

पता -पवन कुमार सिंह पुत्र श्री दुर्ग पाल सिंह

मकान न० -1/148 ,मोहल्ला खाकरोबन

[नगर पालिका के पीछे],कांधला

जनपद -शामली

पिन कोड -247775

मोबाइल न० -8193080991

13

भारती के उपन्यासों में चित्रित प्रणय भावना

डॉ0 कृष्णा हुड्डा

सारांशः–

धर्मवीर भारती के दोनों ही उपन्यासों के केन्द्र में प्रेम की समस्या प्रबल रही है। ''गुनाहों का देवता'' में जहां उच्च–मध्य वर्गीय प्रेम की समस्या है, वहीं ''सूरज का सातवां घोड़ा'' में निम्न मध्य वर्गीय प्रेम को चित्रित किया गया है। क्रमशः एक का प्रेम काल्पनिक व भावुकता पूर्ण है। वहीं दूसरे उपन्यास में प्रणय को कल्पना–लोक में विचरने की अनुमति नही होती। जिसमें मित्रता का अर्थ होता है एक–दूसरे के सुख–दुख, श्रम व उल्लास में हाथ बंटाना। उसमें कहीं कोई गांठ, कोई उलझन, कोई भ्रम, कोई बन्धन, दमन, कमजोरी नहीं होती। दोनों ही उपन्यासों में युवक–युवती प्रणय की परिणति विवाह में देखना तो चाहते हैं, पर उसमें से बहुत कम में इतना आत्मबल और साहस होता है कि मां–बाप व समाज की इच्छा के विरूद्ध चल सके तथा उनकी सहायता के बिना अपने पाँव पर खड़े हो सके। परिणामस्वरूप अपनी इच्छा व भावना को कुचल कर समाज द्वारा थौंपी गई तथाकथित मर्यादाओं में घुटकर अपना सम्पूर्ण जीवन बर्बाद कर लेते हैं।

धर्मवीर भारती के उपन्यासों में प्रणय की समस्याओं को चित्रित करने से पहले यह बताना युक्तियुक्त होगा कि प्रेम का स्वरूप क्या है तथा इसकी कितनी कोटियाँ हो सकती है।

प्रणय मनुश्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। सृष्टि के आदि पुरूषों एवं स्त्रियों में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। यम–यमी का संवाद इसका स्पष्ट उदाहरण है। महाभारत में अर्जुन–सुभद्रा और दुष्यन्त शकुन्तला के अनेक प्रेमाख्यान मिलते है। हिन्दी–साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की सूफी काव्य–धारा के कवियों ने प्रेमतत्व को आधार बनाकर अनेक काव्यों की रचना की है। प्रेम की यह प्रवृत्ति आधुनिक युग को भी प्रभावित करती है।

भारती जी के उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल शायद ही कोई ऐसा युवक युवती हो जो प्रणय के स्वर्णिम लोक में विचरण करने से संकोच करता हो। प्रेम युवती और युवक के जीवन में किसी भी मोड़ पर हो सकता है। प्रेम का आरम्भ युवक और युवती के परस्पर साक्षात्कार से हो सकता है। कभी–कभी प्रेम का उदय गुण श्रवण, चित्र–दर्शन तथा स्वप्न–दर्शन आदि से हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रेम का आधार साहचर्य हो सकता है। जब युवक व युवती एक संस्था में पढ़ते हों, निकट घर हों, इकट्ठे उठते–बैठते हों तो उस साहचर्य के परिणामस्वरूप उनमें एक–दूसरे के प्रति राग की भावना पैदा हो जाती है। यही पूर्वराग प्रणय में परिणत हो जाता है। वास्तव में देखा जाए तो प्रेम युवक और युवती में किसी भी माध्यम से उत्पन्न हो सकता है।

भारती जी ने अपने दोनों उपन्यासों में मुख्य रूप से प्रेम की समस्या को उठाया है। यह समस्या शुरू से लेकर अन्त तक अविकल रूप से चलती रहती है जिसका कोई समाधान लेखक नहीं सुझा सका है। प्रेम के सम्बन्ध में दोनों उपन्यासों के आरंभ में बताया गया है कि प्रेम क्या है। ''गुनाहों का देवता'' उपन्यास में चन्दर सुधा की प्रतीक्षा में एक पार्क में टहल रहा है। वहीं उनका परिचय कवि बिसरिया से होता है। क्योंकि कवि आमतौर पर प्रेमी होते हैं। बिसरिया बैठा–बैठा सोच रहा है कि प्रेम क्या होता है? क्यों होता है? कविता क्यों लिखी जाती है? तब हंसकर चन्दर कहता है– ''.... प्रेम एक तरह की बीमारी होती है, मानसिक बीमारी, जो मौसम बदलने के दिनों में होती है, मसलन क्वार–कार्तिक या फागुन–चैत। उसका सम्बन्ध रीढ़ की हड्डी से होता है।''[1]

भारती के दूसरे उपन्यास ''सूरज का सातवां घोड़ा'' में आरम्भ में ही प्रेम समस्या को उठाया गया है। दिखाया गया है कि मध्य वर्ग में जहां चार मित्र बैठे हों तो निश्चित है कि वार्ता या तो राजनीति पर या अगर राजनीति में मन नहीं लगता तब वार्ता प्रेम पर आ टिकेगी। कम से कम मध्य वर्ग में इन दो विषयों के अलावा तीसरा विषय नहीं होता।

प्रणय के विषय में बात करते करते माणिक कभी–कभी कहावतों को अजब रूप में पेश किया करते है। एक कहावत प्रेम के सम्बन्ध में देखिए– जिसे भारती जी अपने शब्दों में कहते हैं। माणिक खरबूजा काटते हुए कहते थे ''प्यारे बन्धुओं! कहावत में जो कुछ हो, प्रेम में खरबूजा चाहे चाकू पर गिरे, चाहे चाकू खरबूजे पर, नुकसान हमेशा चाकू का होता है। अतः जिसका व्यक्तित्व चाकू की तरह तेज और पैना हो, उसे हर हालत में इस उलझन से बचना चाहिए।''[2]

माणिक मुल्ला के कथन के माध्यम से भारती के अपने विचारानुसार कहानियों की तमाम नस्लों में प्रेम कहानियां सबसे सफल साबित होती है। अतः कहानियों में रोमांस का अंश जरूर होना चाहिए। मित्र–गोष्ठी में बैठे–बैठे जब एक ने कथावस्तु की प्रेम सम्बन्धी अनिवार्यता के विषय में शंका व्यक्त की और कहा कि जिन्दगी में अधिक से अधिक दस बरस ऐसे होते हैं जब हम प्रेम करते है। उन दस बरसों में खाना–पीना, आर्थिक–संघर्ष, सामाजिक–जीवन, पढ़ाई–लिखाई, सिनेमा, मित्र गोष्ठी इन सबों से जितना समय बचता है, उतने में हम प्रेम करते हैं। फिर उसे इतना महत्व क्यों दिया जाए? तब माणिक ने बताया कि टैगोर ने लिखा है, ''आभार माझारे जे आछे से गो कोनो विरहिणी नारी''। अर्थात् मेरे मन के अन्दर जो बसा है वह कोई विरहिणी नारी है।[3]

माणिक के अनुसार '' प्रेम नामक भावना कोई रहस्यमय, आध्यात्मिक वैयक्तिक भावना न होकर एक सर्वथा मानवीय भावना है।''[4]

प्रेम की कई कोटियाँ होती हैं। सर्वप्रथम हम विवाह पूर्व प्रेम की चर्चा करेंगे। प्रेम की एक स्थिति होती है जब प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के प्रेम से भली प्रकार परिचित होते है। वे दोनों ही एक दूसरे की आदतों, रूचियों और विचारों से अवगत होते हैं। उनका प्रेम इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि वे उसको स्थाई रूप देने के लिए एक दूसरे से प्रणय करते है। अपने प्रणय की परिणति परिणय में देखने का प्रयत्न

करते हैं। प्रेम की इस अवस्था को हम सात्विक प्रेम की संज्ञा दे सकते हैं। भारती जी के उपन्यास (गुनाहों का देवता) की पात्रा सुधा व चन्दर दोनों प्रेम की इसी श्रेणी में आते हैं। वे दोनों एक दूसरे को तन मन से चाहते हैं।

सुधा के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रेम तथा अपनत्व के सन्दर्भ में केवल एक चन्दर को ही जानती है। उसी के प्रति वह एक–निष्ठ है। वह बाल्यकाल से ही चन्दर को प्रेम करती है। अन्त तक उसे नहीं भुला पाती, भले ही उसका विवाह जबरदस्ती अन्यत्र कर दिया जाता है। लेकिन, मन से वह पूर्ववत चन्दर की बनी रहती है। सुधा के प्रेम पर चन्दर को गर्व होना स्वाभाविक है।

चन्दर सुधा की आत्मा है और उनका प्यार जीवन के उन शिखरों पर पहुँच जाता है जहां मृत्यु भी कोई अन्तर उपस्थित नहीं कर सकती। सुधा प्रेमिका की भांति चन्दर की हर बात मानने को तैयार है। यहां तक कि वह चन्दर से विवाह जैसे आदेश को सुनकर भी किसी अन्य से विवाह कर लेना मंजूर कर लेती है। एक अन्य स्थान पर चन्दर से ही कहती है– ''तुम कहोगे वही करूंगी, मृत्यु शैया पर होऊंगी, तो भी तुम्हारे आदेश पर हंस सकती हूँ''।[5]

सुधा के प्रेम में भावुकता और नादानी है, यथार्थ की भूमि पर उसके पांव बहुत गहरे नहीं पैठे हैं। सुधा ने सोचा था कि विवाह के बाद वह चन्दर से सम्पर्क बनाए रखेगी। परन्तु मध्यवर्गीय वास्तविकता उसके सन्मुख भी आई और पति के घर में प्रेमी के प्रति मानसिक सम्बद्धता का निर्वाह कठिन ही नहीं असम्भव जान पड़ने लगा.... परिणामस्वरूप उसका तन टूट गया लेकिन तन के टूट जाने के बाद भी उसने अपने भावनात्मक सत्य को नहीं टूटने दिया।[6] असफल प्रणय के बाद जीवन प्रायः सन्तुलित नहीं रहता। सुधा का जीवन नष्ट हुआ, उधर चन्दर असन्तुलित हो गया।

भारती जी के दूसरे उपन्यास ''सूरज का सातवां घोड़ा'' में जमुना तन्ना से प्रेम करती है। दोनों एक दूसरे से विवाह करना चाहते है। लेकिन, धनाभाव व सामाजिक विरोध के कारण उनके प्रणय की परिणति विवाह में नहीं हो पाती। क्योंकि जमुना के पिता के पास धन न था और तन्ना के पिता महेसर दलाल ठहरे लालची आदमी। इस प्रकार प्रणय में दोनों असफल रहते हैं। बात टूटने के बाद जमुना का विवाह एक वृद्ध किन्तु तेहाजू व्यक्ति से कर दिया जाता है। जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। तन्ना का विवाह एक ज्यादा पढ़ी लिखी व घमंडी लड़की से कर दिया जाता है। दोनों जीवन भर संघर्ष करते करते यों ही टूट जाते हैं।

प्रेम में यों तो धनी–निर्धन, बड़ा–छोटा, विवाहित–अविवाहित, आदि का कोई अन्तर नहीं देखा जाता। इसीलिए तो पम्मी विवाहित व चन्दर से उम्र में बड़ी होने पर चन्दर से प्रेम करती है। जमुना माणिक से बड़ी होने पर भी उसकी ओर आकर्षित है। इन दोनों उपन्यासों में विवाह के बाद भी प्रणय दिखाया गया है। इसका कारण यह है कि मध्यवर्गीय जीवन में व्यक्ति निरन्तर अभाव अनुभव करता है और उसकी पूर्ति काल्पनिक दुनियां में पहुँच कर करता है। सुधा, जमुना, पम्मी ये तीनों विवाह के बाद भी प्रेम करती हैं।

कुछ प्रेमी ऐसे होते है जो प्रणय केवल प्रणय के लिए ही करते हैं। वे प्रणय की परिणति अपने मन से या समाज के भय से विवाह में नहीं देखते। माणिक व लिली तथा सुधा व चन्दर का प्रेम ऐसा ही समझिए।

मध्यवर्गीय प्रेमी कायर व समाज भीरू होते हैं। उनमें समाज का विरोध करने का साहस अधिक नहीं होता। अन्त में अपना तथा प्रेमिका का मन समझाने तथा फिर भी जीवन भर भुला न पाने के दम्भ भरने के अतिरिक्त उनके पास क्या रह जाता है? यही माणिक मुल्ला तथा चन्दर करते हैं। माणिक लिली को समझाते हुए कहते है ''...अगर हम दोनों जीवन में एक दूसरे के निकट आए भी तो इसलिए कि हमारी अधूरी आत्माएं एक दूसरे को पूर्ण बनाएं। ... मैं जानता हूँ कि तमाम जीवन में जहां कहीं भी रहूंगा जिन परिस्थितियों में भी रहूंगा, तुम्हारा प्यार मुझे बल देता रहेगा...।[7] यही ''गुनाहों के देवता'' का चन्दर करता है। सुधा के सिर पर हाथ फेरते हुए चन्दर कहता है– ''सुधा विश्वास करो मुझ पर, जीवन में अलगाव, दूरी, दुख और पीड़ा आदमी को महान बना सकती है।

भावुकता और सुख हमें ऊंचे नहीं उठाते बताओ सुधा तुम्हें क्या पसन्द है। मैं ऊंचा उठूं तुम्हारे विश्वास के सहारे, तुम ऊंची उठी मेरे विश्वास के सहारे, इससे अच्छा और क्या है सुधा। चाहो तो मेरे जीवन को एक पवित्र साधन बना दो, चाहो तो एक छिछली अनुभूति''।[8]

मध्यवर्गीय युवक एक नहीं, अनेक प्रेमिकाओं से प्रेम करते हैं। एक का प्रणय असफल होने के बाद वे अपनी आंखों पर पट्टी नहीं बांध लेते। वे प्रयत्न जारी रखते हैं। जमुना के प्रणय के असफल होने के बाद माणिक लिली तथा सत्ती से प्रेम करते हैं, और चन्दर सुधा के बाद पम्मी तथा बिनती से।

प्रणय का एक और रूप होता है। वास्तव में हर एक का व्यक्तित्व अलग–अलग होता है। जिसमें भावुकता नहीं होती। कल्पना लोक में विचरण करने की अनुमति नहीं होती। जिसमें मित्रता का अर्थ होता है एक दूसरे के सुख दुख, श्रम और उल्लास में हाथ बंटाना। उसमें कहीं कोई गांठ, कोई उलझन, कोई भ्रम, कोई बन्धन, दमन, कमजोरी नहीं होती। ''सूरज का सातवां घोड़ा'' की सत्ती इसी तरह की नारी है। ''उसका मन खुली धूप की तरह स्वच्छ है। वह माणिक को धरती पर सहज मानवीय भावना से जीने की प्रेरणा देती है। वह कुछ ऐसी भावनाएं जगाती है जो ऐसी ही कोई मित्र संगिनी जगा सकती है। जो मन से स्वाधीन हो जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशों के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो। जो सृजन और श्रम में, सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती हो।''[9]

निष्कर्षः– उपर्युक्त उपन्यासों या घटनाओं के अध्ययन से एक बात स्पष्ट है कि युवक और युवती प्रणय की परिणति विवाह में तो देखना चाहते हैं पर उनमें से बहुत कम में इतना आत्मबल और साहस होता है कि मां बाप की इच्छा के विरूद्ध चल सकें तथा उनकी सहायता के बिना अपने पांव पर खड़े हो सकें। अतः उन्हें अपनी इच्छा व भावना को कुचल देना पड़ता है। यही सब भारती ने अपने उपन्यासों में प्रणय के बारे में चित्रित किया है।

संदर्भ सूचीः–

1. डॉ० धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ० 10–11
2. डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवां घोड़ा, पृ० 18–19
3. डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवां घोड़ा, पृ० 21

4. डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवां घोड़ा, पृ० 25
5. डॉ० धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ० 144
6. डॉ० धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ० 144
7. डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवां घोड़ा, पृ० 73
8. डॉ० धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ० 134
9. डॉ० धर्मवीर भारती, सूरज का सातवां घोड़ा, पृ० 88

डॉ0 कृष्णा हुड्डा
प्रोफेसर (भाषा एवं हरियाणवी संस्कृति विभाग)
चौधरी चरण सिंह हरियाणा
कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
पिन–125001
मो0 9416586171

14

ब्रज लोक कहावतों की प्रासंगिकता

Mk0 d:'kkno 'kekZ

सारांशः–

lkfgR; dh 0;kidrk e: 'kkL= vkj ykd nkuk dh i:HkkokRedrk leku #i l: ifjyf{kr gkrh g nlj 'kCnk e: dgk tk;] rk lkfgR; dh Lo:ixr i.krk d fy, ykd vfHk0;fDr Hkh mruh gh vko';d g] ftruh fd 'kkL=h; vfHk0;tukA 'kkL= vxj 'kyh dk i"V djrk g] rk ykd vfHk0;fDr dk] tl& Å/kk eu u Hk, nl chl tlh dgkork dk fo'k"k mYy[k feyrk gA Hkkjro"k dk ykd lkfgR; le) jgk g] ftle lkekU; l lkekU; fo"k; dk ydj dFku e fof'k"Vrk >ydh gA fofo/k Hkk"kk vkj lLdfr;k l lEikf"kr Hkkjr n'k Hkkxkfyd lajpuk dh nf"V l Hkh fofo/krk i.k g] ftldh Hkko vkj rdi.k lVhd vfHk0;fDr ml {k= fo'k"k ;k Hkk"kk fo'k"k d ykd lkfgR; e viuh vyx igpku fy, jgrh gA

Hkkjrh; lkfgR;] fo'k"kr% fgUnh lkfgR; e: ct d: ije vkjk/; jfld f'kjkef.k Jh d".k dk ifr"Bkfir dju oky egkdfo lajnkl u: ctHkk"kk vkj cjt {k= dk fo'k"k igpku fnyku dk i:;kl fd;kA ijUrq tgk rd cjt ykd lkfgR; dk i:'u g] ml dh viuh vyx igpku gA cjt ykd lkfgR; dh fo/kkvk e ykdkfDr] ykd dgkor] jfl;k fdLlkxkb] jklyhyk] Hkxr] Lokx] lLdkj xhr] eYgkj] rht&R;kgkj d volj xhr] pkcyk] <kyk] gkdjk] [kr&cvkb&dVkb xhr bR;kfn i:e[k gA

dgu dk vfHkik; g fd ykd lkfgR; dh ftruh Hkh fo/kk,a g] mue ykd lLdfr d: Hkko rRo vkj eY;&fpru i:e[krk l fo|eku jgr: gA mUg: dky&fo"k"k dh lhek e ugh ck/kk tk ldrkA ;gk ;g rF; Hkh fopkj.kh; g fd ykd lkfgR; ykd dh lex lLdfr] Kku&foKku] /ke&v/;kRe ,o Kku&vuHko bR;kfn d: lokxh.k :i n'ku dh >kdh fy, jgrk gA 'kkL= viuh e;knkvk e ck/kk gku d dkj.k bruh 0;kidrk vkj lgt&ljyrk ugh y ikrk] ftruh ykd lkfgR; fy, jgrk gA Jfr x.k Hkh ykd lkfgR; e i:e[krk l feyrk gA u tku fdruh dgkor: ykd e i:pfyr g ftud dFku&vkjEHk dk dkb vr&irk ugh g yfdu mudk i:Hkko vkt Hkh cuk gvk gA

ykd lkfgR; fujUrjrk dk Hkko fy, jgrk gA lelkef;d fodkl ,o ifjorZu ykd dh vko';drkvk d: vuq:i thou dk i:Hkkfor djrk jgrk g] ftldh >yd ykdxhrk] dgkork] fdLlk] Lokx&lkxk] jfl;k&Hktuk vkfn e: n[kh tk ldrh gA ykd lkfgR; e: i:dfr d: fofo/k :i&j:x thou d: fofo/k igyvk dh vfHk0;tuk djr: gA o"l Hkh i:dfr ekuo dh lgpjh jgh gA vkneh dk gluk&jkuk] thuk&ejuk] l;kx&fo;kx lc dN i:dfr d: lkfUu/; e jgk gA cjt ykd viuh vuHkoi.k mfDr;k&dgkork d: fy, lfo[;kr g] tl: &

^lkou d: vU/k d: gj;k b gj;k l>A*

vFkkr ftl vkneh dh vk[kk dh jk'kuh o"kk _r d: lkou d: eghu e x;h gk] ml lnh&xeh d: ekle dk n[kk gh ugh] rk og gjh&Hkjh i:dfr dh gh ckr djxkA ble tk fufgr Hkko g] og g fd ftlu dHkh xjhch ;k vHkko ugh n[kk] ml lc dN vPNk gh vPNk vFkkr l[kdj gh l[kdj yxrk gA

cjt ykd thou e: dgkor feyrh g fd lku vkj L=h dk R;kx djuk lgt vFkkr vklku g] tcfd eku] cMkb vkj b";k d: Hkko l: efDr nyHk g%&

dpu rftck lgt g vkj fi;k dk ugA
eku cMkb b";k] rftck nyHk ngAA

cjt ykd dgkork e: ykd dY;k.k dh dkeuk i:e[k jgh g] tks vkt Hkh mruh gh ikl fxd g] ftruh igy: dHkh jgh gkxhA ijekRek d: ifr vkLFkk] lei.k ,o fu"Bk dk Hkko cjt ykd thou&n'ku dk ik.k g&

jke th dh xfM;k jke th dk [krA
[kkvk jh fpj;k Hkfj&Hkfj i:VAA

b'oj&HkfDr] fo'k"kr% Jhd".k HkfDr cjt&{k= d: d.k&d.k e: lekfgr gA lkr&tkxr] dk;kjEHk ;k i.krk] {k.k ifr{k.k uke&Lej.k] eulk&okpk&de.kk ije fgr ekuk x;k gA ykd e: bl: ydj ,d dgkor vke g%&

jke uke fy;k ub] fd;k u gfj r: grA
o uj ,:l tk;x] tl: ejh dk lk [krAA

vFkkr b'oj l: /;ku u yxku oky ykx l:lkj l: ml h i:dkj xk;c gk tkr: g] tl: eyh dk [kr l: m[kkM yu ij fdlh rjg dk fu'kku ugh jgrkA bl: lnde dk lan'k Hkh feyrk gA

cjt dgkork l: vkrikr xhrk e: jk"Vh; ,drk ,o v[k.Mrk dk Loj Hkh voykduh; gA ,d rjQ d'ehj l: dU;kdekjh rd dh ckr g] rk nljh rjQ ,d cfgu viu Hkkb l: viu fy, Lon'kh [kknh e:xokrh g vkj Hkkjr dh e;knk&j{kk dk vkgoku djrh g%&

vj e: >yk rk Mk#xh dlehjA
>kVk rk y:xh Hkkjr d: NkjAA

,d vU; mnkgj.k g&

Hk;k ej: j[k Hkkjr dh ykt

Hkkr [knnj dk yb;k jA
er dfj;k /ku cjckn
Hkkr [knnj dk yb;k jAA

f'k{kk in mfDr;k dh Hkh cjtykd lkfgR; e Hkjekj gA vkyL; i.k uhn dk fdlku d fy, gkfudkjd ekuk x;k g] pkj d fy, [kkSlh] lk/k d fy, C;kt dekuk vkj fo/kok L=h d fy, gSlh dk g; ekur g, dgk x;k g&

vkyl uhn fdlku [kko] pkj [kko] [kkSlhA
Vdk C;kt ckckft, [kko] jk.k [kko] gkSlhAA

cjt d ykd ekul e 'kHk&v'kHk] 'kdu&vi'kdu dk yjdj ykdkfDr;k feyrh gA vkt Hkyh gh geu fodkl d fdru gh lkiku r; dj fy, g] yfdu ykdkfDr;k] ykd dgkork vkj ykd ekU;rkvk dh ikl fxdrk cjkcj cuh gbZ gA c/kkoj d fnu xkao ngkr dh efgyk, fcVkjk ¼miyk dk ,d txg ij yxku dk dejkuek LFkku½ dh 'k#vkr ugh djrh] rk i#"k exyokj d fnu u;h pkjikbZ ¼[kkV½ dk cuuk v'kHk ekur gA ykd e dgkor feyrh g&

c/k fcVkjk exy [kkV]
ckdh n[k ejBk ckVAA

ftl lkefgdrk dk yjdj ljdkjh&xj ljdkjh Lrj ij ikRlkgu dh ckr dh tk jgh g] og ifr cjt ykd&thou dh mfDr;k e lnh/kdky l feyrh g] tl ^pkj Nkoj*] Ng ujkoj] rhu [kkV cukoj] nk ckV pyA iFke mfDr dk vfHkik; g fd NIij&>kiMh cukuk pkj vknfe;k dk vPNk gkrk gA [kr l [kjirokj dh lQkbZ Ng ykx feydj vPNk dj ldr gA [kkV ;k pkjikbZ dh cukbZ d fy, rhu vkneh gkuh pkfg, vkj jkLr e pyr le; nk dk lkFk vPNk jgrk gA ml dke d ifr eukcy Hkh c<rk g vkj fey&tyjdj dke dju dh izofÙk Hkh i"V gkrh gA vkt d ckf>y ,dkdhiu dk ble lek/kku Hkh gA

ykd lkfgR; dh thorrk vFkkr ikl fxdrk blh e g fd og dHkh fujFkd] vuqi;kxh vkj Hkrdkfyd ugh gkrkA og orZeku e viuh egÙkk fy, jgrk g vkj Hkfo";; d thou&n'ku dh vkj ldr djrk gA vkRefuHkjrk d fy, ekuo dk viu de e jr jguk vko';d ekuk x;k gA vxj og ml Hkh ugh djrk] rk og e[k&uk le> dgykrk gA bl lnHk e dgk tkrk g&

gfj dk Hktu vkj viuk /kU/kkA
tm, u dj rk ejk[k cUnkAA

tk 0;fDr dN ugh djrk g] fgEer gkj dj dloy HkkX; dk dlrk jgrk gA lgk;rk dju ij Hkh vkx c<u dh fgEer ugh tVkrk] ,l 0;fDr d fy, dgkor g&

^lk> d ejs d dgk rd jkcA*
^;k dk rk jke b fudL;k ij;k ,A*

dgu dk vfHkik; g fd ykd lkfgR; ;x fuji{k gkr g, Hkh ;x lki{k g] tk Hkko&fopkj&mfDr dc dgh x;h] bldk rk fuf'pr Kku ugh gkrk] ij ykd d utnhd igpku ij ;k ykd&thou&n'ku dk luu&le>u ij ,sl yxrk g fd og lc vkt gh dgk tk jgk gA ykd lkfgR; dk ifjHkkf"kr djr le; vkpk;Z gtkjhizlkn f}osnh] MkO lR;Unz] MkO okLnso'kj.k vxzoky] ikQsj dyk'kpUn HkkfV;k] MkO uj'kpUn cly vkfn fo}kuksa u Lohdkj fd;k g fd ble xkE;&uxjh; lLdfr dk lokxh.k ifrfuf/kRo jgrk gA fcuk fdlh Lo#i ifjorZu d ykd lkfgR; dh ikl fxdrk lnh?kdky rd cuh jgrh gA orZeku thou d lex rRo ykd&dgkork e ryk'k tk ldr gA cjt dh ykd dgkork e ijekjk/; Jhd".k d ifr vkLFkk dk Hkko loi=>ydrk g] tSl&

uk gj py] u py ikejkA
ver Hkk tun; lkojkAA

cjt d ykxk dk thou fuf'pUrrk dk thou jgk gA Hkkjr dh igpku d"kd&lLdfr vkj pjokgk&lLdfr d n'ku cjt dh ykd&dgkork e lgt&LokHkkfod vkj iHkko'kkyh #i e gkr g] tSl&

Xokfj;k xkokfj;k xj r jkVh [kk;A
lkk[kfj;k dk ikuh iho] eLr g tk;AA

fu"d"k&& vLr] cjt d ykd&lkfgR; e miyC/k ykd&dgkor vkt Hkh mruh gh ikl fxd vkj egRoi.k g] ftruh o vrhr e jgh gkxhA budh dF; vkj f'kYi&fo/kku dk v/;;u dju ij irk pyrk g fd bu ij xkE;&vf'kf{kr ,o de egRo dk vkjki lgh ugh g] oju bue ekuo&thou vkj izdfr l ikIr x.kk dk 0;kid fnXn'ku gA vk/kfud thou e 0;kIr fol xfr;k dk lek/kku Hkh bu ykd&dgkork e fo|eku g] vko';drk g mUg lE;d rjhd l iLrr dju vkj 0;[;k&foopu dju dhA ekuo thou d fofo/k rRok d leUo; e gh bu lc ykd lkfgR; fo/kkvk dh egÙkk g] mi;kfxrk g vkj ikl fxdrk gA
lnHk&&
1- Mk gfj'kj.k oek] gfj;k.koh lLdkj xhrk dh lkLdfrd i"BHkfe
2- lk/kjke 'kkjnk] gfj;k.kk d ykd xhr

Mk0 d'kono 'kek
MhOfyV0
,lkfl,V ikQsj] fgUnh foHkkx
,lOMh0 dkyst] iyoy ¼gfj;k.kk½
M. No. : 9991101864

15

हिन्दुस्तानी भाास्त्रीय संगीत में गमक एंव उसके प्रकार

डॉ0 कृष्णा देवी

सारांशः–

गमक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में महत्वपूर्ण अंलकरण है जिससे गायन में सौन्दर्य वृद्धि होती है। गमक न केवल शास्त्रीय संगीत में अपितु समस्त गान प्रकारों में प्रयुक्त की जाती है, यहां तक की वाद्य के वादन में भी गमक का प्रयोग होता है। गमक की इतनी महत्वता होने की वजह से हम कह सकते हैं कि गमक शास्त्रीय संगीत में रीड़ की हड्डी के समान है। गमक का प्रयोग प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। गमक, संगीत के विकास से आया हुआ एक सौन्दर्य प्रदायक तत्व है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में गमक राग के स्वरूप को कायम रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गमक एक तकनीक है, जिससे हम राग को बड़ी खुबसुरती के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं। प0 शारंगदेव जी ने गमक के 15 प्रकारों का विस्तृत विवरण दिया है तथा बाद के सभी ग्रंथकारों ने उनका ही अनुसरण किया है। गमक के इन 15 प्रकारों का प्रयोग आज भी उनके प्राचीन नामन होकर उनको नए नाम देकर होता है। मौखिक परम्परा के दसविद्य गमक या गमक के दस लक्षणों का प्रयोग आज भी ध्रुपद गायक करते हैं चाहे वह हिन्दुस्तानी संगीत के हों या कर्नाटकी संगीत के। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन गमक प्रकार आज भी किसी न किसी रूप में में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रयोग की जाती है, जो संगीत को और भी रस व्यंजक कर देती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग का बड़ा ही महत्व है, इसलिए इसे रागदारी संगीत भी कहा जाता है। राग गायन में प्रत्येक राग का एक निश्चित स्वरूप माना जाता है, आरोह–अवरोह, चलन, वादी–संवादी इत्यादि अनेक अंलकारिक उपकरणों के संयोग से राग एक विशिष्ठ स्वरूप को स्थापित होता है। इन सौन्दर्यात्मक अंलकरणों के अर्न्तगत गमक भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारतीय संगीत की खोज करने वाले सौन्दर्य विज्ञान के विद्वानों ने गमक को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। उनके मतानुसार संगीत में सौन्दर्य, भावुकता, आकर्षण एंव रंजकता पैदा होने का कारण ही गमक है। गमक भारतीय शास्त्रीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।गमक शब्द की उत्पति संस्कृत के **'गम्'** धातु से हुई है। जिसका अर्थ है गमन, गति अथवा जाना। गमक का अर्थ केवल कम्पन मात्र से नहीं, बल्कि स्वर के ऐसे सांगीतिक प्रयोग से है, जो सुनने वाले के मन को रंजन प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में स्वरों को सांगीतिक सुन्दरता देने को ही गमक कहते हैं। गमक मात्र हमारे शास्त्रीय संगीत में ही नहीं अपितु समस्त गान प्रकारों में प्रयोग किये जाते हैं। आधुनिक काल में 'गमक' भी एक प्रकार के कम्पन स्वरूप में माना जाता है, जो ध्रुपद–धमार के गम्भीर आलाप गायन के अर्न्तगत अथवा रागों में तान के रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे–राग मेघमल्हार। गमक का आधुनिक अर्थ है कण्ठ ध्वनि को गंभीरता व घनत्व के साथ आलाप या तानों में विविध प्रकार के स्वर समूहों के साथ प्रयोग में लाना। पार्श्वदेव ने इसकी सुन्दर परिभाषा दी है, यथा–

स्वश्रुति स्थानसम्भूतां छायां श्रुत्यन्तरा श्रयाम।
स्वरों यद् गमयेद् गीतं गमकोऽसौनिरूपिताः।।

अर्थात् जब कोई स्वर अपने श्रुति स्थान से दूसरी श्रुति की ओर इस प्रकार चले जिससे दूसरी श्रुति की छाया मूल श्रुति स्थान पर पड़ती हुई भासमान होती है वही गमक कहलाती है। शारंगदेव जी के अनुसार गमक की परिभाषा इस प्रकार है– स्वरस्य कम्पों गमकः श्रोतृचित सुखावह! अर्थात् स्वरों का ऐसा कम्पन्न जो सुनने वाले के चित को सुख प्रदान करे वह गमक है। महाराणा कुम्भा ने गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है–

श्रोतृचित सुखदो स्वर कम्पः गमकः अर्थात् स्वरों का ऐसा कम्पन जो सुनने में मधुर हो, वह गमक कहलाता है। इसके बाद के अधिकांश मध्यकालीन ग्रंथकारों ने शारंगदेव द्वारा कही गई परिभाषा का अनुकरण करते हुए ही गमक की विवेचना की है। भारतीय तर्कशास्त्र में धूम (धुन्ध) अग्नि का गमक है। अतः गमक से ऐसा अर्थ निकलता है–

(क) जिसके द्वारा हम राग के सुन्दरतम् तथा सुक्ष्मतम अलंकरण की ओर जा सकें तथा **(ख)** जिसके द्वारा हमें तकनीकी प्रयोग का ज्ञान हो सके। गमक का प्रयोग तंत्री वाद्य में भी होता है। गमक का सम्बन्ध कम्पन तथा घसीट इन दोनों अलंकारों से है। यह क्रिया करने के लिए तंत्री को घसीट के साथ खींचा जाता है। मींड की क्रिया शीघ्र करने से गमक निकल आती है। सितार में गमकों का काम होता है। वैसे तो गमक का शाब्दिक अर्थ है कि स्वरों का विशेष प्रकार से कम्पन किया जाए जिससे, श्रोताओं का चितरंजन हो। The oscillation of a note which pleases the listener is Gamaka. Gamaka points out the way how to attach a note move from one more note to the other or others. गमक दो स्वरों से उत्पन होती हैतथा मींड से बजती है। इसकी गति मींड की भांति द्रुत होती है। इसमें दाहिना और बांया हाथ दोनों एक समय में एक साथ ही चलेंगे, वीणा पर भी गमक का काम होता है। किसी पर्दे पर कम्पन के साथ–साथ एक स्वर की मींड लगाकर वापिस लौट आने की क्रिया गमक कहलाती है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अर्न्तगत गमक का प्रयोग गायन में प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। ख्याल गायन से पहले ध्रुपद–धमार का प्रचलन था तथा उत्तम ध्रुपद की विशेषता गमक के ऊपर ही निर्भर करती थी। ध्रुपद गायन के कम होने के साथ ही गमक का प्रयोग कुछ कम हो गया है, फिर भी ख्याल गायन में इसे यथेष्ट स्थान प्राप्त है। ख्याल में मींड, गमक, टप्पा में खटका और ठुमरियों में मुर्की का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार से विशिष्ट प्रकृति के रागों में विशिष्ट अलंकारों का प्रयोग किया जाता है जैसे– दरबारी, पूरिया, मुलतानी, तोड़ी आदि गम्भीर रागों में मींड, गमक तथा भैरवी, काफी, पीलू आदि चंचल प्रकृति के रागों में कण, खटका, मुर्की आदि का प्रयोग बहुतायत से होता है। भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में अलंकार के अर्न्तगत कंप की चर्चा की है इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने अलंकार शब्दगत और वर्णगत दोनो प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया है। भरत ने अलंकारों का अर्थ अत्यन्त विशाल लिया था, परन्तु शारंगदेव ने 13वीं सदी में अलंकार के अर्न्तगत केवल

वर्णाश्रित अलंकारों का ही वर्णन किया है।

शारंगदेव के समय में सम्भवतः भरत की कंप की क्रिया ने अलंकार से अलग अपनी पहचान बना ली और 'गमक' के अर्न्तगत कंप आदि क्रियाओं का समावेश होने लगा तथा सभी प्रकार की अलंकरण की तकनीकों को 'गमक' के प्रकार के रूप में जाना जाने लगा। शारंगदेव ने पांच प्रकार की संगीत रचनाओं का उल्लेख किया है शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी,बेसरा और साधारणी।

भाुद्धा स्याद वक्रैललितैः स्वरैः भिन्ना वक्रैः स्वरेः सुक्ष्मे र्मधुरैगर्मकैर्युता।

अर्थात्–शुद्धा रचना वह रचना है जिसमें स्वरों का प्रयोग सरल परन्तु रोचक ढंग से किया जाता है। भिन्ना में स्वरों का लगाव सुक्ष्म तथा मधुर गमकों से युक्त होता है। गौड़ी तथा बेसरा इन गीतियों का विवरण देने के बाद शांरगदेव ने साधारणी गीति का विवरण इन शब्दों में दिया है–

"चतुगर्गति गंत लक्ष्मश्रिता साधारणी मता"

अर्थात्– जो अपने भीतर अन्य शैलियों के सुन्दरतम गुण संजोये हुये है यह साधारणी गीतिही है। जिसमें भिन्ना का प्रमुख उपयोग किया जाता था जो आगे चलकर ख्याल बनी। ये रचनायें वक्र स्वरों तथा सुमधुर गमकों से अलंकृत हैं। मंतग का जीवन काल 6वीं सदी माना जाता है। उन्होंने इन पांचों संगीत रचनाओं का उल्लेख किया तथा उसमें दो और रचनाएं जोड़ दी हैं। मंतग ने साधारणी में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के लिए ललित, सुक्ष्म,सुश्रव तथा मृदु इन विशेषणों का तथा काकु के लिए मसृण, सुक्ष्म आदि विशेषणों का प्रयोग किया।सांगीतिक सरंचना की इस प्रकार की शैलियां भारतीय संगीत में कम से कम सातवीं या आठवीं शताब्दी में प्रचलित रही हैं। गायन की साधारणी शैली जिसमें उदारता के साथ गमकों का अधिक प्रयोग होने लगा था हमारी ख्याल–गायकी के नाम से प्रचलित हुई। दसवीं शताब्दी से भारत पर विदेशी आक्रमण शुरू हो गये थे। हमारी सारी विधाएं एवं संस्कृति संस्कृत में प्रतिष्ठित थीं।संगीत सम्बंधी हमारे गंथ भी संस्कृत में लिखे गए।

विदेशियों ने संस्कृत को संरक्षण प्रदान करना बंद कर दिया। अतः लोगों ने संस्कृत के अध्ययन का त्याग करना शुरू किया। चूंकि संगीतज्ञ संस्कृत नहीं जानते थे, अतः शास्त्रों में जो संगीत सुरक्षित था, उसकी विरासत से संगीतज्ञ बिल्कुल वंचित होने लग गए। संस्कृत विद्या के लोप के कारण संस्कृत के प्राचीन संदर्भ के लिए विभिन्न बोलियों में नए–नए संदर्भपद गढ़ेजाने लगे। उतर भारत में खासकर "गमक" शब्द को इसी दुर्गति का सामना करना पड़ा। सभी प्रकार के मोहक गुणों के लिए "गमक" का सर्ववर्गात्मक प्रयोग होने लगा। विदेशी आक्रमण के बाद देश में जो अंधकार फैला उसके फलस्वरूप संगीतज्ञ भूल गये कि गमकों के संस्कृत नाम क्या है। वे केवल"उल्लासिता" या 'गद्गदिता' गमक को ही गमक कहने लगे।

शेष गमकों के लिए उन्होंने नए नामों की खोज की।उदाहरर्णाथ 'आहत' को लोग खटका, 'प्लाविता' को मींड और सूत कहने लगे, इसी प्रकार 'स्फूरिता गमक' को 'मुर्की 'गिटकरी' और 'जमजमा' कहा जाने लगा, जो 'स्फूरिता गमक के भेद हैं। कर्नाटकी संगीत में गमक शब्द अभी तक अपने मौलिक अर्थ में ही प्रचलित है। सांगीतिक सरंचना की साधारणी शैली में गायन की अन्य सभी शैलियों के अनुपम विन्यास सन्निहित रहे हैं। अपनी सरंचना के लिए ख्याल ने इसी गायन शैली को ग्रहण किया अर्थात् ख्याल में सभी गायन शैलियों के अनूठे विन्यास समाहित हो गए और उसमें 'भिन्न' शैली का प्राधान्य हो गया। इसने खटका, मुर्की, मींड, कम्प और आदोंलन की चिंता किए बगैर सभी गमकों को ग्रहण किया।डा0 इन्द्राणी चक्रवर्ती जी लिखती हैं कि भरत ने गमक शब्द का उल्लेख नहीं किया। अलंकार प्रकरण में उन्होंने रचित, कुहर तथा कम्पित शब्दों का प्रयोग मन्द्र, मध्य तथा तार स्थान के संदर्भ में किया है। मंतग ने इन्हे प्रमाण के साथ उद्धत किया है। नान्यदेव तथा सोमेश्वर ने गमक के सात प्रकार बताये तथा शारंगदेव ने 15 प्रकार के गमक का विस्तार से वर्णन किया है।

शारंगदेव ने गमक को एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयोग किया जिसके अर्न्तगत लगभग सभी तकनीकी अंलकरण की प्रस्तुति संम्भव हो सकती है। उन्होंने गमक को अंलकरण का एक प्रकार नहीं माना। परवर्ती काल में ध्रुपद तथा वीणा एवं दक्षिण की गान शैली में परम्परा का ही अनुसरण किया गया, साथ ही उत्तर तथा दक्षिण की मौखिक परम्परा में नई शब्दावली और नये देशीय **(क्षेत्रीय)** नाम भी जुड़ गये।उत्तर तथा दक्षिण की संगीत पद्धतियों में शास्त्रीय प्रमाण के साथ–साथ मौखिक परम्परा का विकास हुआ। मौखिक परम्परा में गमक के दस लक्षण (दसविध गमक) आज भी हमें मिलते हैं, चाहे वह हिन्दुस्तानी पद्धति के ध्रुपद गायकों में हो अथवा कर्नाटकी पद्धति के गायकों में। ध्रुपद की इस जीवित मौखिक परम्परा के डागुरवाणी में गमक के लक्षण का निर्वाह होता है, जिसे स्वर लक्षण कहा जाता है। इन स्वर लक्षणों को 'कायदा' भी कहते हैं और इसमें गमक अपने आप में भी एक अलग तकनीक है। बीनकारों में भी यह परम्परा प्राप्त होती है। हिन्दुस्तानी पद्धति की ध्रुपद परम्परा में 14वीं–15वीं शताब्दी से ही मौखिक परम्परा में 'दशविध' गमक का प्रमाण मिलता है।

शारंगदेव की 15 गमकों के नाम इस प्रकार हैं–तिरिप, स्फुरित, कम्पित, लीन, आंदोलित, प्लावित, वलि, करूला, आहत, त्रिभिन्न, उल्लासित, नामित, हुम्फित,मुद्रित और मिश्रित। डागरबाणी की मौखिक परम्परा में दस स्वर लक्षण के नाम हैं– आकार,डगर,धुरन, मुरन, कम्पित, आन्दोलित, लहक, गमक, हुदक, स्फूर्ति। परन्तु कुछ अन्य लक्षणों का भी प्रयोग है, जैसे उरप, तिरप,लाग–डाट,मींड, कृन्तन इत्यादि। वीणा वादन की मौखिक परम्परा में गमक के लक्षणों में उपर्युक्त गायन के लक्ष्णों में से कुछ छोड़ दिये गये हैं और कुछ नये तकनीक जोड़ दिये गये। यह वीणाओं की अपनी–अपनी वादन विशेषता को देखकर ही किया गया, ऐसा मानने में कोई दुविधा नहीं होनी चाहिए। यह भी प्रमाणित होता है किकुछ विशेष तकनीक जो कण्ठ में सम्भव नहीं रहा, वीणा पर विकसित हुआ और कुछ तकनीक जो कण्ठ के लिए ही सम्भव था, उसे वीणा के लक्षणों से बाहर कर दिया गया। जैसे–अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि शारंगदेव कथित हुम्फित और मुद्रित गमक केवल कण्ठ में ही सम्भव है। यद्यपि वीणा के लक्षण मुख्य रूप से दस ही बताये गये हैं, पर कुछ और लक्षण भी लक्ष्य में किये जाते हैं इनके नाम हैं– डगर, धुरन, मुरन,गमक, लहक, आन्दोलन, कम्पित, मींड, सूत,हुरप,ढ़क्का,उदात्त, अनुदात्त,लाग–डॉट, तीख,चोख कृन्तन आदि। कर्नाटक शैली की मौखिक परम्परा में दशविध गमकों के नाम हैं– कम्पित (बड़ा–छोटा), स्फुरित, ब्रिगु,जारू, द्विगु, आहत, ओरिक्कई, कत्री, नोक्क, त्रिपुच्छ और लीन। एक और परम्परा जो शारंगदेव कथित पन्द्रह गमकों का अनुसरण करती है,

ये परम्परा सम्पूर्ण रूप से कंठ से सम्बन्धित है। इन गमकों के नाम हैं– लीन,त्रिभिन्न, कुरूला, ओरिका, कम्पित,आन्दोलित, स्फुरित, तिरिप या नोक्कु, आहत, उल्लासित, प्लावित, हुॅम्फित, मुद्रित, नामित और मिश्रित। यहां 'ओरिका' शब्द क्षेत्रीय है और शारंगदेव के वलि गमक के स्थान पर रखा गया है।अतः स्पष्ट है कि गमक संगीत के विकास से आया हुआ एक सौन्दर्य प्रदायक तत्व है।

गमक के प्रकारः– विभिन्न ग्रंथकारों ने गमक के प्रकारों की संख्या भिन्न–भिन्न दी है जैसे–पं0 शारंगदेव ने 15 प्रकार, पार्श्वदेव ने 7, प0 अहोबल ने 20, प्रकार बताये हैं–प0 शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत

रत्नाकर में गमक की विस्तृत चर्चा की है– शारंगदेव द्वारा बताए गये गमक के 15 प्रकार इस प्रकार से हैं:–

1. **तिरिप गमकः**– छोटे डमरू के शब्द की भांति सुन्दर स्वर कम्पन की द्रुत मात्रा की एक चतुर्थांश गति में सम्पन्न होता है। अर्थात् वर्तमान में एक मात्रा में द्रुत चारवाणी विशिष्ट कम्पन, यथा सासासासा,रेरेरेरे इन्यादि।
2. **स्फुरित गमकः**– द्रुत मात्रा की एक तृतीयांश गति में सम्पन्न अर्थात् एक मात्रा में तीनवाणी विशिष्ट कम्पन, यथा सासासा, रेरेरे इत्यादि।
3. **कम्पित गमकः**– द्रुत मात्रा की अर्धांश गति में सम्पन्न अर्थात् एक मात्रा में द्रुत दोवाणी विशिष्ट कम्पन, यथा सासा, रेरे, गग इत्यादि।
4. **लीन गमकः**– द्रुत मात्रा की समान गति में सम्पन्न अर्थात् एक मात्रा में एकवाणी विशिष्ट कम्पन, यथा सा,रे,ग,म इत्यादि।
5. **आन्दोलित गमकः**– लघु मात्रा की गति में कम्पित अर्थात् द्रुत मात्रा की अर्धांश गति में सम्पन्न, अर्धमात्रा की एकवाणी विशिष्ट, यथा सा–,रे–,ग– इत्यादि।
6. **वलि गमकः**– नानाविध वक्रयुक्त गति में निष्पादित कम्पन, अर्थात् द्रुत लय में नाना प्रकार की वाणी मिश्रित, यथा सासासा,गगग,पप, रेरे,गग,ग,रेसा।
7. **त्रिभिन्न गमकः**– कम्पन में स्वर तीन स्थानों पर ही अविश्रान्त गति सम्पन्न तीन स्थान का अर्थ है मंद्र, मध्य तथा तार यथा पपप, सांसांसां, निनिनि, धधध, गगग, रेरेरे, ध़ध़ध़, निनि, सासा।
8. **कुरल गमकः**– यह वलि की भांति वक्र है किन्तु ग्रन्थियुक्त एंव कण्ठ स्थान पर निष्पन्न और कोमल होगा। जैसे– सासासा, गगग, रगरेगरे, गगग, ममम, धपधपम, गगग, रेगरेग, रेसा।
9. **आहत गमकः**– अग्रगामी स्वर को आधार मानकर जो स्वर निष्पन्न हो यथा गरे, मग इत्यादि।
10. **उल्लासित गमकः**– जो ध्वनि उत्तरोत्तर यथाक्रम से स्वरों के साथ चलती है यथा– सा रे ग म प ध नि।
11. **प्लावित गमकः**– प्लुत मात्रा में अर्थात् त्रिमात्रा विशिष्ट कम्पन। यथा– सा।।।रे।।।
12. **हुम्फित गमकः**– जो कम्पन मनोहारी हुंकार युक्त और गम्भीर हो यथा– गसापमग। सा से प तक मींड गम्भीर और दीर्घ होगी।
13. **नामित गमकः**– जिस गमक में स्वर अवरोह क्रम से परिव्याप्त होते हैं। यथा– सानि, निध,धप,पम इत्यादि।
14. **मुद्रित गमकः**– जो कम्पन मुँह बन्द करके निष्पन्न हो, गुन–गुन करके शब्द निष्पादित होगे।
15. **मिश्रित गमकः**– उल्लेखित कई प्रकार के मिश्रण से जो उत्पन्न हो, यथा– सासासा, गगग, रेरेरे, ममम,धध,पप,रेरे,गग, नि,ध,प,म,ग,रे,सा इत्यादि।

गमकों का प्राचीन काल से ही विशिष्ट महत्व रहा है। विभिन्न स्वर संगीत एंव गमकों के प्रयोग से एक ही स्वर का गायन तथा वादन भिन्न–भिन्न छाया उपस्थित कर देता है। इसी प्रकार आज भी एक ही स्वर का गायन विभिन्न क्रियाओं से भिन्न राग की अभिव्यक्ति कराता है। जैसे– दरबारी के गंधार पर जो विलम्बित आंदोलन किया जाता है यदि वहां दीर्घ आन्दोलन न किया जाए और स्वरों को शीघ्रगति से लिया जाए तो वहां अड़ाना राग हो जाता है। अतः किसी भी राग का सांगीतिक मूल्य केवल उसके सात स्वरों से युक्त ढांचे पर नहीं वरन् उन स्वरों में निहित मींड आदि से युक्त उसके सौन्दर्य पर अवलम्बित है। अतः राग संगीत में गमक का प्रयोग अति आवश्यक है।वास्तव में श्रुतियों के प्रयोग से ही गमक बने हैं किसी राग में अगर गमक का प्रयोग न हो तो वह निष्प्राण रहेगा जैसे– राग भैरव के रे को जब तक आन्दोलित नहीं करेंगे तब तक भैरव का स्वरूप स्पष्ट नहीं होगा इसी तरह दरबारी कान्हड़ा, सुहा, बागेश्री, नायकी कान्हड़ा आदि कान्हड़ा के प्रकारों में गंधार को पृथक–पृथक ढंग से आन्दोलित करके सभी रागों को अलग अलग दर्शाया जा सकता है। राग में चंचलता व चपलता की अभिव्यक्ति के लिए कण, खटका, मुर्की व विरह गाम्भीर्य के लिए मींड आदि का प्रयोग किया जाता है। ऐसे गमक प्रयोग उस राग विशेष की प्रकृति एवं चलन के अनुकूल होकर रागभिव्यंजक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार गमक राग के सौन्दर्य और स्वरूप को कायम रखने में अत्यन्त सहायक है।

निष्कर्षः–अतः स्पष्ट है कि गमक भारतीय शास्त्रीय संगीत में महत्वपूर्ण अलंकरण है, जिससे गायन में सौन्दर्य की वृद्धि होती है। गमक प्रयोग विभिन्न रसों की अनुभूति कराता है। गमक के बिना संगीत में किसी भी रस की समुचित परिभाषा पूर्ण रूपेण सम्भव नहीं है। गमक का प्रयोग ही संगीत में रोचकता भरता है। वस्तुतः गमक ही भारतीय संगीत को अन्य देशों के संगीत से अलग रखने वाली एक रेखा है। गमक का प्रयोग श्रोताओं के ह्रदय में प्रवाहमान रसानुभुति के घनत्व को और भी गम्भीर कर देती है। जिससे श्रोता आत्मविभोर हो जाते हैं। गमक का समुचित प्रयोग काफी अभ्यास के उपरान्त ही कलाकार कर सकते हैं। सिद्धहस्त कलाकारों द्वारा शास्त्रोक्त वैज्ञानिक ढंग से समुचित गमक प्रयोग श्रोताओं के चित को सुखानुभूति करवाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

1. महाजन डा0 अनुपम भारतीय शास्त्रीय संगीत हरियाणा साहित्य अकादमी एवं सौन्दर्यशास्त्र चण्डीगढ,पृ.सं–113 प्रथम संस्करण 1996
2. राजन रेणु हिन्दुस्तानी संगीत में राधा पब्लिकेशन्स अंसारी रोड़ राग लक्षण दरियागंज नई दिल्ली, पृ.सं.–206 प्रथम संस्करण 1996
3. जैन डा0 रेणु स्वर और राग कनिष्क पब्लिशर्ज डिस्ट्रीब्यूर्टस (परिभाषित संज्ञाओं के नई दिल्ली, पृ.सं.– 241–42 परिपेक्ष्य में) प्रथम संस्करण

4. चक्रवर्ती डा0 इन्द्राणी तन तन्त्री मन किन्नरी
मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी,
रबीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग,बानगंगा
भोपाल (म.प्र.) पृ.सं–41–42
प्रथम संस्करण 2004
5. शर्मा डा0 स्वतन्त्र भारतीय संगीत का प्रतिभा प्रकाशन
शक्ति नगर नई वैज्ञानिक विश्लेषण दिल्ली,
पृ.सं–272–73
6. डा0 शबनम भारतीय संगीत में अलंकार संजय प्रकाशन
बिहार सोम बाजार दिल्ली पृ.सं.– 196–250
प्रथम संस्करण 2000
7. ठाकुर जयदेव सिंह ख्याल का विकास (पत्रिका) संगीत
कला बिहार अ0भा0गन्धर्व महाविद्यालय मण्डल
प्रकाशन पृ.सं.– 26–27
8. गर्ग लक्ष्मी नारायण निबन्ध संगीत संगीत कार्यालय
हाथरस 204101 इण्डिया पृ.सं–47,48,49
प्रथम संस्करण–1989
9. चौधुरी विमलकान्त भारतीय संगीत कोष भारतीय ज्ञान
पीठ मुद्रक सन्मति मुद्रणालय पृ.सं– 26–27
प्रथम संस्करण–1975
10. मदन डा0 पन्नालाल संगीत शास्त्र विज्ञान अभिषेक
पब्लिकेशन्स सेक्टर 17 बी.चण्डीगढ़ पृ.सं– 101

डॉ0 कृष्णा देवी
पत्नि श्री राजेश कुमार
रैना निवास (फायर स्टेशन बिल्डिग) कोल डैम कलोनी,
तहसील सुन्नी, जिला शिमला (हि.प्र.) पिन–171301
ई मेलः–dkrishana083@gmail.com; Mob. No:
8629022531/9418354010

16

जन जागरण और हिंदी पत्रकारिता

डॉ. राजेश कुमार, प्रमिला देवी

सारांशः–

पत्रकारिता समाज और जन जागृति का सबसे प्रभावशाली माध्यम है । पत्रकारिता समाज की दैनिक घटनाओं को समाचार के रुप में प्रसारित करती है । इसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और कलात्मक संदर्भों की प्रस्तुति होती है । पत्रकारिता जनमत की अभिव्यक्ति का सशक्त एवं लोकप्रिय साधन है क्योंकि यह कटुसत्यों का निर्भिकता से उद्घाटन करके जनता को उचित मार्गदर्शन भी देती है । पत्रकारिता में दैनिक अखबार, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्शिक और विशेषांक स्मारिका आदि का समावेश होता है । भारत में हिंदी पत्रकारिता का सप्रमाणित पत्र उदंतमार्तंड है । इसके बाद भारतेंदुकालीन पत्रकारिता आती है । इस युग की पत्रकारिता का मूलस्वर जनजागरण का था। ''भारतेंदुयुगीन हिंदी पत्रकारिता ने साहित्यिक ऊँचाईयों को छुआ तथा इसे महान साहित्यकार एवं उच्चादर्शों के लिए पत्रकार प्राप्त हुए और बहुत कम समय में हिंदी पत्रकारिता ने किसी पूर्व परंपरा के अभाव में भी महत्त्वपूर्ण उन्नति के शिखर चूमें।''[1]

भारतेंदु युग सामाजिक चेतना का प्रवेश द्वार रहा है । ''राष्ट्र के हितकारी कार्यों और हिंदी की उन्नति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने के कारण हिंदी पत्र संपादकों ने भारतेंदु हरिश्चंद्र को भारतेंदु की पद्वी दी जिसका शाब्दिक अर्थ भारत का इंदु अथवा चंद्रमा होता है।''[2] हिंदी पत्रकारिता ने आरंभ में तद्युगीन जीवन को नवचेतना का मंत्र दिया । इस नवीन चेतना से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और दैनिक जीवन में बदलाव दिखाई दिया । सुसुप्त चेतना जागृत हो उठी जिसने साहित्यिक संघर्षों की प्रेरणा दी और राष्ट्र को पराधीनता से छुटकारा दिलाया । राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से युक्त सत्कार्य को बढ़ावा देना ही पत्रकारिता है। जिसमें देशवासियों की नस–नस में स्वतंत्रता, समानता और विश्वबंधुत्व की भावना का संचार होता है । भारतेंदु युगीन पत्रकारिता में व्यक्ति चेतना, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना के नव जागरण का प्रमुख प्रेरक संदेश हेतु भारतेंदु जी ने काफी योगदान दिया है । भारतीय पत्रों ने उस काल में अंग्रेजों की पक्षपात भरी नीति का खुलकर विरोध किया । रंगभेद नीति एवं जातीय पक्षपात पूर्ण निर्देशों के खिलाफ सामाजिक चेतना को मुखर किया । भारतेंदु जी ने कविवचन सुधा नामक पत्रिका के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक चेतना को फैलाया । भारतेंदु एक सच्चे राष्ट्र भक्त थे । डॉ0 रामविलास शर्मा के मतानुसार ''देश के लिए रुढ़िवाद का खंडन करना और महंतों, पंडों, पुरोहितों की लीला प्रकट करना निर्भीक पत्रकार हरिश्चंद्र का ही काम था।''[3]

पत्रकारिता द्वारा समाजिक विकास के साथ–साथ राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक विकास उचित दिशा में प्रभावी रुप हो सकता है । ये हमने भारतेंदु युगीन पत्रकारिता में देखा ।

आधुनिक युग को 'पत्रकारिता का युग' कहा जाए तो शायद गलत नहीं होगा । क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में पत्रकारिता का प्रभाव हम बखूबी देख सकते हैं। सुबह उठते ही अखबारों से समाज दर्शन होता है । वह बताता है कि समाज में कहाँ क्या हो रहा है । जितना प्रभाव समाज पर पत्रकारिता का पड़ता है उतना ही पत्रकारिता पर समाज का पड़ता है । दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। पत्रकारिता मात्र समाचार पत्र तक सीमित नहीं है वह तो हमारे जीवन, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का प्रभावी दर्पण है । अज्ञेय जी ने लिखा है कि ''लोकतांत्रिक समाज में समाचार पत्र का एक विशिष्ट स्थान होता है क्योंकि उस समाज के साथ उसका अस्तित्व अधिक गहरे ढंग से जुड़ा होता है । समाज जितना स्वस्थ या बीमार, स्वतंत्र या परमुखापेक्षी होता है उतने ही उसके समाचार पत्र भी स्वस्थ या बीमार, स्वतंत्र या निर्भर होते हैं ।'' इसी दृष्टिकोण से हम देखते हैं कि लोकतांत्रिक समाज में समाचार पत्र का विशेष उत्तरदायित्व होता है। पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य यही रहे हैं कि समाज को सही, संतुलित, स्मयक समाचार प्रस्तुत हो। पत्रकारिता केवल व्यवसाय नहीं है । पत्रकारों को सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति विशेष लगाव होना चाहिए । किंतु वर्तमान समाचार पत्रों में व्यावसायिकता के तौर पर लाभ हानि आदि को ध्यान में रखा जा सकता है । ऐसे कुछ समाचार पत्रों का सामाजिक दायित्व संदिग्ध दिखाई पड़ता है । समाज को विकृत करने वाली शक्तियों का प्रभाव पत्रकारिता, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए त्रासदी एवं घातक सिद्ध होता है । डॉ0 सुरेश गौतम के मतानुसार –''साहित्य की तरह पत्रकारिता के केंद्र में मनुश्य ही है । लेकिन पत्रकारीय व्यावसायिकता साहित्य का धर्म नहीं है। अंततः मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना, राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति चिंता, सत्यनिष्ठा, खनन सूक्ष्म दृष्टि, धर्म निरपेक्ष, वैचारिक खुलापन, सांस्कृतिक प्रतिबद्धता, तथ्यात्मक विश्लेषण, चिंतन मनन की गंभीरता, लोकमंगल की साधनावस्था, साधना को पाने के लिए साधनों की पवित्रता, शोषण का प्रतिकार, संतुलित तटस्थता, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आर्थिक आदि समकालीन प्रश्नों के प्रति संचेत जागरूकता.... इन सबका समरस चिंतन ही पत्रकारिता है और शंखधर्मी पत्रकारिता की बुनियादी शर्तें।''[4]

आज हम देखते हैं कि पत्रकारिता (मीडिया) के दृश्य श्रव्य साधनों ने समाज को एक कमरे में कैद करके रखा है । विविध चैनलों का, विज्ञापनों का, समाचारों का अत्याधिक प्रभाव भी हम देख सकते हैं । इस बात को भी हमें स्वीकार करना पड़ता है कि आज पत्रकारिता की तुलना में मीडिया का जनसंचार माध्यमों का प्रभाव समाज पर ज्यादा पड़ता है । इसका सुप्रभाव एवं कुप्रभाव भी देख सकते हैं। ऐसे में पत्रकारिता का समाज के प्रति क्या दायित्व हैं? और समाज उससे क्या अपेक्षा करता है । यह एक सोचनीय प्रश्न है जो हर दौर में उठता है । आज हम देखते हैं कि भारतेंदु युगीन पत्रकारिता और वर्तमान पत्रकारिता में जमीन आसमान का अंतर है । श्री विष्णु पराडकर जी ने सत्यता पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि ''दुर्भाग्य से हिंदी पत्रकारिता अनेक दृश्टि में उस राह पर चली जिस राह पर उसे नहीं

चलना चाहिए था।'' कुछ प्रबुद्ध विद्वानों ने आरोप लगाया है कि वर्तमान पत्रकारिता एक विशुद्ध व्यावसायिक पत्रकारिता है । लोकशिक्षा की अपेक्षा उसका ध्यान लोकानुरंजन की ओर अधिक लगा हुआ है । इस कथन पर अगर विचार करके देखें तो इसमें भी थोड़ा बहुत सत्य और तथ्य के दर्शन होते हैं । आधुनिक पूंजीपतियों का, राजनीतिज्ञों का और औद्योगिकों का प्रभाव पत्रकारिता पर दिखाई पड़ता है । लेकिन इन कुछ दोषों के बावजूद भी पत्रकारिता ने सामाजिक जागरण एवं दायित्व में अपनी विशष प्रेरक और प्रभावशाली भूमिका निभाई है । मानव जीवन एवं समाज के विकास में पत्रकारिता का दायित्व सराहनीय रहा है और भविष्य में भी रहेगा केवल सावधानी बरतने की आवश्यकता है ।

संदर्भ :–

1. हिंदी पत्रकारिता : कल, आज और कल – सुरेश गौतम, वीणा गौतम, पृ. 45
2. उन्नीसवीं शताब्दी की हिंदी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना – राहुल रंजन, पृ. 57
3. सरस्वती हीरक जयंती अंक – भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाबू राधाकृष्ण दास, पृ. 447
4. हिंदी पत्रकारिता कल, आज और कल, सुरेश गौतम, वीणा गौतम – तुलदंड, पृ. 8–9.

शोध निर्देशक
डॉ. राजेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय,
कैथल ।

शोधकर्त्री
प्रमिला देवी
पी.एच.डी. शोधार्थी (हिंदी विभाग)
एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय,
कैथल ।

17

भारत की नींवः नई शिक्षा नीति

शैफाली गर्ग

सारांशः–

कुछ माह पहले ही पेश की गई शिक्षा नीति का महत्वाकांक्षी लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक एकरूपता कायम करना और वर्ष 2030 तक शत–प्रतिशत नामांकन हासिल करना है। 34 वर्ष बाद आई इस नीति का प्रारूप जाने–माने वैज्ञानिक और इसरों के पूर्व प्रमुख डॉ० के० कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में तैयार किया गया है। आजादी के बाद भारत को अब तक तीन शिक्षा नीति मिली हैं। पहली शिक्षा नीति 1968 में बनी, जिसमें पूरा जोर मुख्य रूप से 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाने पर था। अगली शिक्षा नीति 1986 में लागू की गई। इस दूसरी शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच विषमता को घटाना था। इस नीति ने विभिन्न सामाजिक समूहों में शिक्षा के मोर्चे पर समानता कायम करने पर जोर दिया, लेकिन उसने प्रतिस्पर्धी वैश्विक परिदृश्य पर उतना ध्यान नहीं दिया, जबकि 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण और वैश्वीकरण की बयार शुरू होने के बाद यह पहलू बहुत महत्वपूर्ण हो गया था। अब 2020 की नई शिक्षा नीति में भारतीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए स्थानीय और वैश्विक मानव संसाधन में संतुलन का प्रयास किया गया।

रणनीतिक रूप से देखें तो दोनों नीतियों में अंतर मुख्य रूप से तीन प्रमुख पैमानों पर दिखता है। पहला समाज का विजन, दूसरा सामाजिक उद्देश्य और तीसरा शिक्षा का उद्देश्य। दोनों नीतियों का विकास सामाजिक ढाँचे को ध्यान में रखकर ही किया गया। इस प्रकार देखें तो 1986 और 2020 की शिक्षा नीतियों का भारतीय समाज के बारे में अलग विचार और दृष्टिकोण है। 1980 के दशक में दुनिया की अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ मुख्यतः स्थानीय थीं और कुछ संक्रमण के दौर से गुजर रहीं थीं। इसी को ध्यान में रखते हुए 1986 की नीति का जोर सभी के लिए समान अवसर और मानकीकरण पर था। दूसरे शब्दों में कहें तो नियामकीय एजेंसियों का पूरा ध्यान इस पहलू पर केंद्रित था कि वे विभिन्न संगठनों और संस्थानों में एक न्यूनतम शिक्षा मानक को सुनिश्चित करें।

दोनों शिक्षा नीतियों में दूसरे अंतर का संबंध सामाजिक उद्देश्य से जुड़ा है। 1986 की नीति की दिशा विभिन्न सामाजिक समूहों के लिए मानकीय शैक्षणिक अवसर उपलब्ध कराने की ओर थी। व्यापक रूप से उसका मुख्य उद्देश्य वंचित वर्गों के समावेशन पर केंद्रित था। वहीं 2020 की शिक्षा नीति सामाजिक समावेशन के साथ–साथ वंचित वर्गों की खासी हिस्सेदारी वाले क्षेत्रों में विशेष शिक्षा क्षेत्रों के गठन की उम्मीद जगाती है। इसके अतिरिक्त नई शिक्षा नीति शैक्षिक ज्ञान और प्रशिक्षण से मिलने वाले आर्थिक उपार्जन पर भी ध्यान केंद्रित करती है। नई शिक्षा नीति कौशल आधारित समझ और रोजगारपरकता को लेकर बहुत गंभीर है। माध्यमिक शिक्षा और उसके बाद विभिन्न स्तरों पर तकनीकी कौशल उपलब्ध कराने पर जोर देने से यह एकदम स्पष्ट होता है। इसका कारण शायद यह भी है कि आज अर्थव्यवस्थाएँ वैश्वीकरण के जटिल समीकरणों के साये में संचालित हो रही है।

तीसरा अंतर शिक्षा के उद्देश्यों की समझ से जुड़ा है। इससे पहली नीति में विश्व और मानव जीवन की समझ पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित किया गया। 1986 की नीति के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य अंतरराष्ट्रीय सहयोग, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, समाजवाद की विकास, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र की समझ के साथ मानव संसाधन का समग्र विकास करना है।[1] वहीं नई नीति नागरिकों के ज्ञान, कौशल एवं वैयक्तिक विकास के साथ राष्ट्रीय विकास पर अधिक ध्यान केंद्रित करती है। इसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ही मानव की समस्त संभावनाओं को भुनाना और समरूप समाज के विकास के साथ ही राष्ट्रीय विकास को प्रोत्साहन देना है। नई नीति में पाठ्यक्रम की रूपरेखा समालोचनात्मक सोच, विमर्श और विश्लेषणात्मक समझ की दिशा में है। जिसका लक्ष्य भारतीय प्रतिभाओं और मानव संसाधन को और बेहतर बनाना है।

पिछले तीन दशकों में देश और दुनिया में अनेकानेक परिवर्तन हुए। देश वैश्वीकरण, उदारीकरण और आर्थिक विस्तार के दौर से गुजरा, परंतु नई शिक्षा नीति का आगाज नहीं हुआ। देश बदला, दुनिया बदली, समाज और उद्योगों की जरूरते बदलीं, किंतु शिक्षा जगत में कोई क्रांतिकारी मोड़ नहीं आया और 1986 की शिक्षा नीति अप्रासंगिक नजर आने लगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एकमात्र ऐसी नीति है, जिसमें पंचायत से लेकर संसद तक, ग्राम प्रधान से लेकर प्रधानमंत्री तक, छात्र से लेकर अभिभावक तक, शिक्षक से लेकर शिक्षाविदों तक और गरीब से लेकर उद्योगपतियों तक, सभी का विमर्श, सहयोग और योगदान है। यह पूर्ण रूप से एक ऐसी समावेशी शिक्षा नीति है, जिसे दुनिया के विशालतम विचार–विमर्श, मंथन और चिंतन के उपरांत अपना स्वरूप प्राप्त हुआ। यह शिक्षा नीति 135 करोड़ भारतीयों की आकांक्षाओं, उम्मीदों और भावनाओं को अपने अंदर समेटे स्वर्णिम भारत का स्वप्न लिए एक विजन डॉक्यूमेंट है। नई शिक्षा नीति आने वाले समय में एक ऐसा मानव संसाधन तैयार करेगी, जो राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका अदा करेगा। जब प्राकृतिक संसाधन सीमित हों और वे सिकुड़ते भी नजर आएँ, तो मानव संसाधन में निवेश करना चाहिए। शिक्षा में निवेश एक ऐसा प्रयोग है, जिसका लाभ हमें पीढ़ी–दर–पीढ़ी मिलता रहता है। इसी सोच को सामने रखकर हमने छह प्रतिशत जीडीपी का प्रावधान रखा है, ताकि उत्तम और गुणवत्तापूर्ण समावेशी शिक्षा सुनिश्चित हो सके। प्रधानमंत्री के सहयोगात्मक संघवाद की आधारशिला पर सभी प्रदेशों को साथ लेकर इस नीति का क्रियान्वयन क्रमबद्ध एवं समयबद्ध रूप में किया जाएगा।

21वीं सदी ज्ञान की सदी है। नालंदा और तक्षशिक्षा के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करना हमारा लक्ष्य है।[2] हमारा राष्ट्र पुनः एक ज्ञान शक्ति का उत्कृष्ट केंद्र बने, इसके लिए शिक्षा नीति के स्वरूप को समकालिक बनाने का प्रयास किया गया है। साक्षरता के साथ कौशल का समावेश करने का प्रावधान कक्षा छह से किया गया

है। गाँधी जी का मानना था कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसी विचार को समाहित करते हुए तीन भाषा का फॉर्मूला दिया गया। छात्र कोई भी भाषा चुन सके, इसके लिए विकल्प खुले रखे गए हैं। कोई भाषा न थोपी जाए, इसे भी सुनिश्चित किया गया है। शिक्षा केवल शिक्षित ही नहीं करती, अपितु राष्ट्र का निर्माण भी करती है। वह ऐसे चरित्र का निर्माण करती है, जो जीवन मूल्यों पर टिका हो, देश को समर्पित हो और मानवता एवं वैश्विक सोच से परिपूर्ण हो। राष्ट्रभक्त ही नहीं, वैश्विक नागरिक तैयार करने की परिकल्पना को सामने रखकर ही हमने शिक्षा नीति का स्वरूप तैयार किया है। स्टडी इन इंडिया एक ब्रांड के रूप में स्थापित करने के लिए दुनिया के सौ शीर्ष संस्थानों के लिए रास्ते खोले गए हैं, जिन्हें क्रमबद्ध और नियंत्रित तरीके से अमल में लाया जाएगा।

मैकाले ने हमें हीनभावना से ग्रसित कर पश्चिम सभ्यता को उच्चतर बताने का काम किया, देश की शिक्षा एवं संस्कृति का मूल ढांचा ही बदल दिया और ऐसे भारतीयों को तैयार किया, जो सोच–समझ, मूल्यों एवं विचारों से विदेश, परंतु रंग–रूप में स्थानीय हों। इस ऐतिहासिक भूल को नई शिक्षा नीति ला कर सुधारा गया है। अब हमारे युवाओं की सोच भी भारतीय होगी और रंग भी। यह शिक्षा नीति एक मील का पत्थर साबित होगी। तकनीक के दौर में यह ऐसे वैश्विक नागरिक का विकास करेगी, जो देश की चुनौतियों के मध्य समस्याओं का समाधान खोजने में अहम भूमिका निभाएँगे। जय जवान–जय किसान–जय विज्ञान–जय अनुसंधान की संस्कृति को एक नया स्वरूप देने के लिए एनआरएफ की आधारशिला रखी जाएगी। शिक्षा का आधार भारतीयता पर टिका हो और उसका स्तर अंतरराष्ट्रीय हो, इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मजबूत कदम उठाए गए हैं। स्वायत्तता और नियमन के बीच का मार्ग चुनते हुए संस्थाओं को आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक स्वायत्तता के लिए प्रावधान किए गए हैं। सरकार का लक्ष्य है कि संस्थान स्वायत्त, पारदर्शी और उत्तरदायी भी हों।कोविड काल की समस्याओं और नए दौर में तकनीक के बढ़ते उपयोग को व्यवस्थित बनाने की दिशा में भी नई शिक्षा नीति नए युग का सूत्रपात करेगी। मल्टी एंट्री–मल्टी एग्जिट मॉडल शिक्षा को रोचक और लचीला बनाएगा। एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट शिक्षा में व्यापक विस्तार देगा।[3]

निष्कर्ष– कुल मिलाकर 1986 की नीति ने शिक्षित एवं प्रशिक्षित मानव संसाधनों का ऐसा वर्ग तैयार किया जिन्होंने वैल्यू चेन में योगदान दिया, लेकिन 2020 की नीति ऐसे मानव संसाधन के निर्माण का स्वप्न रखती है जो खुद वैल्यू चेन के नए आयाम का सृजन करें, फिर भी रणनीतिक पहलुओं को छोड़ दिया तो 1986 और 2020 की शिक्षा नीतियों में कई बातें एकसमान भी हैं। नई शिक्षा नीति के लागू होने से भारतीय शिक्षा तंत्र अंतरराष्ट्रीय मानकों के करीब पहुँचेगा। देश भर के छात्रों के बीच हुए एक ऑनलाइन सर्वे में करीब 96.4 प्रतिशत छात्रों को नई नीति के परिणामों से उत्साहजनक उम्मीद बंधी है। हालांकि यह बात नहीं भूली जानी चाहिए कि शिक्षा भारतीय संविधान में सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में है। ऐसे में इस नीति के अपेक्षित फायदों को हासिल करने के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को कंधे से कंधा मिलाकर काम करना होगा।

सन्दर्भ सूची:–

1. नेशनल पॉलिसी फॉर द एम्पॉवरमेंट
2. के. सिद्धार्थ, इतिहास एवं धरोहर
3. विभिन्न दैनिक समाचार–पत्र

शैफाली गर्ग

(विभागीय लेखों में विवाह के पश्चात् परिवर्तित नाम–शैफाली मित्तल)

(सहायक अध्यापिका)

पूर्व माध्यमिक विद्यालय, केशोपुर सठला, ब्लॉक बी०बी०नगर, जिला बुलन्दशहर– 245402

निवासः– 740, कृष्णा नगर, स्वर्ग आश्रम रोड, हापुड़– 245101

18

डॉ0 हेमराज निर्मम के रेडियो नाटकों में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांशः–

नाटक दृश्य काव्य है जिसका रसास्वादन सहृदय मंच पर अभिनीत होते हुए दृश्य को देखकर करता है किन्तु रेडियो नाटक दृश्य श्रव्य काव्य है जिसका ग्रहण दर्शक नहीं अपितु श्रोता करते है। श्रोता न किसी पेक्षाग्रह में जाते है, न किसी रंग मंच के सामने बैठते है, वे घर में बैठे हुए ही श्रवणेद्रिय के माध्यम से दृश्यात्मक बिम्ब अपने मानस पर बना लेते है। नाट्यकाव्य की दृष्टि से दानों में समानता होते हुए भी रेडियो नाटक में प्रत्यक्ष दृश्य का अभाव होता है। अंतः माध्यमगत भिन्नता के कारण रेडियो नाटक के तत्वों से भिन्न आधार पर निर्धारित किया गया है। यही कारण है कि रेडियो नाटक में ध्वनि तत्व को प्रमुखता प्रदान की गई है। उच्चरित शब्द, भाषा, संगीत, तथा ध्वनि प्रभाव की सहायता से रेडियो नाटक को सम्प्रेषित किया जाता है।

1 नवम्बर 1966 को भाषायी राज्य पुनर्गठन नीति के आधार पर हिन्दी भाषी प्रान्त हरियाणा का जन्म हुआ। इससे पहले यह प्रदेश पंजाब का एक भाग था। इस प्रान्त में पंजाबी भाषा का प्रभुत्व होने के कारण यह भू–भाग अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य आदि का विकास करने में असमर्थ रहा था। 8 मई 1976 को आकाशवाणी केन्द्र रोहतक का उद्घाटन हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बनारसी दास गुप्ता के कर कमलों से हुआ। आकाशवाणी रोहतक की मुख्य भाषा हिन्दी तथा हरियाणवी दोनों है और यहाँ पर इन दोनों भाषाओं के कलाकारों को प्रथमिकता दी जाती है।

रेडियो नाटक आज के युग की एक ऐसी शक्त विद्या है जिसके प्रणयन में साहित्यक प्रतिभा के साथ–साथ यन्त्र का सहयोग अनिवार्यतः लिया जात है। लेखन प्रतिभा तथा यन्त्र–तन्त्र दोनों ही महत्वपूर्ण तत्व है।

संस्कृत नाट्य–शास्त्र के अनुसार नाटक दृश्य काव्य है जिसका रसास्वादन सहृदय दर्शक रूप में , प्रेक्षाग्रह में बैठकर मंच पर अभिनीत होते हुए देखकर करता है।–'' रेडियो नाटक वह नाटक है जिसको श्रोता अपने घर में अंधेरे कमरे में बैठकर भी, आँखे बन्द करके बैठा हुआ भी, सुन सकता है तथा उसको सुनकर ही वह नाट्यरस की सम्पूर्ण अनुभूति कर लेता है। श्रोता के ग्रहण का मुख्य आधार–शब्द, ध्वनि तथा उसी माध्यम से वह कणेन्द्रिय के द्वारा करता है तथा उसी मध्यम से वह नाटक का ग्रहण करता है। 1.

नाटककार की समस्त साहित्यिक प्रतिभा, भाषा पर अल्प अधिकार, भाषिक अभिव्यक्ति का सौन्दर्व, नाट्य– दर्शन आदि को सुनने के माध्यम से ही उपलब्ध कराता है।

'' नाटक दृश्य काव्य कहलाते हुए भी मूलतः शब्द काव्यहोता है तथा रेडियों नाटक और कुछ नहीं है। शब्द काव्य या शब्द नाटक का ही एक ऐसा विशिष्ट रूप है जिसमें सहायक दृश्य भागों का भी ध्वनिकरण कर दिया जाता है। तथा ध्वनि प्रसारण के लिये यंत्र की सहायता की जाती है।''2.

दृष्टिगत रखते हुए इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है।

'' पात्रों के कार्यों व्यापारों और ध्वनि द्वारा जीवन की विभिन्न स्थितियों के श्रोता सापेक्ष मानसी प्रत्यक्षीकरण के निर्तित रेडियों पर प्रस्तुतिकरण की क्रिया को रेडियो नाटक मानना चाहिये।''3.

शब्द काव्य का वह नाट्य रूप है। जिसमें नाटक के समस्त तत्वों का पात्र–वैशिष्ट्य वातावरण, मंच–सज्जा, अभिनय आदि का ध्वनिकरण कर दिया जाता है। इस कार्य में ध्वनि–प्रसारण, यन्त्र एवं ध्वनि संग्राहक–यन्त्र (टेप) सहायक बनते है। नाटक के सभी तत्वों का इसकी अपेक्षा के अनुसार परिवर्तन एवं संयोजन कर लिया जाता है। दृश्य नाटक के शिल्पगत भिन्नता को पहचानना ही रेडियो नाटक का स्वरूप विवेचन कहा जा सकता है। रेडियो नाटक के मुख्यतः 6 तत्व माने जाते है।– कथावस्त्रु, पात्र– अभिनय, संवाद, मंच–सज्जा, ध्वनि एवं उद्देश्य।

साहित्य समाज का दर्पण है यह मानवता की हृदयगत भावनाओं का कोष है। साहित्य के सर्जन में यद्यपि साहित्यकार की कल्पना प्रमुख से काम करती रहती है तथापि वह वास्तविक सामाजिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता। साहित्यकार पर तत्कालीन, सामाजिक, धार्मिक, राजनैजिक आदि परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पडता है। साहित्य में मानव के ज्ञान , विज्ञान, विविध विश्वास, रूदि–नीतियों, परम्पराऐ, नैतिक मान्यताएँ, सामाजिक आदर्श, जीवन–मूल्य, कला और संस्कृति का अखण्ड भण्डार भरा रहता है। साहित्यकार युग दृष्टा तथा युग सृष्टा होता है। साहित्यकार के चिरकालीन उत्थान–पतन को देखने तथा उसकी समस्याओं को समझने के लिये साहित्य प्रमुख साधन है।

रेडियो नाटक का उद्देश्य सर्व साधारण को सामयिक संन्दर्भ से अवगत कराकर, समस्या का समाधान प्रस्तुत करना और जनमानस के रस एवं आनंद का संचार करना है। खेतिहार, किसान, मजदूर और निरक्षर लोग भी रेडियो नाटक को आसानी से सुन और समझ सकते है। रंगमंचिय नाटक और नुक्कड आदि नाटक को देखने और सुनने के लिये सहृदय को अपना काम छोडकर और समय निकालकर कहीं बाहर जाना पडता है। इस असुविधा से बचने के लिये नाटककार ने अपना संदेश जनमानस तक पहुँचाने के लिये रेडियो माध्यम को उप्युक्त समझा और रेडियो के लिये नाटक लिखने प्रारंभ कर दिए।

डॉ0 हेमराज निर्गम के प्रमुख रेडियो नाटकों में 'दूज की चाँदनी, मृगतृष्णा, बटी जिन्दगी, सच और झूठ, मौत और धडकन, जीने के लिये, नोटिस, चादर कितनी उजली, अपने लोग, हरी पगडंडी, एक मुरठी और सुख आदि का नाम उल्लेखनिय है।

दूज की चांदनी, रेडियो नाटक में सन्हया, तपेशसिंह की दूसरी पत्नी है, एक रात वह माँ बनने की खुशी में नाचती है, गाती है, मदहोश होकर नाचती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसके पति ने नसबंदी ऑपरेशन करवाया हुआ है और वह कभी भी माँ नहीं

बन सकती तो उसके सपनों का सुनहरा संसार चूर–चूर होकर बिखर जाता है।

'मृगतृष्णा' नाटक में ऐसी निद्वयी और कठोर हद्या बहन की कहानी है। जो एक एसे भाई की जायजाद लेने के लिये अपने बूढे और बीमार पिता भाई और भाभी से झगडा करती है। परन्तु अंत में वह अपने इरादे में कामयाब नहीं होती ।

'बँटी जिन्दगी' नाटक में नायिका पूनम के परिवारिक दायित्व का उल्लेख किया गया है। जीवन भी परिवारिक जिम्मेवारी को बहन करते करते उसे निराशा का ही सामना करना पडता है।

'' तिल–तिलकर होम होना ही मरी नियति है।''4.

सच और झूठ नाटक में विधवा अभागियों के दुर्भाग्य का चित्रण है। जिसमें उसके इकलौते बेटे का यह चौराहे पर काल कर दिया जाता है कातिल को पकडवाने में समाज एवं परिवार का कोई व्यक्ति उसकी सहायता के लिए आगे नही आता। मौत और धडकन रेडियो नाटक में कीर्तिक पति की उपचार के दौरान डॉ0 से मृत्यु हो जाती है जिसके कारण वह डॉक्टर से दुरव्यवहार करती है लेकिन अंत में जब वही डॉक्टर उसका उपचार करते हुए स्वस्थ करता है तो उसकी घृणा प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। 'जीने के लिए' रेडियो नाटक में एक ऐसे बेवकूफ और लापरवाह अधिकारी का चित्रण किया है जो सारे समय को फिजूल की बातों में बर्वाद कर देता है। 'नोटिस' नाटक छात्र यूनियन के प्रधान मुकेश सामाजिक सुधार प्रणली की संघर्ष गाथा का वर्णन किया गया है। 'चादर की उजली' नामक नाटक में पतिकी मृत्यु के पश्चात कुछ जाति विशेष में चादर डालने की प्रथा (पुर्नविाह प्रथा) का वर्णन किया है जिसमे नाटक की जिसमे नाटक की नायिका शोभा इस प्रथा काविरोध करती है तथा उसे इस कार्य में सफलता भी मिलती है। अपने लोग नाटक में लेखक ने संयुक्त परिवार प्रणाली से पारिवारिक जीवन में मिलने वाली प्रसन्नता एवं सुखों का उल्लेख किया है। एक मुटठी भर सुख नाटक बडे परिवार से उत्पन्न परिस्थियों पर प्रकाश डालता है। डॉ0 हेमराज निर्मम के नाटकों में व्यक्ति की मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, एवं सामाजिक स्थितियों का यर्थाथ, सूक्ष्म एवं तीखा चित्रण किया गया है। इन नाटकों के उददेश्य में नारी के विभिन्न रूपों को दर्शाया गया है। रंग रूप और डील डौल से कोई दो व्यक्ति समरूप नह होते, पर वास्त में स्वभाव और रूचि की भिन्नता ही एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न करती है। यही कारण है कि 'बंटी जिन्दगी' की बहन पूनम अपने भाई तथा परिवारजनों के कल्याण के लिए अपने स्व को तिल तिलकर होम करती है। तथा दूसरी तरफ 'मृगतृष्णा' की बहन कमलेश जो सम्पति के बटवारे के लिए कानून की शरण लेकर भाई को न्यायालय तक घसीटने मे कोई संकोच नही करती इसके साथ ही कुछ ऐसी स्वाबलम्बी और साहसी स्त्रियॉ है जो विपरीत समय में भी साहस का परिचय देती है। जैसे 'चादर कितनी उजली' की विधवा शोभा अपने देवर के साथ पुर्नविवाह का विरोध करती है। नाटक 'दूज की चॉदनी' ऐसे पुरूषों की झॉकी प्रस्तुत करते है जो अपने अवगुनों को छिपाकर स्त्रियों को धोखा देकर शादी करते हैं फिर भी सामान्य बने रहते हैं। कुछ ऐसे पुरूष है जो अपनी राक्षसी प्रवृत्तियों से समाज को भयभीत करते हैं तथा भरे चौराहे पर किसी की हत्या करने में भी नही हिचकिचाते जैसे नाटक– 'सच और झूठ' का शेरू । इसके विपरीत समाज में कुछ ऐसे पुरूष भी है जो दूसरों का भला करके खुश होते है। मौत और धडकन नाटक में डॉ कुमार अपने स्नेह भावना से मानसिक रोग से पीडित कीर्ति का उपचार करता है। डॉ0 निर्मम के आकाश वाणी रोहतक से प्रसारित सामाजिक वर्ग के नाटकों में समाज में उभरने वाली प्रायः हर समस्या और बुराई को नाटककारों ने अपने नाटकों में स्थान दिया है एवं समाज में रहने वाले स्त्री पुरूषों के सही चित्र उभारने का प्रयास किया है।

निष्कर्षः– डॉ0 निर्मम के भ्रष्ट राजनीति से सम्बन्धित नाटकों में करूणा के प्रतिबिम्ब नाटक में पैराणिक कथा को आधार बनाकर वर्तमान में शासक और शासित के मध्य दूरी को कम करने का प्रयास किया है तथा राज्य की लालसा वाले पात्र देवदत्त के चरित्र को उभारकर वर्तमान में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक की कथा वस्तु पौराणिक है पात्र संख्या छः है जिसमें चार पुरूष पात्र मुख्य पात्र केवल कुमार गौतम ही है तथा अन्य शुद्धोरन, देवदत्त, गिरीदेव, भ्रदा तथा चन्द्रिका सहायक पात्र है।

डॉ0 निर्मम जी के नाटकों की कथावस्तु संक्षिप्त, रोचक तथा तीव्र गति से आगे बदने वाली है कही ऐतिहासिक, पैराणिक पात्रों को चित्रित किया गया है तो कही पर भावों का मानवीकरण करके पात्रों को चित्रित किया गया है रेडियो नाटक युवा वर्ग में नैतिक मूल्यों की पुन प्रतिष्ठा करने की सार्थक कोशिश कर सकता है आज के समाज की सबसे बडी आवश्यकता यही है।इस ओर रेडियो नाटककार का ध्यान जाना समाज के लिए लाभ प्रद्ध

सिद्ध होगा यो भी अनेक ज्वलन्त समस्याएँ चित्रित होने से छूट गई है– जैसे निरक्षता, बालिका शिक्षा, प्रौद, शिक्षा, परिवारों में वृद्धो का उचित शिक्षा आदि, इन सभी कमियों की पूर्ति होनी आवश्यक है।

सन्दर्भः–

1. डॉ0 पुष्पा बंसल, हिन्दी गद्य का विधा वैविध्य, पृ0 91
2. वही, पृ092
3. डॉ0 जयभगवान गुप्ता, हिन्दी रेडियो नाटकः अधतन अध्यन, पृ0 31
4. डॉ0 हेमराज निर्भय, मौत और धडकन, पृ0 52
5. डॉ0 हेमराज निर्भय, करूणा के प्रतिनिधि, पृ0 23

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त समातन धर्म कालेज,
पलवल

19

मात्रभाषा

डॉ0 कंचन कुमारी

सारांशः–

भाषा केवल विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम नहीं अपितु यह संस्कृति, संस्कार और सभ्यता का ताना–बाना भी है। भाषा हीं हमें एकरूपता प्रदान करती है। हमारे भीतर अपनेपन का बीजारोपण कराती है। जिसके पास भाशा नहीं है, वह मूक है। किसी भी देश की पहचान उस देश में बोली जाने वाली भाषा से हीं होती है। एक देश के नागरिक जब अन्य देशों में जाते हैं, तो वे भाषा के आधार पर ही जाने जाते हैं। हमारे भीतर अपनी भाषा का गौरव होना चाहिए। यह गौरव हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाता है, हमारे व्यक्तित्व को निखारता है और हमारी आंतरिक चेतना को जगाता है। भाशा से हीं हम अपने विचारों को प्रसार देते है, जिससे हमें ख्याति मिलती है। यदि किसी देश की अपनी कोई भाषा नहीं है, तो वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकता। यदि उसकी अपनी एक भाषा है और उस राष्ट्र के नागरिक उस भाषा का सम्मान नहीं करते, उसका प्रयोग नहीं करते, तो भी उस राष्ट्र का गौरव संकट में पड़ सकता है। भाषा माता के दूध के समान होती है। जिस तरह एक नवजात शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए माँ का दूध अत्यंत आवश्यक होता है, ठीक उसी तरह एक राष्ट्र के लिए उसकी अपनी मातृभाषा होना अत्यंत आवश्यक है।

भाषा सर्वोत्तम मानवीय सृजन है। संस्कृति और ज्ञान – विज्ञान की संवाहक है। सभी राष्ट्र अपनी भाषाओं के सम्मान और समृद्धि के लिए सजग है। भारत इसका अपवाद है। हिन्दी भारत के मन का संगीत है। करोड़ों भारतीयों की मातृभाषा है। क्षेत्रीय भाषाओं की सगी बहन है। संविधान में राजभाषा है, बावजूद इसके हिन्दी को उसका उचित सम्मान नहीं मिला। यही याद दिलाने के लिए हर साल 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस का आयोजन होता है। साल में एक दिन हिन्दी का शेष 364 दिन अंग्रेजी का वर्चस्व। अंग्रेजी ग्लोबल है। हिन्दी लोकल है, लेकिन लोकल के लिए वोकल के भाव का अभाव है। धारणा है कि, अंगेजी के अभाव मे उन्नति असंभव है; लेकिन एशिया के 48 देशों की राजभाषा अंग्रेजी नहीं है। अजरवैजान की भाषा अजैरी है। आर्मेनिया की भाषा आर्मेनियन, इजराइल की भाषा हिन्दू, ईरान की फारसी, ओमन, सऊदी अरब, सीरिया, इराक, जार्डन, यमन, बहरीन, कतर, कुवैत आदि की भाषा अरबी है। चीन, जाइवान की मंदासि, कोरिया की कोरियाई, श्रीलंका की सिंहली एवं तमिल, कमेडिया की खमेर, अफगानिस्तान की पश्तो और तुर्की की तुर्की है। दक्षिण अमेरिका के 12 देशों में से 9 की भाषा स्पेनिष और ब्राजील की पूर्तगाली है। इसी तरह यूरोप के 46 देशों में 40 रूस की रूसी, स्वीडन की स्वीडिश ऑस्ट्रिूपा की, जर्मनी की जर्मन, इटली की इटेलियन, ग्रील की ग्रकि फ्रांस की फेंच, स्पेन की स्पेनिष है। सिर्फ ब्रिटेन की भाषा अंग्रेजी है। अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में भी अंग्रेजी मूल भाषा नहीं है। बावजूद इसके अंग्रेजी विश्वभाषा है। मूलभूत प्रश्न है कि अंग्रेजी न अपनाने वाले देशों मे खासकर जापान, जर्मनी, इटली, फ्रांस इजरायल आदि की इतनी तरक्की कैसे हुई ? सभी देश मातृभाषा को वरीयता देते हैं, लेकिन भारत नहीं। गाँधी जी ने लिखा, पृथ्वी पर हिन्दुस्तान हीं एक ऐसा देश है जहाँ माँ–बाप अपने बच्चों को मातृभाषा के बजाय अंगेजी पढ़ाना–लिखाना पसंद करेंगे। संविधान सभा (14 सितंबर 1949) ने हिन्दी को राजभाषा बनाया, लेकिन 15 वर्ष तक अंग्रेजी में राजकाज चलाने का 'परंतुक' भी जोड़ा। अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने समापन भाषा में कहा हमने संविधान में अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषा (हिन्दी) को अपनाया है। एन० जी० आयंगर ने हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव रखा। 15 बरस तक अंगेजी जारी रखने का कारण बताया, हम अंगेजी को एकदम नहीं छोड़ सकते। यद्यपि सरकारी प्रयोजनों के लिए हमने हिन्दी को अभिज्ञात किया, फिर भी हमें मानना चाहिए कि आज वह समुन्नत भाषा नहीं है।

भाषा विज्ञानी मातृभाषा को अभिव्यक्ति की स्वाभाविक भाषा बताते हैं। तब मातृभाषा में शोध अनुसंधान भी सहज क्यों नहीं हो सकते ? नेहरू ने संविधान सभा में कहा हमने अंग्रजी इसलिए स्वीकार की कि वह विजेता की भाषा थी इस कारण नहीं कि महत्वपूर्ण भाषा है।

अंग्रेजी कितनी हीं महत्वपूर्ण क्यों न हो हम उसे सहन नहीं कर सकते। हमें अपनी ही भाषा को अपनाना चाहिए। सेठ गोविन्द दास ने कहा कि हजारों वर्ष से यहाँ एक संस्कृति है। देश में एक भाषा और एक लिपि रखना जरूरी है। इस 15 वर्षों में अंग्रजी की जगह हिन्दी ले आना चाहते हैं या 15 वर्ष बाद भी नहीं, अलगू राय शास्त्री ने कहा कि अंग्रेजी हुकूमत गई, अब भाषा भी भारतीय होनी चाहिए। हम एक राष्ट्र है, हमारी एक भाषा है।

संसार के मानचित्र पर यदि हम दृष्टिपात करें, तो पाएंगे कि अमूमन ऐसे सभी देश जिनकी अपनी भाषाएं विकसित न हो सकी, वे वैश्विक मानचित्र पर पिछड़े हुए हैं। अफ्रीकी महाद्वीप में 40 से भी ज्यादा देशों में उनकी अपनी किसी स्वतंत्र भाषा का विकास नहीं हो सका है। हैरत नहीं कि अफ्रीकी देश विकास में पीछे है। वस्तुतः परतंत्रता एक प्रकार की मानसिकता होती है, जो हमारे अलग–अलग लक्षणों और क्रियाकलापों से अभिव्यक्त होती है। आखिर अंग्रेजी हमारे लिए विवशता की सीमा तक जाकर अपरिहार्य कब और क्यों हो गई?

निज–संस्कृति के गौरव की प्रतिष्ठा करने में यदि कोई सर्वाधिक समुचित माध्यम हो सकता है, तो वह हमारी अपनी भाषा हीं हो सकती है। जापान, चीन और इजरायल जैसे देशों का मानक भी हमारे सामने है। यदि हम जापान में अनुसंधान के क्षेत्र की बात करें तो अलग–अलग भाषाओं के शोधपत्र जापानी भाषा में एक महीने से भी कम अंतराल में अनूदित करा कर वहाँ के विद्वानों को पढ़ने के लिए मुहैया करा दिए जाते हैं। इजराइल की भाषा हिब्रू एक ऐसी भाषा थी, जो संसार के मानचित्र से लुप्तप्राय हो गई थी। आज वह जीवित है, तो उसके प्रति इजरायल की प्रतिबद्धता के कारण। हिब्रू देश की राजभाषा के पद पर सम्मान प्रतिष्ठित है। इजरायल स्वयं में भाषाई एकता और

मातृभाषा प्रेम का एक ज्वलंत उदाहरण है। मातृभाषा किसी भी राष्ट्र के नागरिक का मूल होती है। उससे विलग होना वस्तुतः स्वयं की वास्तिविकता से अनभिज्ञ रह जाना है। बिल्कुल वैसे ही जैसे गमले में लगा बोनसाई वटवृक्ष अपनी वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाता है। जापान जर्मनी, इटली, इजरायल, चीन, रूस आदि देशों की तेज प्रगति इस मिथ्या धारणा को ध्वस्त करती है कि विकास की भाषा अंग्रेजी है। यदि ऐसा होता, तो फिर ये देश भी विकास में भारत से पीछे होते।

शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचार भी यहाँ उल्लेखनीय है कि मातृभाषा से इतर छात्रों पर अंग्रेजी भाषा लादना वास्तव में विद्यार्थी समाज के प्रति एक कपटपूर्ण वृत्ति है। राष्ट्रपिता ने इस बात को भी स्पष्ट रूप से कहा था कि विदेशी माध्यम बच्चों पर अनावश्यक दबाव डालने, रटने और नकल करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के साथ उनकी स्वयं की मौलिकता को भी धीरे–धीरे समाप्त करता जाता है। निश्चित रूप से इसके पीछे उनके समूचे जीवन का अनुभव और उनकी गहरी सोच थी, जो इसी तथ्य की ओर संकेत करती है कि विचार एवं अवधारणा संबंधी क्षमता का कौशल मातृभाषा में एक बालक के अन्दर जिस तरह पनपता है, वह कोई अन्य भाषा कभी नहीं कर सकती।

नेहरू ने अंग्रेजी को विजेता की भाषा बताया। 1947 के बाद हिन्दी भी विजेता की भाषा थी। अंग्रेज जीते, अंग्रेजी लाए, हम स्वाधीनता संग्राम जीते, हिन्दी क्यों नहीं लाए ? स्वाधीनता संग्राम की भाषा हिन्दी थी, पर कांग्रेस अंग्रेजी को वरीयता देती रही। गाँधी जी ने कहा अंग्रेजी ने हिन्दुस्तान के नेताओं के मन में घर बना लिया है। मैं इसे देश और मनुष्यत्व के प्रति अपराध मानता हूँ। स्वभाषा के बिना संस्कृति निष्प्राण होती है। स्वंसस्कृति के अभाव में राष्ट्र अपना अंतस प्राण और तेज खो देते हैं। हिन्दी सृजन, संवाद और सामाजिक पुनर्गठन की भाषा है। हिन्दी केवल भाषा ही नहीं है। यह देश की विविधता को जोड़ती है। उसके पास दुनिया की सर्वोत्तम भाषा संस्कृत का उत्तराधिकार है। हिन्दी में अनेक क्षेत्रीय बोलियो के समन्वय संस्कार भी है। हिन्दी अपने दम पर बढ़ी है। ज्ञान–विज्ञान और समाज विज्ञान के सभी अनुशासन में हिन्दी में उच्च कोटि का सहित है। बाजार उद्यम की भाषा हिन्दी है। हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं का विकास जरूरी है। हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा की प्रतियोगिता नहीं है। हालांकि कभी–कभी तामिल, कन्नड़, जैसी भाषिक क्षेत्रों से हिन्दी विरोध की आवाजे उठती है। ये आवाजे उठाने वाले भूल रहे हैं कि हिन्दी का विरोध सभी भारतीय भाषाओं को कमजोर करता है। अंग्रेजी ने हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं की शक्ति घटाई है। राजभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं की प्रतियोगिता अंग्रेजी से हीं है। प्रत्येक भाषा के विशिष्ट संस्कार होते हैं। अंग्रेजी के साथ देश में अंग्रेजी संस्कार भी आए। अंग्रेजी भारतीय संस्कृति की भाषा नहीं है। इससे सांस्कृतिक क्षति हुई है। हिन्दी, तलित, कन्नड़ आदि भाषाओं में प्रवाहित संस्कार भारतीय ही है। भारतीय भाषाओं के संस्कार राष्ट्रीय एकता बढ़ाते हैं।

प्रधानमंत्री मोदी की मन की बात हिन्दी में प्रसारित होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए उम्मीदें बनी है। सरकार भारतीय भाषाओं में शिक्षण के लिए तत्पर है और रोजगार के अवसर के लिए भी। शिक्षा नीति में मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देने का उल्लेख भी है। सभी क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षण की भी व्यवस्था की जाती है। भाषा शिक्षण की गुणवत्ता बढ़ाने की बात महत्वपूर्ण है, लेकिन भाषा प्रसार उपयोग और राजभाषा के प्रति निष्ठा संवर्धन का काम अकेले सरकार ही नहीं कर सकती। हम भारत के लोगों का स्वयं ही अंग्रेजी की ग्रंथि से मुक्त होने का निश्चय करना होगा। एक भाषा के रूप में अंग्रेजी से कोई बैर नहीं, लेकिन हमारी अपनी मातृभाषा की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। अंग्रेजी श्रेष्ठता की हमारी हीनग्रंथि ने भारी संस्कृतिक क्षति की है। हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 1953 से हम लोग प्रति वर्ष हिन्दी दिवस मनाते आ रहे है। सभी सरकारी कार्यालयों में एक पखवाड़ा के लिए कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। घोषणाएँ की जाती है कि कार्यालय के सभी काम हिन्दी में ही होंगे परन्तु होता ऐसा नहीं है। अधिकतर कार्यालयों मे अंग्रजी में ज्यादा काम होते हैं। स्थिति ऐसी हो गई कि भारत में अंग्रेजी बोलने वाले लोगों की तादात में लागातार वृद्धि होती जा रही है। कंपनियाँ भी नौकरी में अंग्रेजी बोलने वाले लोगों को महत्व देती है। इसे बदलने की जरूरत है। हिन्दी के विद्वानों ने सामाचार पत्र के माध्यम से बताया कि हिन्दी की पाचन शक्ति काफी मजबूत है। इसके संवर्धन के लिए समर्पित होकर काम करने की जरूरत है।

बातचीत में साहित्यकार ने कहा कि एक समय था जब यह जन–जन की भाषा थी। महात्मा गाँधी भी हिन्दी के प्रसार–प्रचार पर जोड़ देते रहे। वैसे आज भी देश में हिन्दी बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है। विश्व में तीसरे स्थान पर हिन्दी बोलने वाले है। इसे और बढ़ाना होगा। हमें ऐसे कानून बनाने होंगे कि कार्यालयों और स्कूल, कॉलेजों में हिन्दी में संवाद और लिखित कार्य को जरूरी बना दिया जाए। तभी हिन्दी को बचाया जा सकता है। बातचीत में कई लोगों ने अपना विचार प्रकट व्यक्त किए। 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने एक पत्र से प्रस्ताव पास किया कि हिन्दी हीं देश की राजभाषा होगी। 1953 से पूरे भारत में प्रति वर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। 42.5 करोड़ के लगभग लोग हिन्दी को अपनी पहली भाषा मानते हैं। एक पखवाड़ा तक सभी सरकारी कार्यालयों व अन्य जगहों पर हिन्दी दिवस से संबंधित कार्यक्रम होते हैं। 1918 में गाँधी जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हिन्दी को राजभाषा बनाने को कहा था। 54.5 करोड़ के लगभग लोग हिन्दी बोलते हैं। अंग्रेजी एवं चीनी भाषा के बाद हिन्दी भाषा बोलने वाले विश्व में सर्वाधिक है। 77% लोग भारत मे हिन्दी लिखते, पढ़ते, बोलते और समझते हैं। 10 हजार रूपये से लेकर दो लाख रूपये तक राजभाषा गौरव पुरस्कार के तहत दिए जाते हैं। 39 पुरस्कार राजभाषा कीर्ति पुरस्कार के तहत समिति, विभाग, मंडल को दिए जाते हैं।

हिन्दी एक भाषा नहीं बल्कि उस विराट सांस्कृति चेतना का नाम है, जिसमें अनगिनत जातियाँ, वर्ग, समुदाय, संस्कार, पंथ, धर्म और यहाँ तक कि पूरा जीवन दर्शन ही बहुविद्य रूपाकारों मे समाहित है। दर्प और आग्रहों से कोसों दूर इस उदार भाषा में भाव है, नेह है, एक दूसरे को समझने–बूझने और उसमें समा जाने या फिर उसे गले लगा लेने की अपरिमित शक्ति भी है।

निष्कर्ष :– देखा जाए तो हिन्दी भारतीय जनमानस के रक्त में प्रवाहमान है। हिन्दी में भारतीय संस्कृति रची बसी है। इसे भारतीयों ने स्वंयमेव माँ का स्थान दिया है। यह वही भाषा है, जिसमें करोड़ों भारतीय चितंन करते हैं, अपने विचार व्यक्त करते हैं, अपनी संस्कृति के गीत गाते है और राष्ट्र के वैभव का स्वर उन्नत करते हैं। हिन्दी भारतीय ज्ञान परंपरा का वाहक भी है। हिन्दी के सामर्थ्यवान बने रहने से हीं देश की शक्ति बढ़ेगी। हिन्दी की गोद में ही भारतीय संस्कृति फल–फूल सकती है। यह भाषा भारत की आत्मा है। इस भाषा ने हीं हम भारतीयों को वैचारिक रूप से प्राण्वान किया गया है। वास्तव में हिन्दी हीं हिन्दुस्तान का वास्विक चित्र खींचने में सक्षम है।

संदर्भ सूची

- उदयनारायण दीक्षित, दैनिक जागरण–14.09.2020 (पृ०स० 10)
- शीलधर सिंह, अभयारण्य, प्रगतिशील प्रकाशन (पृ० सं० 305)

कंचन कुमारी

मकान संख्या–डी०/82,रोड नं०–01,

अशोक नगर,राँची–834002 (झारखण्ड)

दूरभाष न०–7004600617/9199484945

20

भारत में दलितों की आर्थिक स्थिति एवं विकास में डॉ० अम्बेडकर की अहम योगदान

डॉ0 मिथलेश कुमार

सारांश

स्वतंत्र मजदूर पार्टी के घोषणा–पत्र में डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचार अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त हुए हैं। यह घोषणा–पत्र कई हिस्सों में बंटा हुआ है।

आर्थिक नीति के अन्तर्गत वे यह घोषणा करते हैं कि

(I) कृषि को एक व्यवसाय के रूप में देखा जाये। इस व्यवसाय को आर्थिक सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए भू–विकास बैंक, को–ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटीज, मार्केटिंग सोसायटीज की स्थापना की जाये।

(ii) कृषि व्यवसाय आज (1936) घाटे में है, क्योंकि जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े किये गये हैं, कृषि पर बहुत बड़ी जनसंख्या निर्भर है। इस जनसंख्या को दूसरे व्यवसायों की ओर मोड़ना जरूरी है।

(iii) उद्योग व्यवसाय की शिक्षा देने वाले शिक्षा–केन्द्र शुरू करना जरूरी है।

(iv) जनहित की दृष्टि से देश के बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होना जरूरी है।

(v) जमीन जोतनेवाले की ही होनी चाहिए।

(vi) मजदूरों का शोषण कम कर उनके वेतन पर सरकारी नियंत्रण चाहिए। उन्हें उनकी छुट्टियों और काम की अवधि, सवेतन छुट्टी, बोनस, पेंशन आदि देने की कानूनी व्यवस्था जरूरी है।

व्यवसायिक पिछड़ापन

जाति पर आधारित समाज व्यवस्था में व्यवसाय जाति के आधार पर निश्चित होता है। व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है उस जाति का व्यवसाय ही वह अपना सकता है। कुछ इसी वजह से जाति व्यवस्था को संस्थागत शोषण का चरमरूप कहा जाता है। परम्परात्मक रूप से अपने भूस्वामी की सेवा तथा निम्न व गन्दे कार्यों का सम्पादन ही दलितों की नियति में रहा है। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त वृत्ति स्वातंत्रय के अधिकार की वजह से व्यवसायों का जातिगत आधार अर्थात व्यवसाय सम्बन्धी जातिगत प्रतिबन्ध समाप्त हो गया है तथापि लाभकारी व्यवसाय अभी हाल तक द्विजों की झोली में थे।

दलित जातियों का बहुसंख्य भाग (52 प्रतिशत) आज भी आजीविका के लिए कृषि मजदूरी पर निर्भर करता है। शेष में से अट्ठाईस प्रतिशत कृषक प्राय' छोटे व सीमांत कृषक हैं। परम्परात्मक रूप से दलित (अर्थात अनुसूचित जातियों के लोग) चमड़े का काम, बुनकरी, मछली पकड़ना, टोकरी, चटाई व रस्सी बनाना तथा कपड़े की धुलाई और नाली, कुची की सफाई जैसे गन्दे, निम्न और अलाभकारी कार्य करते रहे हैं। आज भी इन जातियों के लोग आजीविका के लिए कमोवेश परम्परात्मक व्यवसायों पर ही निर्भर करते हैं। अनुसूचित जातियों का बहुत कम भाग ही सफेदपोश व्यवसाय अपना सका है। केन्द्रीय सेवा में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व में 1971 से 1991 के दौरान प्रथम श्रेणी में 2.58 से 9.09 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में 4.06 से 11.82 प्रतिशत, तृतीय श्रेणी में 9.59 से 15.85 प्रतिशत तथा चतुर्थ श्रेणी में 18.37 से 27.24 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

बंधुआ मजदूर

बंधुआ मजदूर ऋण के बदले में आदमी के श्रम को गिरवी रखने की प्रथा है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आयुक्त की इक्कीसवीं रिपोर्ट (1974 : 240) के अनुसार एक व्यक्ति किसी ऋण के बदले में अपने को अथवा कभी–कभी अपने परिवार के किसी सदस्य को ऋणदाता को गिरवी रख देता है। गिरवीकर्त्ता अथवा उसके नामिक व्यक्ति को केवल ऋण चुका देने पर ही छोड़ा जाता है। जब तक ऋण नहीं चुकाया जाता तब तक स्वयं उस आदमी को अथवा उसके परिवार के किसी सदस्य को दैनिक भोजन के बदले में ऋण दाता का काम करना पड़ता हे। चूँकि बंधक पर काम करने वाले व्यक्ति को कोई पैसा नहीं मिलता इसलिए उसे अपनी मुक्ति के लिए आवश्यक धन जुटाने हेतु परिवार के किसी अन्य सदस्य पर निर्भर रहना पड़ता है। यह निःसंदेह बहुत कठिन होता है। यह सम्बन्ध (संविदा) कभी–कभी महीनों, कभी–कभी वर्षों, यदा–कदा सारी जिन्दगी चलता रहता है और विरल रूप में पुरुष उत्तराधिकारी तक समाप्त नहीं होता।

दलितों से बेगार लेने की प्रथा भी चलन में थी। बेगार प्रथा में श्रमिक को अपने भू–स्वामी के यहाँ कतिपय अंशकालिक श्रम के लिए बिना मजदूरी के काम करना पड़ता था। जमींदारी प्रथा के समय आमतौर पर आसामी के समय–असमय जमींदार की कतिपय सेवाएँ करनी पड़ती थी। जिनका उसे अलग से कोई पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता था। दलितों से जबरन काम कराने का चलन अभी भी गाँवों में है। भू–स्वामी, दलितों से कम मजदूरी पर कठिन मेहनत उनकी इच्छा के विरूद्ध और जोर जबरदस्ती से करते हैं। सामान्यतः हरिजन एवं आदिवासियों की गरीबी से भू–स्वामी, महाजन, व्यापारी तथा ठेकेदार आदि दो प्रकार से नाजायज फायदा उठाते हैं। एक तो वे इन्हें रूपए या जीवन की आवश्यक वस्तुएँ कर्ज स्वरूप ऊँची ब्याज की दरों पर देते हैं। दूसरे ऋण देने का अहसास जता कर ये इनसे बेगार या जबरन काम भी लेते हैं।

संविधान की धारा 23 के अनुसार सभी प्रकार के बंधुआ या जबरन श्रमके निषिद्ध कर दिया गया है। बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत बन्धुआ श्रम प्रथा की कठोर निन्दा की गई है। बन्धक श्रम सम्बन्धी संविदा को बंधुआ श्रम उन्मूलन अधिनियम 1976 के तहत गैर कानूनी घोषित कर दिया गया है। राज्य सरकारों ने भी इस दूषित पद्धति के विरूद्ध कानून बनाए हैं। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो बंधुआ श्रमिक रखता है तीन वर्श की कैद और अथवा एक हजार रूपए जुर्माने किए जाने का प्रावधान है (रिपोर्ट 1976 : 116)। इस प्रकार कानूनी दृष्टि से और जवाबदारी के तौर पर

अधिकांश राज्यों ने करीब 10 वर्ष पूर्व ही सरकारी तौर पर घोषित कर दिया है कि उनके यहाँ से बंधुआ मजदूरी की प्रथा समाप्त हो गई है। वैसे पहले की तुलना में हम कह सकते हैं कि आज यह प्रथा बहुत कमजोर या मृतप्राय हो गई है। फिर भी यह पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है। विशेष रूरप से दूर दराज या भीतरी इलाकों में आदमी द्वारा आदमी को गिरवी रखने की यह कुप्रथा किसी न किसी रूप में देश में आज भी विद्यमान है। जून 1978 में देश के 11 राज्यों में एक सर्वेक्षण किया गया जिनमें 1.04 लाख बंधुआ मजदूर पहचाने गए। जिनके पुनर्वास के लिए वर्श 1978–79 के दौरान एक करोड़ रूपए स्वीकृत किए गए।

ऋण ग्रस्तता

मजदूरी की निम्नदर और निर्धनता का जीवन बिताने के कारण अनुसूचित जाति के लोगों का ऋण ग्रस्त होना स्वाभाविक है। घरेलु खर्च तथा विवाह, मृत्यु व अन्य सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों को पूरा करने के लिए इन्हें साहूकारों से ऋण लेना पड़ता है। अनुसूचित जाति और जनजाति के आयुक्त की इक्कीसवीं रिपोर्ट (1974 : 17, 237–39) के अनुसार अनुसूचित जातियों के आधे से अधिक परिवार ऋण ग्रस्त हैं। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आयुक्त की तेईसवीं (1976 : 74–75) रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण इलाकों में इन जातियों के छोटे सीमांत कृषकों में 75 प्रतिशत से 70 प्रतिशत परिवार कर्ज में डूबे हुए हैं।

आर्थिक विकास

सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति की कितनी ही ऊँची–ऊँची बातें की जाए लेकिन जब तक दलितों की आर्थिक और भौतिक स्थिति में सुधार नहीं लाया जाता उनकी दशा में कोई फर्क नहीं आ सकता। इस तथ्य में गांधी, अम्बेडकर तथा अन्य राजनेता और योजनाकार अच्छी तरह अवगत थे, बहुत कुछ इसलिए शासन के बीस सूत्रीय कार्यक्रम (बिन्दु 7) और विशेष रूप से छठी योजना के उद्देश्य के निर्धारण में अनुसूचित जातियों/जनजातियों के आर्थिक विकास कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी गई है। वास्तव में आर्थिक पिछड़ेपन का घनिश्ट सम्बन्ध इन जातियों की सामाजिक निर्योग्यताओं और इन पर होने वाले अत्याचारों से है। क्योंकि यह देखा गया है कि इनके ऊपर अत्याचार प्रायः तब अधिक होता है जब ये अपने हक जैसे उचित मजदूरी अथवा आवंटित जमीन पर कब्जा दिए जाने की मांग करते हैं।

छठी योजना प्रारूप में इस बात को बड़े स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया कि हालांकि पिछली पाँचों योजनाओं में अनुसूचित जातियों के लोगों के सामाजिकार्थिक स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया फिर भी गत दिन दशकों में हुए विकास में सामाजिकार्थिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो सकता है। यह महसूस किया गया कि विगत योजनाओं में इन वर्गों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के विशेष कार्यक्रमों को लागू करने तथा आवश्यक संवैधानिक व प्रशासनिक प्रावधानों के बावजूद इन जातियों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार न हो पाने का मुख्य कारण इन्हें अपेक्षित आर्थिक सहायता का प्राप्त न हो पाना है। इसलिए छठी योजना (1980–85) में ऐसे कार्यक्रमों को स्थान दिया गया है जिसमें योजना का लाभ इन जातियों को सही समय पर मिल सके। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य निम्न है–

(I) छठी योजनाकाल (1985–85) में कम से कम 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति के परिवारों को इस लायक बनाया जाएगा कि वे गरीबी की रेखा के ऊपर उठ सके।

(ii) इन जातियों का शैक्षिक पिछड़ापन दूर करना।

(iii) इनके रहने व काम करने की दशाओं में सुधार करना।

(iv) इनके रहने व काम करने की दशाओं में सुधार करना।

(v) इनकी महिलाओं व बच्चों के विकास पर विशेष ध्यान देना।

उपर्युक्त लक्ष्यों को मूर्त रूप देने के लिए वर्तमान योजना में निम्न व्यवस्थाओं का प्रावधान किया गया है –

(I) राज्य व केन्द्र स्तर पर विशेष कम्पोनेन्ट योजनाओं का निर्माण।

(ii) राज्यों की इन योजनाओं के लिए केन्द्र द्वारा विशेष केन्द्रीय सहायता और

(iii) राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगमों की स्थापना और उसके लिए केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता।

अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास के लिए आज कई योजनाएँ कार्य कर रही है। इनमें कुछ योजनाएँ अनुसूचित जातियों सहित सभी वर्गों के गरीबों के आर्थिक विकास के लिए है। जबकि कुछ (विशेष रूप से उपरोक्त तीन) केवल अनुसूचित जातियों के निर्धन लोगों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करती है।

बस्ती उन्मुख योजना

इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जातियों की पुरानी व नई बस्तियों को आवश्यक सुविधाएँ एवं सेवायें जैसे – पीने का पानी, नाली, स्वास्थ्य सेवा, मकान के लिए भूमि, बिजली, शिक्षा तथा व्यवसायिक मार्ग निर्देशन आदि उपलब्ध कराना है।

देश के उन्नीस राज्यों और तीन केन्द्र शासित प्रदेशों में जिनमें अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की उल्लेखनीय संख्या है, विशेश कम्पोनेन्ट योजना क्रियान्वित की गई है। स्पष्ट है कि इस प्रयोजना की परिव्यय राशि और लाभान्वित परिवारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है।

वस्तुतः विभिन्न योजनाओं में सामान्यतया कुल योजना परिव्यय का एक से दो प्रतिशत भाग समाज के कमजोर तबकों के विकास कार्यक्रमों के लिये आवंटित किया जाता रहा है। आठवीं योजना में विकास की ऐसी रणनीति अपनाये जाने पर जोर दिया गया है जो अनुसूचित जातियों को अपनी परंपरागत निर्योग्यताओं से मुक्ति पाने तथा सामाजिक न्याय हासिल करने के योग्य बना सके। इस योजना काल में विशेष कम्पोनेन्ट योजनान्तर्गत 78000 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया।

अनुसूचित जातियों के परिवारों के आर्थिक विकास योजनाओं पर परिचय

वर्ष	राज्य सरकारों का अंशदान (लाख रूपयों में)	भारत सरकार द्वारा प्रदत्त राशि (लाख रूपयों में)
1978 – 79	710.55	50.00
1979 – 80	703.16	1224.00
1980 – 81	1403.00	1300.00
1981 – 82	1367.56	1332.87
1983 – 83	---	1350.87

निगम का मुख्य कार्य, शासन की विभिन्न योजनाओं से इन जातियों के आर्थिक विकास के लिए जो कार्य आरम्भ किए गए हैं उन्हें गति देना है। इसके साथ ही अनुसूचित जातियों के गरीब परिवारों की आय बढ़ाने वाले उपकरणों व संसाधनों में पूँजी निवेश के लिए आवश्यक ऋण देना है। सामान्यतः निगम 12000/– रूपए तक की योजनाओं को ही ले सकता है।

निगम से अनुसूचित जातियों के गरीबी की रेखा के नीचे वाले परिवारों को लाभ दिया जाता है। इस श्रेणी में जैसा पहले कहा गया है कि वे परिवार आते हैं जिनकी वार्शिक आय 3500/– रूपए (ग्रामीण) तथा 4300/– (शहरी) तक होते हैं। कृषि मजदूरों, सीमांत किसानों, साझे खेतिहरों तथा बटाईदारों को बिना आय प्रमाण पत्र के निगम से सहायता प्राप्त करने का पात्र माना गया है।

विशेष केन्द्रीय सहायता के अंतर्गत 1980–85 की अवधि में अनुसूचित जाति विकास निगम के माध्यम से 86.57 लाख अनुसूचित जाति परिवार लाभान्वित हुए।

अनुसूचित जातियों के विकास सम्बन्धी सम्पूर्ण नोडल मानिटरिंग के वास्ते गृह मन्त्रालय के अनुसूचित जाति तथा पिछड़ी जाति विकास प्रभाग में हाल में एक संयुक्त निर्देशक की देख–रेख में एक छोटे से मानिटरिंग सेल की मंजूरी की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भूतकाल में जो कठोर शास्त्रीय निर्योग्यतायें दलितों पर थोपी गई थीं वे अब बहुत कुछ किस्से कहानी या किताबी बातों के रूप में रह गई हैं। फिर भी दलितों की सामाजिकार्थिक स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। दलितों की गिरी हुई सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का कारण जाति व्यवस्था है। जाति व्यवस्था के बावत दो तर्क दिए जा सकते हैं। एक तो यह कि जाति व्यवस्था आर्थिक शोषण का विषम यन्त्र है जिसमें निम्न जातियों को साधारण पारिश्रमिक पर उच्च जातियों की सेवा तथा निम्नतर या बहिष्कृत जातियों को अन्य जातियों की पतित सेवा करने के लिए बाध्य किया जाता है। धार्मिक मान्यताएँ एवं शास्त्रीय सिद्धांत तो मात्र इस आर्थिक शोषण को सामाजिक एवं वैचारिक आधार प्रदान करने के लिये बने हैं। दूसरा तर्क यह दिया जा सकता है कि जाति व्यवस्था एक धर्मिक घटना है जो कालान्तर में सामाजिकार्थिक शोषण का साधन बन गई। उपरोक्त दोनों में से हम चाहे कोई भी दृष्टिकोण अपनाएँ किन्तु इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता, आर्थिक प्रभुत्व और शोषण के शक्तिशाली उपकरण हैं।

निष्कर्षः–दलित समस्या का वास्तविक समाधान है समाज से दलित और गैर दलित के भेदभाव का पूर्णतः समाप्त किया जाना। इसके लिए गैर–दलितों को नीचे गिराने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अधिक सुरक्षित उपाय है गैर दलितों को बिना छुए हुए दलितों को ऊपर उठाना। इसके लिए एक तरफ तो दलितों की आर्थिक उन्नति के लिए क्रांतिकारी कार्यक्रमों को लागू करना होगा और दूसरी तरफ जाति संरचना एवं उसकी प्रेरणास्रोत परम्परात्मक हिन्दू–सामाजिक –वैचारिकी (काउन्टर सोशल आइडियोलाजी) एवं जातिविहीन संरचना की स्थापना करनी होगी। स्वातन्त्रोत्तर भारत में नए संविधान के लागू होने तथा योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों की शुरूआत से उक्त दोनों ही कार्यों का श्रीगणेश तो हो गया है किन्तु गत साढ़े तीन (यहाँ तक कि पाँच) दशकों से बात कुछ बनती नहीं दिखती।

संदर्भ

1. रजक, डॉ0 संजय कुमार, **डॉ0 अम्बेडकर : जीवन और दर्शन**, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ0 111
2. सिंह, डॉ0 रामगोपाल; **भारतीय दलित : समस्याएँ और समाधान**, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (मध्य प्रदेश), द्वितीय संस्करण 1998, पृ0 136, 137, 138, 139
3. सिंह, डॉ0 रामगोपाल; **दलित समाज : समस्याएँ एवं समाधान**, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ0 143–145
4. रिपोर्ट, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, 1983, पृ0 147 अः 47
5. रिपोर्ट, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, 1982, अः 74

डॉ० मिथलेश कुमार
अर्थशास्त्र
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

21

मानव सशक्तिकरण में स्वास्थ्य एवं पोषण की प्रासंगिकता

मंजू बाला

सारांशः–

किसी भी देश की विकास योजना में मानव विकास मुख्य आधार होता है। मानव विकास को केंद्र में रखकर ही विकास योजनायें क्रियांन्वित की जाती हैं। यह अति महत्वपूर्ण व आवश्यक पहलू है कि मानव सशक्तिकरण से ही वास्तविक विकास संभव है। मानव सशक्तिकरण स्वयं के विकास तथा सामाजिक समूह के विकास से सम्बन्धित है, जिसका वह सदस्य है। शिक्षा, व्यवसाय, स्वास्थ्य, एवं संसाधनों के उपयोग के प्रति जिम्मेदारियों में वृद्धि करके लोगों को समान अवसर उपलब्ध कराने से ही मानव सशक्तिकरण प्राप्त होता है। प्रचलित युक्ति है कि, ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। इसलिए सर्वप्रथम मानव शरीर का स्वस्थ होना अति आवश्यक है और उसके लिए उचित पोषण व स्वास्थ्य सुविधायें आवश्यक हैं। वर्ष 2017 में वैश्विक भूख सूचकांक में 119 देशों की सूची में भारत का 100 वां स्थान था। कुपोषण के मामले में भारत की स्थिति पिछले सालों की तुलना में काफी खराब हुई है। वर्ष 2016 में 118 देंशों की सूची में भारत 97 वें स्थान पर था। ऐसा नहीं है कि भूख और कुपोषण को मिटाने की गम्भीर कोशिशें हमारे यहां नहीं हुई हैं। लेकिन अब भी हमारे यहां 19 करोड़ लोग या 14.5 प्रतिशत आबादी भूखी या कुपोषित है। आखिर कुपोषण इतना महत्वूर्ण क्यों ? इसका संक्षिप्त उत्तर है कि यह सिर्फ किसी व्यक्ति या परिवार को ही हानि नहीं पहुॅचाता, बल्कि देश को भी हानि पहुॅचाता है। भारत एक युवा देश है, जहॉ दुनियां के सबसे ज्यादा बच्चें हैं। जो बच्चें शुरू से कुपोषण के शिकार होते हैं, वे बच्चे सीखने की क्षमता से गम्भीर रूप से वंचित हो जाते हैं। आप स्कूलों का निर्माण कर सकते हैं, लेकिन सिर्फ स्कूल की इमारतें ही युवायों को शिक्षित नहीं कर पायेंगी। अगर शुरूआती उम्र में बच्चों को पौष्टिक आहार नहीं मिला, तो यह बच्चों के सीखने की क्षमता और स्कूली प्रदर्शन पर प्रभाव डालता है। पेट भरना उचित पोशण से बिल्कुल अलग बात है। हमारे देश की कई गर्भवती महिलाओं को यह भी नहीं पता होता है, कि उचित पोषण के अभाव में कम वजन के बच्चे पैदा हाने की संभावना ज्यादा होती है।

ऐसी परिस्थितियों में जन्म लेने बाले बच्चे बेहद संवेदनशील व कमजोर हाते हैं। इसके अतिरिक्त यदि स्तनपान कराने वाली मातायें अल्प पोषण का शिकार होती हैं, तो वह अपने बच्चे को भी खतरे में डालती हैं। एक बच्चे का मस्तिष्क विकास, संज्ञानात्मक क्षमता और शारीरिक विकास काफी हद तक पोषण पर निर्भर करता है। जो बच्चे कुपोषित वयस्क के रूप में विकसित होते हैं, तो वह बेहतर पोषण वाले व्यक्ति की तुलना में कम उत्पादक होते है। इसलिए कह सकते हैं कि मानव सशक्तिकरण में पोषण और स्वास्थ्य महत्वपूर्ण पहलू है।

प्रस्तावना–किसी भी देश की विकास योजना में मानव विकास का स्थान प्रथम रखा जाता है। मानव विकास को केन्द्रविन्दु मानकर ही विकास की योजनायें संचालित की जाती हैं। वास्तविकता यही है कि किसी भी देश का विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि मानव विकास को प्राथमिकता न दी जाये। वर्तमान समय में मानव सशक्तिकरण के लिए राज्य व केन्द्र सरकारें भरसक प्रयास कर रही हैं। मानव विकास के लिए कई योजनायें चलाई जा रही हैं। प्रत्येक वर्श 16 अक्टूवर को विश्व खाद्य दिवस मनाया जाता है। वर्श 2017 में संयुक्त राष्ट् एवं खाद्य सुरक्षा का नारा था–'प्रवासियों का भविष्य बदलें, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास में निवेश करें।'जबकि इस वर्ष 2020 में 16 अक्टूवर विश्व खाद्य दिवस के अवसर पर संयुक्त राष्ट् का संदेश है–बड़ें,पोषण करें और साथ रहें। कोरोना वायरस के माहौल में पूरी दुनियां को समझ आ गया कि स्वस्थ रहने के लिए भोजन कितनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। खाद्य सुरक्षा हासिल करने के लिए कृषि उत्पादन महत्वपूर्ण है। करीब 99 फीसदी खाद्य की आपूर्ति कृषि से होती है। अनुमान है कि 2050 तक भारत की 50 फीसदी से ज्यादा आबादी शहरी क्षेत्रों में निवास करेगी। वैश्विक स्तर पर तीन देश चीन, भारत और नाइजीरिया की आबादी में 2050 तक 90 करोड़ की बड़ोतरी होगी। चूॅकि भारत में मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवास होता है, इसलिए भविष्य में खाद्य सुरक्षा सुश्चित करने के लिए शहरी क्षेत्रों के विस्तार के तरीकों को प्रबन्धित करना होगा। भारत में भूख की समस्या बहुत गम्भीर है। भारत की आर्थिक प्रगति के बावजूद लाखों भारतीय (जिनमें बच्चें भी शामिल हैं) भूखे पेट सोते हैं। भारत एक युवा देश है, जहॉ दुनियां के सबसे ज्यादा बच्चें हैं। जो बच्चें शुरू से कुपोषण का शिकार होते हैं, वे सीखने की क्षमता से गम्भीर रूप से वंचित होते हैं। आप विद्यालयों का निर्माण कर सकते हैं, लेकिन सिर्फ विद्यालयी इमारतें ही युवायों को शिक्षित नहीं कर सकती हैं।

अगर प्रारम्भिक उम्र में बच्चों को पौष्टिक आहार नहीं मिला, जो बच्चों के सीखने की क्षमता और विद्यालयी प्रदर्शन पर प्रभाव डालता है। वाशिंगटन में स्थित अर्न्तराष्ट्रीय खाद्य नीती अनुसंधान संस्थान (आईएफसीआरआई) की रिपोर्ट के मुताविक पॉच वर्ष से कम उम्र के 20 फीसदी से ज्यादा भारतीय बच्चों का वजन उनकी लम्बाई के अनुपात में कम है और एक तिहाई से ज्यादा बच्चें उम्र के हिसाब से बौने कद के हैं। इसमें हैरान करने वाली कोई बात नहीं है।ैएक के बाद एक हुए आधिकारिक सर्वे में यह बात रेखांकित की गई है कि हमारे देश में कुपोषित बच्चों का अनुपात काफी ज्यादा है। अल्पपोशण एक पीढ़ीगत घटना भी बन जाती है। वास्तव में यदि देखा जाये ंतो हमारे भारतवर्ष में बच्चों के कुपोषण का एक मुख्य कारण यह है कि अक्कसर उन बच्चों की मताऐं अल्पपोषण का शिकार होती हैं। भारत में 5 में से एक महिला का वजन कम होता है। जो महिलाऐं अल्पपोषण की अवस्था में गर्भधारण करती हैं उनमें कम वजन के शिशुओं को जन्म देने का जोखिम अधिक रहता है। जन्म के समय शिशु का कम वजन, ढाई किलो या इससे कम वजन के नवजातों में कुपोषण, संक्रमण, बौनापन और वयस्क जीवन में स्थाई गंभीर बीमारियों का

खतरा अधिक रहता है। भारतीय समाज में इतने सख्त कानून होने के बाद भी बाल विवाह होते हैं। कम आयु में विवाह या कम पढ़ी–लिखी महिलायें अपने परिवार में निर्णय लेने में सक्षम नहीं होती हैं और अपने बच्चों को पर्याप्त भेजन देने में असमर्थ होती है। भले ही घर में पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो फिर भी पारम्परिक परिवारों में महिलाऐं सबके खाने के बाद ही खाना खाती हैं। यहॉ ध्यान देने वाली बात है कि राज्यों और जिलों में बड़ी संख्या में ऐसी महिलाऐं हैं, जो अशिक्षित हैं और उनका विवाह बहुत कम उम्र में हुआ है जिसके कारण भी बहुत से बच्चें कुपोषित हो जाते हैं। वेशक, अल्पपौषण के पीछे भोजन ही एकमात्र कारण नहीं है। स्वच्छता भी बहुत मायने रखती है। उचित स्वच्छता का अभाव संक्रामक रोगों के प्रसार को बढ़ाता है। बच्चे संक्रामक बीमारियों के आसानी से शिकार हो जाते हैं, कभी–कभी डायरिया (दस्त) से पीढ़ित होने के कारण पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता घट जाती है, परिणामस्वरूप वे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि कुपोषण आाखिर इतना महत्वपूर्ण क्यों है ? इसका संक्षिप्त उत्तर है कि यह केवल किसी व्यक्ति या परिवार को हानि नहीं पहुॅचाता, बल्कि देश को भी हानि पहुॅचाता है। इसलिए देखें तो समझ आ जायेगा कि सफल होने के लिए मानव पूॅजी में निवेश करना अति आवश्यक है। उसके बगैर कोई भी देश वास्तविक और दीर्घकालिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है।

कुपोषण के कारण–

(1) गरीबी– गरीबी कुपोषण का प्रमुख कारण है। गरीब परिवार में मां व बच्चों को उचित पोषण के अभाव में कम वजन व खून की कमी जैसी गम्भीर बीमीरयों का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी असुरक्षित प्रसव जच्चा–बच्चा की मृत्यु का कारण भी बन जाता है।

(2) अशिक्षा– अशिक्षा या जागरूकता की कमी होने से कुपोषण हो जाता है। संतुलित भोजन की जानकारी के अभाव में अल्पपोषण गृहण करने से आवश्यक पोषक तत्वों से वंचित रहने की दशा कुपोषण के लिए उततरदायी हो जाती है।

(3) रूढ़िवादिता– हमारे भारतीय परम्परागत परिवारों में आज भी महिलाऐं ये मानती हैं कि घर के मुखिया या कमाने वाले पुरूष सदस्यों को ही अच्छे खाने की अधिक आवश्यकता होती है। महिलाऐं चूॅकि घर पर ही रहकर घर के काम ही करती हैं, इसीलिए उनकी अपने स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता भी कुपोषण का एक कारण है।

(4) लिंगभेद– भारतीय समाज में लिंगभेद एक ऐसी कुप्रथा है जिसको समाज में प्रत्येक स्तर पर देखा जा सकता है। यह भी विडम्वना कि इस प्रथा से सबसे ज्यादा स्त्रियां ही पीढ़ित हैं और परिवारों में इसको बढ़ावा भी स्त्रियां ही करती हैं। शुरू से ही परिवारों में लड़कियों को उचित पोषण नहीं दिया जात है। इसी कारण आगे चलकर खराब स्वास्थ्य का कारण बनता है। महिलाऐं व लड़कियां सबसे ज्यादा रक्ताल्पता व कम वजन की समस्या से ग्रसित देखी जा सकती हैं।

(5) स्वच्छता का अभाव– कुपोषण का कारण केवल अल्पपोषण ही नहीं होता है। कभी–कभी साफ–सफाई का ध्यान न रखने के कारण भी संक्रामक बीमारियों के कारण दस्त या डायरिया पोषक तत्वों को गृहण करने की क्षमता के कमजोर होने से भी कुपोषण हो जाता है।

(6) समुचित टीकाकरण का अभाव– राज्य सरकारें कुपोषण को जड़ से खत्म करने के भरसक प्रयास कर रही हैं इसके लिए निःशुल्क गम्भीर बीमारियों का टीकाकरण कराया जा रहा है। किन्तु जागरूकता या किसी अन्य कारणों के कारण यदि बच्चों का समय पर टीकाकरण नहीं हो पाता तो वह बीमारियों के कारण कुपोषित हो जाते हैं।

मानव सशक्तिकरण में पोषण का महत्व–

मानव सशक्तिकरण में पोषण की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। मानव विकास को बिना उचित पोषण के सम्भव नहीं किया जा सकता है। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में से पोषण सबसे अधिक आवश्यक है। मानव पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, टीकाकरण, स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता आादि को ध्यान में रखकर ही मानव सशक्तिकरण के लिए योंजनायें बनाईं जाती हैं। वास्तव में पेट भरना उचित पोषण से बिल्कुल अलग बात है। हमारे देश की कई गर्भवती महिलाओं को यह जानकारी ही नहीं होती कि उचित पोषण के अभाव में कम वजन के बच्चे पैदा होने की संभावना अधिक रहती है जो बेहद चिंताजनक है। स्तनपान कराने वाली माताऐं अगर अल्पपोषण की शिकार होती हैं, तो वह अपने बच्चे को खतरे में डालती हैं। एक बच्चे का मष्तिस्क विकास, संज्ञानात्मक क्षमता और शारीरिक विकास काफी हद तक पोषण पर निर्भर करता है। ऐसे बच्चे कुपोषित वयस्क के रूप में विकसित होते हैं तो वह पोषण वाले व्यक्ति की तुलना में कम उत्पादक होते हैं। हमारे देश का भविष्य इन बच्चों में ही निहित है यदि ये बच्चे कुपोषित होंगें तो देश की उन्नति सम्भव कैसे हो सकती है ? मानव सशक्तिकरण से देश का सशक्तिकरण संभव है जबकि मानव सशक्तिकरण बिना पोषण संभव नहीं है। इसलिए मानव पोषण का महत्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

मानव पोशण के लिए योंजनायें–

(1) आंगनबाड़ी– आंगनबाड़ी का अर्थ है 'आंगन आश्रय'। आंगनबाड़ी भारत में मां और बच्चों की देखभाल के केन्द्र हैं। बच्चों के भूख और कुपोषण से निबटने के लिए एकीकृत बाल विकास सेवा के तहत 1975 में इन्हें भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ किया गया था। आंगनबाड़ी केन्द्र भारतीय गॉवो में बुनियादी स्वास्थ्य देखभाल गतिविधियों में सहयोगी भूमिका निभाते हैं। गर्भनिरोधक परामर्श और पोषण आपूर्ति, शिक्षा के साथ ही पूर्व विद्यालयी गतिविधियों को सम्पन्न कराते हैं।

(2) दोपहर भोजन योजना (मिड डे मील योजना)– इस योजना की शरूआत 15 अगस्त 1995 में की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य नामांकन एवं उपस्थिति बढ़ाने, उन्हें बनाये रखने के साथ–साथ बच्चों के बीच पोषण स्तर सुधारने से सम्बन्धित है।

(3) अन्त्योदय अन्न योजना– अन्त्योदय अन्न योजना की शुरूआत दिसम्वर 2000 में की गई थी। इसमें गरीबी रेखा से नीचे निवास करने वाले परिवारों को 2रू. प्रति किलो गेहूॅ और 3रू. प्रति किलो चावल उपलब्ध कराया जाता है।

(4) प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना– प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के द्वारा संचालित किया जाता है। इस योजना का शुभारम्भ 2013 में हुआ था। इस योजना के तहत गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को 6000रू. की आर्थिक सहायता राशि सीधे उनके खाते में जाती है।

(5) अन्न योजना– 26 मार्च, 2020 को वित मंत्री निर्मला सीतारमण ने प्रधानमंत्री गरीब कल्याण 'अन्न योजना ' लॉच की। यह योजना देश के लोगों के लिए कोविड–19 और इसके प्रभावों से लड़ने के लिए एक आर्थिक पैकेज है।

निष्कर्ष– इस वर्ष संयुत राष्ट्र का विश्व खाद्य दिवस पर संदेश है – बढ़ें, पोषण करें और साथ रहें। कोरोना वायरस के माहौल में दुनियां को समझ आया कि हमें एक ऐसा तंत्र बनाना होगा, जो न केवल कृषि को संकट से निकाले बल्कि खाद्य तंत्र को भी उस दिशा में ले चलें, जहॉ सबके लिए पोषण व भोजन का प्रबन्ध हो सके। किसानों की आय बढ़ाना जरूरी है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। इसके लिए दो चीजे जरूरी हैं। एक तो किसानों की आय बढ़ाने की जरूरत है और दूसरी, कृषि–निवेश बढ़ाने की जरूरत है। अगर ये दोनों कार्य कियें जायें तो, निश्चित रूप से 'सबका साथ सबका विकास' के दरवाजें खुल जायेंगें। भूख के उपचार के बारे में पूरी दुनियां सोंच रही है, अब आवश्यक रूप से जरूरतमंदों को बुनियादी स्तर पर मजबूत करने की आवश्यकता है।

आज हाशियें पर खड़े लोगों का हाथ थामना जरूरी है। दुनियां में अनाज की कोई कमी नहीं है। अगर आज दुनियां में 7.5 अरब लोग रहते हैं, तो करीब 14 अरब लोगों के लिए भोजन उपलब्ध है। यह अलग बात है कि 30 से 40 प्रतिशत के बीच भोजन हर साल बर्बाद हो जाता है। भूख की समस्या को ध्यान में रखते हुए हमारे देश को ज्यादा सजग होने की आवश्यकता है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2020 के अनुसार दक्षिण एशिया के जितने भी देश हैं, वे भारत से काफी अच्छी स्थिति में हैं। विश्व भूख सूचकांक में भारत का 119 देशों में 102 वां स्थान दर्शाता है कि भारत को अभी बहुत सुधार करने की आवश्यकता है। विडम्वना है कि भारत में गेंहूँ और धान के जो अन्न भण्डार हैं वह हमारी जरूरत से कहीं ज्यादा हैं। इतना अन्न होने के बाद भी हमारे देश की रैंकिंग यदि 102 आती है, तो यह चिंता का विषय है। कहीं न कहीं भोजन का प्रबन्धन खराब हो रहा है। यहॉ खाना भी अतिरिक्त है और दुनियां के सबसे ज्यादा भूखे भी यहीं पर हैं, तो हमें सोंचना ही होगा। जब तक कृषि का संकट कम नहीं होता, स्वास्थ्य एवं पोषण के साथ–साथ अन्य बुनियादी समस्यायों का समाधान सम्भव नहीं होगा।

संदर्भ–सूची

1 शर्मा, संचिता, 2019, बड़े राज्यों में भी बच्चों की सेहत ठीक नहीं, हिन्दुस्तान अखवार, दिनांक, 2 जुलाई।

2 चटर्जी, पत्रलेखा, 2017, मानव पूॅजी में निवेश कीजिए, हिन्दुस्तान अखवार, दिनांक, 18 अक्टूबर।

3 खडका, श्याम, 2017, ग्रामीण विकास से मिटेगी भूख, हिन्दुस्तान अखवार दिनांक 16 अक्टूबर।

4 पोषित भारत का सच, 2017, हिन्दुस्तान अखवार की एक रिपोर्ट, दिनांक,14 अक्टूबर।

5 अय्यर, यामिनी, 2020, हर जरूरतमंद के घर पहुॅचे अनाज, हिन्दुस्तान अखवार, दिनांक 26 अगस्त, पेज न.8।

6 शर्मा, देवेन्दर, 2020, भरपूर अनाज के बावजूद भूख, हिन्दुस्तान अखवार, दिनांक, 16 अक्टूबर, पेज न. 10 ।

7 विकासपीडिया ।

8 विकीपीडिया ।

9 गूगल

मंजू बाला पत्नी मलखान सिंह, एडवोकेट,
शोधार्थी समाजशास्त्र आई.एफ.टी.एम.यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद
पता–भगवती विहार, मण्डी वाई पास रोड, चंदौसी, जिला सम्भल
मोबाइल न.–9319535211 पिनकोड न.–244412
ईमेल आई.डी.–singhmalkhan38@gmail.com

22

उषा प्रियवंदा की कहानियों में स्त्री विमर्श एक विवेचण

डा0 गोपाल कृष्ण यादव

सारांशः–

(उषा प्रियवंदा की कहानियाँ अनुभव की विपन्नता की कहानियाँ है। वे कदाचित अकेली लेखिका हैं जिन्होंने उदात्त प्रेम पर इतनी अधिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक वर्जनाओं और जीवन की निषेधवादी दृष्टि का प्रत्याखान करती है।)

उषा प्रियंवदा का अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती कहानीकारों की तुलना में अपना रचाना संसार और उनके सरोकार सीमित रहे हैं। वे न तो चंद्र किरण सोनेरेक्सा की तरह बृहत्तर सामाजिक संदर्भों से जुड़कर व्यवस्था के शोषक आदमखोर स्वरूप का उद्घाटन करती है, और न ही कृष्णा सोबती की तरह संक्रमणशील समाज में स्त्री की आत्मसजगता को चित्रित्र करती है ..... सारे समाजिक, राजनीतिक परिवर्त्तन के बीचों–बीच खड़ी अपनी निजता और अधिकार की आवाज उठाती हुई स्त्री । सामाजिक अंतर्विरोधों को लेकर वे मन्नु भंडारी की तरह सजग और सचेत भी नहीं है। अपने पहले संग्रह ' फिर बसंत आया' को अब वे अपनी रचनाओं में शामिल नहीं करती। काफी पहले कुंवर नारायण ने उनके संग्रह 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' के सन्दर्भ में आधुनिकता की तरफदार कहकर उषा प्रियंवदा की अभ्यर्थना की थी। 'पेरम्बुलेटर' 'कच्चे धागे' और 'दो अंधेरे' जैसी कहानियों को अपवाद मानकर इस संग्रह की शेष कहानियों में जो स्त्री विमर्श और रस सम्पन्नता की पृष्ठभूमि देखने को मिलती है वह युवतियाँ ही है। कॉलेज युनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त या फिर काम–काजी किस्म की युवतियाँ है। अधिकांशतः इन कहानियों में अंकित है, जिनकी मुख्य समस्या प्रेम ही है। 'मोहबंध' में सिसकियों और भीगी आँखों वाला अतीत ही मोहबंध है। 'पूर्ति' का तारा वर्जना और निषेध से बाहर आकर मसूरी प्रवास की उस निर्जन तूफानी रात में नलिन से वह सब कुछ पाकर संतुष्ट है जो अब सारे जीवन के लिए काफी है। 'जाले' की पर्याप्त रोमानी परिवेश में इस तथ्य को रेखांकित करती है कि प्रेम का आकर्षण सुशिक्षित और अपढ़ व्यक्तियों को समान रूप में बाँधता है। वह वस्तुतः मकड़ी के जालों की तरह है जिसके तार दूर से बहुत सुकुमार और कोमल लगते हैं, पर एक बार इनमें फँस जाने के बाद मुक्ति की कोई आशा नहीं दिखाई देती।

उषा प्रियंवदा की कहानियाँ सामाजिक वर्जनाओं और जीवन की निषेधवादी दृष्टि का प्रत्याखान करती हैं। उनकी नायिकाएँ दैहिक पवित्रता की मिथ को तोड़ती है। 'चाँद चलता रहा' की रोहिनी को तो जीवन भर एक कचोट बनी रहती है कि अरविन्द से विवाह तय हो जाने के बाद भी एक रात उसके आग्रह को ठुकराकर जैसे वही उसकी आकाल मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। दैहिक संकोच की इस प्रतिक्रिया में ही जैसे वह निर्बंध जीवन की ओर मुड़ जाती है, जहाँ बार–बार अपने को मारकर, अपने से उस सबका बदला लेकर उसे गहरा सुख मिला है। 'कटीली छांह' में वर्जना को एक सामाजिक सन्दर्भ देने की कोशिश की गई है। 'छुट्टी का दिन' कामकाजी महिलाओं की हताश और विडंबना को व्यक्त करती है। 'दृष्टि दोष' मूल्यों के आग्रह की कहानी है जिसमें जीवन पद्धति और सोच की भिन्नता के बावजूद साम्ब को अपनी पत्नी के प्रति रागात्मक निष्ठा का भाव चंद्रा को फिर उसके पास ले आता है। क्योंकि प्यार की मधुरता ने उसका दृष्टि–दोष मिटा दिया है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' उस व्यापक मोहभंग और हताशा की कहानी है जिसमें शिक्षित बेरोजगारी का समूचा देशव्यापी संदर्भ सिमट आया है। इस हताशा की स्थिति में सुबोध एक ओर यदि शोभा से दूर चला जाता है तो दुसरी ओर अपनी ही बहन वृन्दा की नौकरी के बाद, स्थितियाँ उसे और भी असहाय और हीन बनाकर छोड़ देती है। 'वापसी' उषा प्रियंवदा की कहानियों में एक भिन्न प्रकार की कहानी है। यह भारतीय परिवेश में अजनबीपन के बोध की कहानी है, जिसमें नौकरी पर बाहर रहने के कारण गजाधर बाबू की लम्बी कल्पित अनुपस्थिति उन्हें परिवार के ढ़ांचे से बाहर कर देती है। रिटायर होने के बाद जिस जीवन की कल्पना उन्होंने की थी, वह जैसे छिटककर कहीं दूर जा पड़ता है । इस कहानी को लेकर जब विवाद चला था तो किसी ने यह आपत्ति उठाई थी कि अपने परिवार में जिस तरह गजाधर बाबू को अवांछित और अपरिचित बनाकर पेश किया गया है, उससे तो लगता है जैसे वह बीच–बीच में कभी घर आते ही नहीं रहे हैं और पूरी नौकरी के बाद अब अचानक उनकी यह वापसी हुई है। उषा प्रियंवदा की कहानियों में नायिकाएँ प्रेम को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अनुभव मानती है। 'पचपन खम्भे लाल दिवारें' की सुषमा की तरह कभी–कभी वे सामाजिक व्यवस्था की जटिलता और अभेद्यता का संकेत भी देती है। 'एक कोई दूसरा' की रानी अपने शिक्षक डॉ0 कुमार के प्रति अनाम अदृश्य आकर्षण में बंधती जाती है। लेकिन एक सूक्ष्म स्तर पर यह आकर्षण एक मूल्यबोध का भी निर्माण करता है। अपनी सुन्दरता और सम्पन्नता के कारण वह बहुतों की काम्य रही है। अपने बारे में उसकी स्वीकृति है..... मैं बुरी नहीं हूँ, केवल पूरी तरह जीने का प्रयत्न कर रही हूँ ..... (1) डा0 कुमार के सम्पर्क में धीरे–धीरे उसे अपनी समृद्धि, सम्पन्नता और यौवन का अर्थ बदलता हुआ सा लगता है। 'कोई नहीं' में लेखिका नमिता के संदर्भ में न तो कहीं आत्मपीड़ा को ग्लोरीफाई करती है और न ही अतीत को लेकर अतिरिक्त रूप से कहीं भावुक होती है। इसके विपरीत नमिता का अवसाद भरा पश्चाताप उसकी कैरियरिस्ट परिणति की व्यर्थता का बोध करा पाने में सफल होता है। उषा प्रियंवदा ने जो प्रेम कहानियाँ लिखी है उनमें से कुछ में एक मुख्य पात्र विदेशी है और सभी पात्र भारतीय हैं, मात्र परिवेश और पृष्ठभूमि विदेशी है। .... दरअसल किसी लेखक की पृष्ठभूमि विदेशी है या देशी यह चीज गौण है, उसका महत्व है तो सिर्फ इसमें कि किस सीमा तक और कितनी गहराई से वह किसी खास स्थिति या नियति को खोल पाती है–बल्कि यूँ कहें महत्व की कोई चीज है, तो सिर्फ यह ही–बाकी एक राख है .....2 'मछलियाँ' की विजी और 'शेष–यात्रा' की अनु की तरह उषा प्रियंवदा की नायिकाएँ प्रायः ही परिवार का विरोध झेलकर अपने सद्यः विवाहित पति या प्रेमी के साथ या फिर उसके आमंत्रण पर, वहाँ पहूँचती है। दो सभ्यताओं–संस्कृतियों की मुठभेड़ प्रायः उन्हें शॉक देती है, जिससे उनका संतुलन डगमगाता है। 'मछलियाँ' की विजी–विजय लक्ष्मी के मन में यह बात बैठ गई है कि जिस मनीष के लिए अपना सब कुछ छोड़कर, नाना के दिए माँ के आभूषण बेचकर वह अमेरिका आई है, उसी मनीष को वह मुन्नी के कारण नहीं पा सकी है। मुन्नी और नटराज की भावनाओं के प्रति उदासीन बनी रहकर वह जो कुछ करती है उसमें मनीष को खो देने की पीड़ा की भूमिका ही महत्वपूर्ण है, जिसके लिए उसने इतना कुछ सहा और किया है। इन कहानियों में

उषा प्रियंवदा विषय की एकरूपता के बावजूद वैविध्य का आभास देती है। यहाँ वे अमेरिकी जीवन पद्धति और अतिरिक्त रूप से कोई टिप्पणी नहीं करती, न ही किसी प्रकार का नैतिक हस्तक्षेप करती है, लेकिन दो संस्कृतियों के अन्तर को समझना मुश्किल नहीं होता। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि वे दो संस्कृतियों को दो भिन्न जीवन मूल्यों के रूप में इस्तेमाल करती है। 'सागर पार का संगीत' 'चाँदनी में बर्फ' 'टुटे हुए' और 'पिघलती हुई बर्फ' आदि कहानियाँ प्रेम को उसके अनुभव और प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करती है। इन कहानियों में उनकी आरंभिक कहानियों वाला रोमनी आग्रह झड़ चूका है और एक व्यस्कता की नींव दिखाई देती है। यहाँ तक आते–आते यह साफ हो जाता है कि शाश्वत कुछ नहीं होता– प्रेम भी नहीं । इसी पृष्ठभूमि में बाद की कहानियों में आवेग का तारलय बढ़कर उस मूल्य बोध को छिपा लेता है, जिसका हल्का सा आभास उनकी विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी गई, शुरू की कहानियों में दिखाई दिया था। सोच और वय दोनों ही दृष्टियों से जैसे ये नायिकाएँ पक चूकी हैं और इस बीच अमेरिकी जीवन के तौर–तरीके उनके खून का हिस्सा बन चूके हैं। जिन प्रेमियों और पतियों की खातिर अपना घर–परिवार छोड़कर ये नायिकाएँ वहाँ पहूँची थी, शुरू के उस सांस्कृतिक झटके को झेल जाने के बाद वे अब अपने लिए नई राहें खोजने को आतुर दिखाई देती है। उनके लिए अब न तो भारत में छूटे हुए परिवार के प्रति किसी प्रकार का भावुक कर्त्तव्य–बोध शेष रह गया है और न ही भारतीय पत्नी की वह अवधारणा जो कल्याणी और टीटी में कहीं न कहीं उन्हें बाँधे रहती है। निहायत अकुंठित भाव से वे सिर्फ अपने तात्कालिक आवेगों के प्रति ही सच्ची बना रहना चाहती है।

उषा प्रियंवदा की कहानियाँ अनुभव की विपन्नता की कहानियाँ हैं। वे कदाचित अकेली लेखिका हैं जिन्होंने प्रेम पर इतनी अधिक कहानियाँ लिखी हैं। नई कहानी अपरिमित वैविध्य और विस्तार की संभावनाएँ लेकर विकसित हुई थी। उषा प्रियंवदा की कहानियों से नई कहानी की सीमाओं को आज शायद बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

निष्कर्ष : (नई कहानी अपरिमित वैविध्य और विस्तार की संभावनाओं को लेकर विकसित हुई थी। उषा प्रियवंदा की कहानियों से नई कहानी की सीमाओं को आज शायद बेहतर ढंग से समझा जा सकता है)

संदर्भ :

1. एक कोई दूसरा, पृष्ठ–18
2. मेरी प्रिय कहानियाँ '70', भूमिका पृष्ठ–7

डा0 गोपाल कृष्ण यादव
पिता–श्री राम नरेश यादव
ग्राम–मिर्जापुर बघार
वाया–मनिहारी
जिला–कटिहार (बिहार)
पिन–854113
मो0 9905294779

23

भगत सिंह का मूल वैचारिक तत्वः एक अध्ययन

अश्वनी कुमार

सारांशः–

भगत सिंह भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में मील के पत्थर हैं। वह बहुत मंथन के पश्चात लक्ष्य निर्धारित करते थे तथा उसको प्राप्त करने के लिए योजना बनाते थे। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह प्रत्येक तरीके में विश्वास करते थे चाहे वह तरीका हिंसात्मक ही क्यों न हो किन्तु वह मानव को कष्ट नहीं देना चाहते थे। वह सत्ता परिवर्तन के साथ साथ व्यवस्था परिवर्तन चाहते थे जिसमें शोषण व भेदभाव का कोई स्थान नहीं था। उनकी सोच विश्व प्रेम की थी वह सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण चाहते थे। वह सामाजिक भेदभाव के खिलाफ थे तथा समतावादी समाज चाहते थे। अल्पायु में इतना गहरा मंथन भगत सिंह की विचारधारा को स्पष्ट करता है। वह व्यक्ति के नहीं अपितु शोषणकारी विचारधारा के विरोधी थे। भगत सिंह की विचारधारा का वस्तुनिष्ठता से अध्ययन करने की आवश्यकता है। भगत सिंह एक अनूठे देशभक्त, सच्चे क्रांतिकारी, आत्मबलिदानी, स्वतंत्र चिंतक, दूरदर्शी व सच्चे मानव थे।

प्रस्तावनाः–

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में अनेक विचारधारओं की भूमिका व योगदान था। किसी भी विचारधारा का उद्भव परिस्थितयों का परिणाम होता है किन्तु यह भी सत्य है कि विचार का उत्पत्ति स्थल मानव मास्तिष्क होता है जो अपनी बुद्धि से परिस्थितयों को भी परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की विचारधाराऐं किसी न किसी व्यक्ति की सोच का ही परिणाम कही जा सकती हैं। किसी भी व्यक्ति व उसकी विचारधारा का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करना न्याय कहलाता हैं। विचारधाराओं और व्यक्तियों का निष्पक्ष मुल्यांकन इतिहास का लक्ष्य होना चाहिए। भगत सिंह भी एक ऐसे व्यक्तित्व है जिनकी मूल विचाराधारा को गहराई से समझने की आवश्यकता है। ''आज सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि शहीद भगत सिंह के मूल वैचारिक तत्व को जाना व समझा जाऐ। यह पहचाने की जरूरत है कि वे कौन से सिद्धान्त थे, कौन से तरीके व गुण थे, जिनसे भगत सिंह आत्मबलिदान करने वालो में सबसे ऊचें स्थान के अधिकारी बने? वे कौनसी परिस्थितयां थी जिन्होनें भगत सिंह को भारतीय चेतना का अंश बनाया।''[1] वर्तमान समय की बहुत सी समस्याओं का हल अतीत की घटनाओं में खोजा जा सकता है। किन्तु इसके लिए घटना तथा विचार धारा के सारतत्व को समझना आवश्यक है। ''भगत सिंह के जीवन और विचारों का यदि गहराई से विश्लेषण किया जाऐ तो हम पाते है कि उन्होंने 'देश के इतिहास, परिस्थितयों और आदर्शो के गम्भीर, परिश्रमी व इमानदार विद्यार्थी के रूप में इतिहास के वैज्ञानिक सिद्धान्तों की समझ हमारे साथ सांझी की है। एक गहरी ऐतिहासिक– भौतिकवादी दृष्टि उनमें हर जगह काम करती नजर आती है। सामाजिक विकास के अटल सिद्धान्तों को उन्होनें न सिर्फ पहचाना, वरन लागू भी किया''[2] शहीद भगत सिंह न सिर्फ वीरता, साहस, देशभक्ति, दृढ़ता और आत्मबलिदान के गुणों के सर्वोतम उदाहरण है जैसाकि आज तक इस देश के लोगों को बताया समझाया गया है, वरन वे लक्ष्य के प्रति स्पष्टता, वैज्ञानिक, एतिहासिक दृष्टिकोण से क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के प्रतिरूप भी थे।''[3] भगत सिंह के क्रान्तिकारी चिन्तन में यह बात शामिल थी कि 'सेवा करना, कष्ट सहना और कुर्बानी देना' के सिद्धान्त पर चलते हुऐ अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर बढ़ना चाहिए। किसी भी गतिविधि की कसौटी यह है कि वह लक्ष्य की ओर आगे ले जाती है या नहीं, लोगो में साहसिक भावना भरती है या नही।''[4] भगत सिंह की विचारधारा का लक्ष्य राष्ट्र की समस्याओं का स्थाई समाधान था वे एक दूरदर्शी चिन्तक थे। उनकी विचारधारा जाति, धर्म से उपर सभी के विकास के लिए थी। वह व्यवस्था परिवर्तन के पक्षधर थे तथा उनकी सोच सम्पूर्ण विश्व के शोषित वर्ग के कल्याण के लिए थी। उनकी विचारधारा गहरे चिन्तन का परिणाम थी। भगत सिंह की मूल विचारधारा को समझने के लिए उनके विभिन्न क्षेत्रों के बारे में विचार जानने आवश्यक हैं। भगत सिंह का देहांत 23 वर्ष की अल्पायु में हो गया था। जब उन्होनें गांधीवादी राष्ट्रवाद छोड़कर क्रांतिकारी आंतकवाद का रास्ता अपनाया तो शीघ्र ही उनका राजनैतिक चिंतन तथा उसका व्यावहारिक रूप सामने आने लगा। परंतु 1927–28 से ही वे क्रांतिकारी आंतकवाद से अधिक मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट होने लगे। 1925 से 1929 के दौरान भगत सिंह ने विशेष रूप से रूसी क्रान्ति तथा सोवियत संघ पर पुस्तकों का गहन अध्ययन किया, यद्यपि उन दिनों ऐसी पुस्तको का अध्ययन करना अपने आप में एक क्रातिकारी तथा कठिन कार्य था। 1920 के दशक में भगत सिंह भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलनों, अराजकतावाद तथा मार्क्सवाद की गहन समझ रखने वाले व्यक्तियों में से थे।''[5]

भगतसिंह के विचारों की गहराई बढ़ती जा रही थी। ''जून 1929 में अपनी गिरफ्तारी से पहले और उसके बाद भी, भगत सिंह मार्क्सवाद की ओर अग्रसर रहे और उसमें प्रवीणता प्राप्त करने का निरंतर प्रयास करते रहे। इस प्रक्रिया के अर्न्तगत उन्होनें राष्ट्रवादी आंदोलन, समकालीन अंतर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी प्रक्रिया, अराजकतावाद, समाजवाद, हिंसा और अहिंसा, क्रान्तिकारी आंतकवाद, धर्म, साम्प्रादायिकता, पूर्ववर्ती क्रान्तिकारियों तथा समकालीन राष्ट्रवादियों, समकालीन विचार धाराओं तथा स्वयं अपने–विचारों की समीक्षा की''[6] भगतसिंह की मूल विचारधारा को समझने के लिए उनके विभिन्न क्षेत्रों के बारे में विचार जानने आवश्यक है जिनका हम बिन्दुवार अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से कर सकते है–

क्रान्ति के बारे में:–

क्रान्ति के सम्बन्ध में भगत सिंह के विचार बहुत स्पष्ट थे। निचली अदालत में जब उनसे पूछा गया कि क्रान्ति शब्द से उनका क्या मतलब है, तो उत्तर में उन्होनें कहा था, ''क्रान्ति के लिए खूनी संघर्श, अनिवार्य नही है, और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा का कोई स्थान है यह बम और पिस्तोल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से

हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान व्यवस्था जो खुले तौर पर अन्याय पर टिकी हुई है, बदलनी चाहिए।[7] अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होनें कहा था, क्रान्ति से हमारा अभिप्राय अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से है। जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुसत्ता को मान्यता हो तथा एक विश्वसंघ मानव जाति को पूंजीवाद के बन्धन से और साम्राज्यवादी युद्धों से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सके।''[8] भगत सिंह के क्रान्ति के बारे में विचार उद्देश्य तथा कार्यक्रम एक गुप्त पुस्तक में भी मिले हैं।

इस प्रकार के दस्तावेज वो प्रकाशित करवाते रहे थे'' इसका पहला हिस्सा 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' शीर्षक से उस समय के विभिन्न समाचार पत्रों मे काट–छाटकर छापा था। लाहौर के 'पीपुल'में 29 जुलाई 1931 और इलाहाबाद के 'अभ्युदय' में 8 मई 1931 के अंक में इसके कुछ अंश प्रकाशित हुऐ थे।''[9] ''यह दस्तावेज अपने समग्ररूप में हाल ही में अग्रेज सरकार की एक गुप्त पुस्तक में से मिला है। यह पुस्तक सी. आई. डी. अधिकारी सी.ई.एस. फेयरवैदर ने 1936 में 'बंगाल में संयुक्त मोर्चा आन्दोलन की प्रगति पर नोट' शीर्षक से लिखी थी। उसके अनुसार यह मसौदा भगतसिंह ने लिखा था और 3 अक्टुबर 1931 को श्रीमति विमला प्रभा देवी के घर से तलाशी में हासिल हुआ था''। इस दस्तावेज में क्रान्ति का अर्थ, उद्देश्य, आधार तथा कार्यरूप अथवा साधनों पर विस्तार से चर्चा गई है। सी0आई0डी0 अधिकारी के अनुसार यह मसौदा भगतसिंह ने तैयार किया था अतः इस दस्तावेज में भगत सिंह के विचारों की गहराई का पता चलता है। इस दस्तावेज में लिखा है'' वर्तमान परिस्थिति पर कुछ हद तक विचार करने के बाद भविष्य के कार्यक्रम और कार्यनीति पर भी विचार कर लिए जाए। जैसा कि मैनें पहले भी कहा है कि किसी क्रान्तिकारी पार्टी के लिए निशचित कार्यक्रम होना बहुत जरूरी है। आपको यह पता होना चाहिए कि क्रान्ति का मतलब गतिविधि है इसका मतलब संगठित व क्रमबद्ध काम द्वारा सोची–समझी तब्दीली लाना है और यह तोड़–फोड़–अंसगठित, एकदम या स्वतः परिवर्तन के विरूद्ध है।''[11] आगे फिर लिखा गया ''राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ राजसत्ता यानी मोटे तौर पर ताकत का अग्रेजी हाथो से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयो के हाथो में, जिनका अन्तिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो,''[12] क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते है वे हैं किसान और मजदूर।''[13] क्रान्ति के तरीको पर भी चर्चा की गई। ''वास्तविकता का सामना करने के लिए तैयार हो जाओ। क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी की ताकत के वश की बात नही है और न ही यह किसी निशचित तारीख को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक आर्थिक परिस्थितयों से पैदा होती है और एक संगठित पार्टी को ऐसे अवसर को संभालना होता है और जनता को इसके लिए तैयार करना होता है।''[14] क्रान्तिकारियो के पास पूरा समय होना चाहिए जैसा कि दस्तावेज मे कहा गया ''हम तो लेनिन के अत्यन्त प्रिय शब्द 'पेशेवर क्रान्तिकारी' का प्रयोग करेंगे। पूरा समय देने वाले कार्यकर्ता, क्रान्ति के सिवाय जीवन में जिनकी और कोई ख्वाहिश ही न हो। जितने अधिक ऐसे कार्यकर्ता पार्टी में संगठित होगे, उतने ही सफलता के अवसर अधिक होंगे।''[15] पार्टी को ठीक ढंग से आगे बढाने के लिए जिस बात की सबसे अधिक जरूरत है वह यह है कि ऐसे कार्यकर्ता जो स्पष्ट विचार, प्रत्यक्ष समझदारी, पहलकदमी की योग्यता और तुरन्त निर्णय कर सकने की शक्ति रखते हो,''[16] एक जगह क्रान्ति को परिभाषित करते हुऐ लिखा गया। ''क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ एक ही अर्थ हो सकता है – जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है क्रान्ति, बाकि सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूंजीवादी सडाँध को ही आगे बढाते है।''[17] क्रान्ति में जनता की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। ''साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है कोई और चीज इस उद्देश्यको पूरा नही कर सकती। सभी विचारों वाले राष्ट्रवादी एक उद्देश्य पर सहमत है कि साम्राज्यवादीयो से आजादी हासिल हो। पर उन्हें यह समझने की जरूरत है कि उनके आन्दोलन की चालक शक्ति विद्रोही जनता है और उनकी जुझारू कार्रवाइयों से ही सफलता हासिल होगी।''[18] इस प्रकार इस दस्तावेज में क्रान्ति को गहराई से स्पष्ट किया गया। भगत सिंह के क्रान्ति के बारे में विचारों को समझने के लिए क्रान्तिकारियों का नारा 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का अर्थ भी समझना अति आवश्यक है। 'शहीद यतीन्द्रनाथ दास 63 दिन की भूख हड़ताल के बाद शहीद हुए। मार्डन रिव्यु के सम्पादक रामानन्द चटटोपाध्याय ने उनकी शहादत के बाद भारतीय जनता द्वारा शहीद के प्रति किए गए सम्मान और उनके 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे की आलोचना की। भगत सिंह और बी0 के दत्त ने 'माडर्न रिव्यू' के समपादक को उस सम्पादकीय का उत्तर दिया था जो 22 दिसम्बर 1929 को सम्पादक को भेजा गया।''[19] ''यह आवश्यक है, क्योकि इस देश में इस समय इस नारे को सब लोगो तक पहुंचाने का कार्य हमारे हिस्से में आया है। इस नारे की रचना हमने नही की है। प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अप्टन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आईल में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रान्तिकांरी के मुख से कराया है। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ कदापि नही है कि सशस्त्र संघर्श सदैव जारी रहे और कोई भी व्यवस्था अल्प समय के लिए भी स्थायी ना रह सके, दूसरे शब्दों में – देश और समाज में अराजकता फैली रहे।[20] इन्कलाब का अर्थ अनिवार्य रूप में सशस्त्र आन्दोलन नहीं होता। बम और पिस्तौल कभी–कभी क्रान्ति को सफल बनाने के साधन मात्र हो सकते है। इसमें भी सन्देह नही हैं कि कुछ आन्दोलन में बम और पिस्तौल एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होते है, परन्तु केवल इसी कारण से बम और पिस्तौल क्रान्ति के पर्यायवाची नही हो सकते। क्रान्ति का अर्थ, 'प्रगति के लिए परिवर्तन की भावना एवं आकांक्षा' है।[21] अन्त में पत्र में लिख गया यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सैदव न रहे और नई व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारे वह अभिप्राय जिसको हृदय में रखकर हम 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा ऊंचा करते है''[22] ''भगत सिंह दार्शनिक अथवा कोरे विचारक नही थे। वे मुख्यतः कर्मयोगी थे। उनका मार्ग क्रान्ति और बलिदान का था''[23] ''भगत सिंह की सम्पूर्ण विचार धारा मुख्यत क्रान्ति और समाजवाद' इन दो शब्दों के अन्तर्गत घूमती है।[24] भगत सिंह के चिन्तन, पर मुख्यतः समाजवादी विचारको मार्क्स, एगिल्स, लेनिन, ट्राटस्की, बाकुनिन और पाश्चात्य क्रान्तिकारियों, वांशिगटन, मेजिनी, गैरीबाल्डी, बेला अपट्रान सिंक्लेयर और फ्रांसिस्को फैरेरे का प्रभाव पड़ा था।[25] शचीन्द्रनाथ सान्याल, सुखदेव, भगवती चरण बोहरा तथा चन्द्रशेखर आजाद ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया था।[26] भगत

सिंह और बटुकेश्वर दत की ओर से जेल से भेजा गया यह पत्र 19 अक्टुबर 1929 को पंजाब छात्र संघ लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था।[27]

इस पत्र में विद्यार्थियों को कहा गया इस समय नौजवानों से यह नही कह सकते कि वें बम और पिस्तौल उठाऐं। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण काम है।[28] भगत सिंह विद्यार्थियों की ऊर्जा का सदुपयोग व्यवस्था परिवर्तन के लिए करना चाहते थे। वे रक्तपात में विश्वास नही करते थे। लेकिन जब शोषण चरम पर हो तो उनका रक्तपात से परहेज भी नही था। वे मानवता से प्रेम करते थे। असेम्बली में बम फेंकने के बाद 6 जून 1929 को दिल्ली के सेशन जज मि0 लियोनाई मिडिल्डन की अदालत में दिया गया भगत सिंह और दत्त का ऐतिहासिक बयान भी उनकी विचारों की गहराई को प्रकट करता है। उन्होनें अदालत में कहा मानवता को प्यार करने में हम किसी से भी पीछे नही है। हमे किसी से व्यक्तिगत द्वेश नही है और हम प्राणीमात्र को हमेशा आदर की निगाह से देखते आऐ है[29] भगत सिंह का लक्ष्य सदा ही पवित्र होता था। उन्होनें कहा इस प्रकार करोड़ो संघर्षरत भूखे मजदुरों को प्राथमिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उनके हाथों से उनकी आर्थिक मुक्ति का एकमात्र हाथियार भी छीन लिया गया। जिस किसी ने भी कमरतोड़ परिश्रम करने वाले मूक मेहनतकशों की हालत पर हमारी तरह सोचा है वह शायद स्थिर मन से यह सब न देख सकेगा।[30] फिर आगे कहा कि हमारा एकमात्र उद्देश्य था बहरे को सुनाना और उन पीड़ितो की मांगो पर ध्यान न देने वाली सरकार को समय रहते चेतावनी देना।[31] भगत सिंह ने अपना उद्देश्य व विचार धारा स्पष्ट करते हुऐ कहा हम मानव जीवन को अकथनीय पवित्रता प्रदान करते है और किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने की बजाय हम मानव जाति की सेवा में हंसते हंसते अपने प्राण विसर्जित कर देंगे।[32] उन्होनें कहा हम साम्राज्यवादी सेना के भाड़े के सैनिको जैसे नही जिनका काम ही नर हत्या होता है। हम मानव जीवन का आदर करते है और बराबर उसकी रक्षा का प्रयत्न करते है।[33] भगत सिंह तर्कशास्त्री थे। दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगत सिंह को आजन्म कारावास दण्ड दिया था। लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गई। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुऐ भगतसिंह ने हाईकोर्ट में अपना बयान दिया था जो उनकी तर्कशक्ति को प्रकट करता है। उन्होनें कहा यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता ही नही चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नही हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े–बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आएंगे, सरकारी कर वसुलने वाले अधिकारी चोर, जालसाज दिखाई देंगे और न्यायधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लेगेगा।[34] आगे फिर वह कहते है कि आटे मे जहर मिलाना जुर्म नही बेशर्ते कि उसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाए तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है।[35] भगत सिंह बम गिराने के कार्य को अपने तर्को से उचित सिद्ध करते है वह कहते है समग्र रूप से हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में कांफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है।[36] उन्होनें इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे को भी परिभाषित करते हुए कहा इन्कलाब, जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया हालांकि यह हमारा उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब जिन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नही था जो आमतौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तोल और बम इन्कलाब नही लाते बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे।[37] उन्होनें आगे कहा, हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धो की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नही है। गलत बाते हमारे साथ जोड़ना हमारे साथ साफ–साफ अन्याय है।[38] इस प्रकार भगत सिंह के विचार व तर्क सिद्ध करते है कि वे प्रत्येक कार्य को उद्देश्य को ध्यान मे रखकर करते और उनका उद्देश्य था शोषणकारी व्यवस्था में परिवर्तन करना।

भगत सिंह मे तर्कशक्ति के साथ–2 स्वतन्त्र चिन्तन भी दिखाई पड़ता है। वह भावनाओं व भय से उपर उठकर विचार प्रकट करते थे। 30 सितम्बर 1930 को भगत सिंह के पिता ने एक अर्जी देकर बचाव पेश करने के लिए अवसर की मांग की। इनके पिता व कुछ अन्य देशभक्तों को लगता था कि शायद बचाव पक्ष पेश करके भगत सिंह को फांसी से बचाया जा सकता है। भगत सिंह ने अपने सिद्धान्तों पर चलते हुऐ 4 अक्टुबर 1930 को अपने पिता जी के पत्र लिखा जो उसके पिता को देरी से मिला। 7 अक्टुबर 1930 के मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। भगत सिंह ने पिता जी को लिखा पूज्य पिताजी मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि आपने मेरे बचाव पक्ष के लिए स्पेशल ट्रिब्यूनल को एक आवेदन भेजा है। यह खबर इतनी यातनामय थी कि मैं इसे खामोशी से बर्दाशत नहीं कर सका..... आपका पुत्र होने के नाते मै आपकी भावनाओं का सम्मान करता हु.... आप जानते है कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे काफी अलग है।[39] यह पत्र सिद्ध करता है कि भगत सिंह के स्वतन्त्र विचार थे वह सिद्धान्तों से समझौता नही करते थे।

नास्तिकता सम्बन्धी विचारः–

भगत सिंह के भगवान के बारे में विचार क्या थे यह भी गहराई का विषय है जिसका उत्तर वह अपने दस्तावेज मैं नास्तिक क्यों हूं ? मे देते हैं। क्या भगत सिंह आरम्भ से ही नास्तिक थे या बाद में हुऐ यह जानना आवश्यक है। भगत सिंह ने अपने मित्र अमरचन्द (जो उस समय अमेरिका में पढ रहे थे) को 1927 ई0 में पत्र लिखा। पत्र के अन्तिम भाग में वह लिखते है ''साठ हजार की जमानत पर रिहा हूँ। अभी तक कोई मुकद्मा मेरे खिलाफ तैयार नहीं हो सका और ईश्वर ने चाहा तो हो भी नही सकेगा। आज एक बरस होने को आया, मगर जमानत वापस नही ली गई। जिस तरह ईश्वर को मंजुर होगा।[40] इस पत्र की भाषा स्पष्ट करती है कि इस समय अर्थात 1927 ई0 तक भगत सिंह का ईश्वर में विश्वास था। 1930 में भगत सिंह के दस्ताजेज मै नास्तिक क्यो हू? तैयार हुआ। भगत सिंह इसमें अपने विचार प्रकट करते हुऐ कहते है कि '' उन दिनों में पूर्ण नास्तिक नही था। मेरे दादा जी जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढिवादी आर्य समाजी हैं। एक आर्य समाजी और कुछ भी हो नास्तिक नही होता।[41] आगे वह लिखते है, अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी0ए0वी0 लाहौर में प्रवेश लिया और एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और

शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त मै घंटो गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों में पूरा भक्त था।[42] असहयोग आन्दोलन के दिनों में मैनें नेशनल कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया यहां आकर ही सारी धार्मिक समस्याओं, यहां तक कि ईश्वर के बारे में उदारता पूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना आरम्भ किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था।[43] भगत सिंह फिर लिखते है, किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी।[44] भगत सिंह शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'बन्दी जीवन से प्रेम करते थे इस पुस्तक के पहले पृष्ठ से ही ईश्वर की महिमा का जोर–शोर से गान है।[45] भगत सिंह जिन क्रान्तिकारियों के बीच रहते थे उनका भी ईश्वर में विश्वास था' 28 जनवरी 1925 को पूरे भारत में 'दि रिवोल्यूशनरी (क्रान्तिकारी) पर्चा बांटा गया था। उस पर्चे में एक पूरा पैराग्राफ उस सर्वशक्तिमान तथा उसकी लीला एवं कार्यो की प्रशशा से भरा पड़ा था।[46]

भगत सिंह आयु बढ़ने के साथ–2 यर्थायवादी होते चले गऐ। भगत सिंह ने बाकुनिन, मार्क्स तथा लेनिन के विचारों का अध्ययन किया जिनमें इन पर लेनिन का प्रभाव अधिक पड़ा। ये नास्तिक थे। इस प्रकार धीरे–2 1927 के बाद भगत सिंह के विचार बदलने लगे तथा वह नास्तिकता की तरफ बढ़ने लगे। वह लिखते है। मै एक घोषित नास्तिक हो चुका था[47] इस प्रकार हम देखते है कि भगत सिंह किन परिस्थितयों में नास्तिक हुऐ वो आरम्भ में ऐसे नहीं थे उनके अनुसार'' विश्वास कष्टो को हलका कर देता है, यहां तक सुखकर बना सकता है। ईश्वर से मनुष्य को अत्यधिक सान्तवना देने वाला एक आधार मिल सकता है। उसके बिना मनुष्य को स्वयं अपने उपर निर्भर होना पड़ता है।[48] यह कथन सिद्ध करता है कि भगत सिंह ईश्वर के अस्तित्व को मानते थे तभी उनसे सहायता या सहारा मिलने की बात कर रहे है लेकिन इस समय तक वह स्वयं नास्तिक हो चुके थे। भगतसिंह आगे कहते है मैं जानता हूं कि वर्तमान परिस्थितयों में ईश्वर पर विश्वास ने मेरा जीवन आसान और बोझ हलका कर दिया होता और उस पर अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यन्त शुष्क बना दिया है और परिस्थितयां एक कठोर रूप ले सकती है।[49] यह विचारधारा प्रकट करती है कि भगत सिंह को कही न कही नास्तिक होने का दुःख है। परन्तु वह यर्थाथवादी व निडर थे उनका विचार था कि किसी भी प्रकार का सहारा व्यक्ति को कमजोर कर सकता है। उन्होनें कहा मैं यर्थायवादी हूं। मैं अपनी अन्तः प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूं।''[50] भगत सिंह के विचार ब्रिटिश सत्ता के शोषण से मुक्ति के लिए थे उनका मानना था'' ईश्वर की उत्पति के बारे में अपना विचार यह है कि मनुष्य ने अपनी सीमाओं, दुर्बलताओं व कमियों को समझने के बाद, परीक्षा की घड़ियों का बहादुरी से सामना करने, स्वयं को उत्साहित करने, सभी खतरो को मर्दानगी के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं एश्वर्य में उसके विस्फोट को बांधने के लिए ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना की।[51] इस प्रकार भगत सिंह पूर्णतः नास्तिक बन गऐ वह यर्थाथवादी थे तथा कल्पना में उनका विश्वास नहीं था। हालांकि कठिनाइयों में ईश्वर मानव के लिए सहायक हो सकता है यह बात भी उन्होनें एक जगह कही'' वास्तव में आदिमकाल में यह समाज के लिए उपयोगी था। विपदा में पड़े–मनुष्य के लिए ईश्वर की कल्पना सहायक होती है।[52] लेकिन उनका स्वयं का ईश्वर में विश्वास नही था जिसका कारण अपनी परिस्थितयां व तर्क थे।

सामाजिक भेदभाव के खिलाफ

भगत सिंह व्यवस्था परिवर्तन के लिए सामाजिक परिवर्तन के भी पक्षधर थे तथा किसी भी प्रकार के वर्गभेद के खिलाफ थे उन्होनें 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। यह लेख जून 1928 के 'किरती' में 'विद्रोह नाम से प्रकाशित हुआ था।[53] इस लेख में उन्होनें अछूतों की समस्या का चित्रण करते हुऐ लिखा। ''हमारे देश जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुऐ। यहां अजब अजब सवाल उठते रहते है। एक अहम सवाल अछूत समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड लोग अछूत कहलाते है उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जाएगा उनके मंदिरों में प्रवेश से देवगण नाराज हो उठेंगे। कुंए से उनके द्वारा पानी निकालने से कुंआ अपवित्र हो जाएगा। ये सवाल 20वीं सदी में किए जा रहे है जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है। आगे वह लिखते हैं हमारा देश बहुत आघ्यात्मवादी है लेकिन हम मनुश्य को मनुश्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं। हम उलाहना देते है कि हमारे साथ विदेश में अच्छा सलूक नही होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रेजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है। वे कहते है कि जब तुम एक इंसान को पीने के लिए पानी देने से भी इंकार करते हो जब तुम उन्हें स्कूल में भी नहीं पढने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की मांग करो। जब तुम एक इंसान को समान अधिकार देने से भी इंकार करते हो तो तुम अधिक राजीनतिक अधिकार मांगने के कैसे अधिकारी बन गए।[57] जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मो में शामिल हो जाऐंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे जहां उनसे इन्सानों जैसा व्यवहार किया जाऐगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दु कौम को नुकसान पहुंचा रहे है, व्यर्थ होगा।[58] कुता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में फिरता है। लेकिन एक इंसान का हमसे स्पर्श हो जाऐ तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है।[59] क्या खूब चाल है। सबको प्यार करने वाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अधूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है। भगवान नाराज हो जाता है।[60] इस प्रकार भगत सिंह ने भारतीय समाज में व्यापत समस्या को उठाया तथा आगे इसका समाधान भी बताया उनके अनुसार अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का निदान क्या हो? इसका जवाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान है तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य विभाजन से[61] अतः भगत सिंह अछूत समस्या को सामाजिक विकास में बाधक मानते थे इसी कारण उन्होनें समस्या की जड़ व समाधान प्रस्तुत किया।

विश्वप्रेम की भावनाः–

भगत सिंह के लेखों से उनका विश्व प्रेम भी झलकता है बलवन्त सिंह के छदम नाम से लिखा गया भगत सिंह का लेख कलकता से 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ था। यह दो अंको में छपा था। इन अंको की तारीखे क्रमशः 15 नवम्बर 1924 एवं 22 नवम्बर 1924 थी[62] इस लेख में उन्होनें लिखा 'विश्वबन्धुता' इसका अर्थ मै तो समस्त संसार में समानता के अतिरिक्त और कुछ नही समझता[63] कैसा उच्च है यह विचार। सभी अपने हो कोई भी पराया न हो कैसा सुखमय होगा वह समय जब संसार से परायापन सर्वथा नष्ट हो जाऐगा।[64] जब तक 'काला–गोरा' सभ्य–असभ्य, शासक–शासित, धनी–निर्धन,

'छूत–अछूत' आदि शब्दो का प्रयोग होता है जब तक कहाँ विश्व बन्धुता और विश्व प्रेम[65]

निष्कर्षः–इस प्रकार भगत सिंह की सोच केवल भारत का विकास व स्वतन्त्रता की नही अपितु सम्पूर्ण विश्व का विकास व स्वतन्त्रता थी जिसे समझने की अवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जगमोहन सिंह चमन लाल (संपादक) भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2010 पृ012
2. वहीं पृ012
3. वहीं पृ012
4. वहीं पृ012
5. चंद्र बिपन आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीतिक अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड नयी दिल्ली 2011 पृ0235
6. वहीं पृ0235
7. जगमोहन सिंह चमन लाल (संपादक) भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2010 पृ044
8. वहीं पृ044
9. वहीं पृ0347
10. वहीं पृ0348
11. वहीं पृ0352
12. वहीं पृ0352-353
13. वहीं पृ0353
14. वहीं पृ0354
15. वहीं पृ0354
16. वहीं पृ0354
17. वहीं पृ0359
18. वहीं पृ0359
19. वहीं पृ0324-325
20. वहीं पृ0324
21. वहीं पृ0325
22. वहीं पृ0325
23. गुप्ता मोहिनी, विश्व गुप्त, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2007 पृ0232
24. वहीं पृ0232
25. वहीं पृ0232
26. वहीं पृ0232
27. जगमोहन सिंह चमन लाल (संपादक) भगत सिंह व उनके साथियों के दस्तावेज राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2010 पृ0325
28. वहीं पृ0325
29. वहीं पृ0256
30. वहीं पृ0257
31. वहीं पृ0258
32. वहीं पृ0259
33. वहीं पृ0259
34. वहीं पृ0262
35. वहीं पृ0263
36. वहीं पृ0264
37. वही पृ0264
38. वही पृ0264
39. वही पृ0288-289
40. वही पृ072-73
41. वही पृ0365
42. वही पृ0365
43. वही पृ0365
44. वही पृ0365
45. वही पृ0365
46. वही पृ0366
47. वही पृ0367
48. वही पृ0368
49. वही पृ0369
50. वही पृ0370
51. वही पृ0374
52. वही पृ0374
53. वही पृ0199
54. वही पृ0199–200
55. वही पृ0200
56. वही पृ0200
57. वही पृ0200
58. वही पृ0200

59. वही पृ0200
60. वही पृ0201
61. वही पृ0201
62. वही पृ060
63. वही पृ060
64. वही पृ060
65. वही पृ063

अश्वनी कुमार
सहायक प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
बनवारी लाल जिंदल सुईवाला महाविद्यालय
तोशाम (भिवानी)
मों0 9896104075
ईमेल- ashwaniksabharwal2011@gmail.com

24

संस्कृत काव्य में कुंतक के वक्रोक्ति का ऐतिहासिक आधार

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

सारांशः—

भारतीय काव्यशास्त्र के प्रकाश स्तम्भ व वक्रोक्ति सिद्धांत के संस्थापक आचार्य कुंतक संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र है |यदपि आचार्य कुंतक को वक्रोक्ति सिद्धांत के संस्थापक के रूप मे जाना जाता है किन्तु इसके बीज कुंतक के पूर्व ही संस्कृत काव्य शास्त्र मे विद्यमान थे |उन्होंने बीज रूप मे विद्यमान काव्य के प्राण स्वरूप वक्रोक्ति को अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर दसवीं सदी मे एक सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया | वक्रोक्तिजीवितम् कुन्तक द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थ है। यह कृति अधूरी ही उपलब्ध हैं।

कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य का 'जीवित ' (जीवन, प्राण, आत्मा) मानते हैं। वक्रोक्तिजीवित में वक्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा माना गया है जिसका अन्य आचार्यों ने खंडन किया है। पूरे ग्रंथ में वक्रोक्ति के स्वरूप तथा प्रकार का बड़ा ही प्रौढ़ तथा पांडित्यपूर्ण विवेचन है। वक्रोक्ति का अर्थ है वदैग्ध्यभंगीभणिति, अर्थात् सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त वाक्य से विलक्षण कथनप्रकार। वक्रोक्ति दो शब्दों 'वक्र' और 'उक्ति' की संधि से निर्मित शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है- ऐसी उक्ति जो सामान्य से अलग हो। टेढ़ा कथन अर्थात जिसमें लक्षणा शब्द शक्ति हो। भामह ने वक्रोक्ति को एक अलंकार माना था। उनके परवर्ती कुन्तक ने वक्रोक्ति को एक सम्पूर्ण सिद्धान्त के रूप में विकसित कर काव्य के समस्त अंगों को इसमें समाविष्ट कर लिया। इसलिए कुन्तक को वक्रोक्ति संप्रदाय का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है।

ऐतिहासिक आधार-

पाणिनि (७०० ई पू) संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैयाकरण हुए हैं। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गांधार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। संस्कृत भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने में पाणिनि का योगदान अतुलनीय माना जाता है। अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारांतर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिंतन, ख़ान-पान, रहन-सहन आदि के प्रसंग स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

आचार्य भारत मुनि का मत -

संस्कृत के आचार्यों ने सृजक तथा पाठक दोनों को दृष्टि में रखते हुए काव्य प्रयोजन पर विचार किया है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' का उल्लेख होता है। किंतु नाट्यशास्त्र में नाम के अनुरूप ही नाट्य प्रयोजनों की चर्चा की गई है। भरतमुनि के अनुसार-

"दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकर्तानां तपस्विनाम
विश्रामजनन लोके नाट्यमेतद भविष्यति।"

अर्थात दुख, श्रम, शोक से आर्त तपस्वियों के विश्राम के लिए ही लोक में नाट्य का उद्भव हुआ है। अन्य एक स्थल पर काव्य प्रयोजनों की ओर इंगित करते हुए वे लिखते है, कि धर्म, यश, आयु वृद्धि, हित-साधन, बुद्धि-वर्धन एवं लोकोपदेश ही नाट्य प्रयोजन है।

आचार्य आनंदवर्धनका मत—

आनंद वर्धन आनंद की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन मानते है। दूसरे शब्दों में रसास्वादन को वे काव्य का प्रमुख प्रयोजन मानते है। आचार्य अभिनवगुप्त,आचार्य कुंतक आदि ने भी काव्य प्रयोजनों पर अपने विचार व्यक्त किए है। इन सभी में आचार्य मम्मट का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है। वे कहते है -

"काव्य यशसेर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये
सद्यःपरिनिर्वृतये कांतासम्मितयोपदेश युजे।

वक्रोक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा तथा प्रतिपादन का श्रेय कुन्तक को है परन्तु इसकी परम्परा प्राचीन है। भामह के पूर्ववर्ती कवियों बाण, सुबन्धु आदि में इसके संदर्भ प्राप्त होते हैं।महाकवि कालिदास ,बामन ,दण्डी ,आदि कवियों ने वक्रोक्ति का प्रयोग अपने काव्य मे किये है |

कालिदास ने मेघ दूत नामक अपने महाकाव्य मे वक्रा: पंथा: शब्द का टेढ़े मार्ग के अर्थ मे प्रयोग किया है |बाणभट्ट ने हर्ष चरितग्रंथ मे वक्रोक्ति की पुष्टी की है विभिन्न आचार्यों का मत इस प्रकार है

आचार्य भामह का मत -

भामह ने वक्रोक्ति का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। उन्होंने वक्रोक्ति में शब्द और अर्थ, दोनों का अंतर्भाव माना है। उन्होंने वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति का समान अर्थ में प्रयोग किया है। अतिशयोक्ति का अर्थ है लोकातिक्रांत गोचरता। वक्रोक्ति को इसी कारण भामह मूल अलंकार मानते हैं। इसके बिना वाक्य काव्य न रहकर वार्ता मात्र रह जाता है। आचार्य भामह काव्यालंकार में दो बातों को आधार बनाकर काव्य प्रयोजन की चर्चा करते है—

१. कवि एवं पाठक को आधार मानकर
२. केवल कवि को आधार मानकर।

कवि और पाठक को आधार मानकर काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए वे कहते है -

"धर्मार्थ - काम-मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासुच
करोति कीर्ति प्रीति च साधु काव्यनिवेषणम्।"

आचार्य दण्डी का मत -

दंडी ने भी वक्रोक्ति को भामह के समान महत्व दिया है। दंडी ने वांडमय के दो भेद बताये हैं-

1- स्वाभावोक्ति
2- वक्रोक्ति

दंडी ने वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति को समस्त अलंकारों के मूल में स्वीकार किया है। भामह और दंडी में केवल यह अंतर है कि भामह स्भावोक्ति को वक्रोक्ति की परिधि में स्वीकार करते हैं और दंडी उसे भिन्न मानते हुए वक्र कथन से कम महत्वपूर्ण समझते हैं।

आनन्दवर्धन का मत -

आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति की स्वतंत्र व्याख्या नहीं की है। उन्होंने इसे विशिष्ट अलंकार मानकर इसके सामान्य तथा व्यापक रूप को स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने भामह के वक्रोक्ति संबंधी महत्व को स्वीकार किया है |

आनन्दवर्धन ने वक्रोक्ति की स्वतंत्र व्याख्या नहीं की है। उन्होंने इसे विशिष्ट अलंकार मानकर इसके सामान्य तथा व्यापक रूप को स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने भामह के वक्रोक्ति संबंधी महत्व को स्वीकार करते हुए अतिशयोक्ति तथा वक्रोक्ति को पर्याय माना और सभी अलंकारों को अतिशयोक्ति गर्भित स्वीकार किया है।

आचार्य मम्मट का मत -

मम्मट का काव्य लक्षण प्रौढ़ एवं सुदीर्घ चिंतन का परिणाम है। उनके अनुसार दोषरहित, गुणसहित तथा यथासंभव अलंकारयुक्त शब्दार्थ ही काव्य है। उन्होंने काव्य में अलंकार की स्थिति वैकल्पिक मानकर उसे गौण बना दिया है

- "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"

अपने प्रसिद्ध ग्रंथ'काव्य प्रकाश' में मम्मट ने काव्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि वहां (काव्य में)शब्द और अर्थ का सहभाव दोष रहित,गुण सहित और कहीं पर बिना अलंकृति के भी होता है। अदोष तात्पर्य है काव्य दोषों जैसे क्लिष्टत्व,श्रुतिकटुत्व,ग्राम्यत्व,अश्लीलत्व आदि दोषों से रहित होना चाहिए। भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट काव्य गुणों जैसे माधुर्य, ओज,समता,समाधि,श्लेष आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। ऐसे शब्दार्थ के संयोजन में कहीं कहीं बिना अलंकार के भी काम चल सकता है।

आचार्य जगन्नाथ का मत –

''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। रमणीय का अर्थ वही पूर्ववर्ती रसात्मकता है। यहाँ मौलिक स्थापना यह है कि काव्यत्व शब्द में निहित होता है न कि सम्पूर्ण वाक्य में। रमणीयता या चारूत्व की स्थिति शब्द में मानने के पीछे वेदांत दर्शन और व्याकरण को आधार बनाया गया है।

आचार्य वामन का मत –

रीतिरात्मा काव्यस्य' रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले वामन ने काव्य का कोई स्वतंत्र लक्षण नहीं दिया है, किंतु रीति वर्णन में उनके विचार उपलब्ध होते हैं। उनके अनुसार सौंदर्य के कारण काव्य ग्राह्य होते हैं और अलंकार को ही सौंदर्य कहते हैं। "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौंदर्यमलंकाराः।"

काव्य में सौंदर्य दोषों के त्याग और गुणों के ग्रहण के कारण उत्पन्न होता है। वे गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ को ही काव्य कहते हैं। वामन अलंकारों की अपेक्षा गुण को अधिक महत्व देकर काव्य-चिंतन को एक नई दिशा प्रदान करते हैं, साथ ही भामह और दंडी के विचार-परंपरा को आगे बढ़ाते हैं।

आचार्य विश्वनाथ का मत -

विश्वनाथ के अनुसार "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य होता है। यहाँ आचार्य विश्वनाथ ने पहली बार शब्दार्थ की जगह वाक्य में काव्यत्व की स्थिति मानी है। उनका कहना है कि केवल सुन्दर शब्दों को एक साथ रख देने से काव्य नहीं हो जाता। काव्यत्व तो तब होगा जब वे सब एक वाक्य का रूप लेकर आएं और वाक्य भी रसात्मक होना चाहिए। रसात्मक के भीतर चारूत्व, दोषराहित्य, गुणों का समावेश और समुचित अलंकार विधान भी आ जाता है। उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों के मन्तव्यों का समावेश कर उसे रस से जोड़ कर काव्य तत्व के रूप में रसात्मकता को मान्यता दी, जो कि उचित ही था।

अभिनवगुप्त का मत -

अभिनवगुप्त (10-11वीं सदी) ने वक्रोक्ति के सामान्य रूप को स्वीकार किया है। इनके अनुसार शब्द और अर्थ की वक्रता का आशय उनकी लोकोत्तर स्थिति है तथा इस लोकोत्तर का अर्थ अतिशय ही है|

आचार्य कुंतक के अनुसार –

वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रवर्तक कुंतक ने अपने ग्रंथ वक्रोक्ति जीवितम् में वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहा है। उन्होंने वक्रोक्ति के अंतर्गत सभी काव्य सिद्धांतों का समाहार करते हुए समस्त काव्यांगों- वर्ण चमत्कार, शब्द सौंदर्य, विषयवस्तु की रमणीयता, अप्रस्तुत-विधान, प्रबंध कल्पना आदि को उचित स्थान दिया है। कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति केवल वाक्-चातुर्य अथवा उक्ति चमत्कार नहीं है, वह कवि व्यापार अथवा कवि कौशल है।

कुंतक, अलंकारशास्त्र के एक मौलिक विचारक विद्वान थे। ये अभिधावादी आचार्य थे जिनकी दृष्टि में अभिधा शक्ति ही कवि के अभीष्ट अर्थ के द्योतन के लिए सर्वथा समर्थ होती है। इनका काल निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं। किंतु विभिन्न अलंकार ग्रंथों के अंतःसाक्ष्य के आधार पर समझा जाता है कि ये दसवीं शती ई. के आसपास हुए होंगे।

कुन्तक अभिधा की सर्वातिशायिनी सत्ता स्वीकार करने वाले आचार्य थे। परंतु यह अभिधा संकीर्ण आद्या शब्दवृत्ति नहीं है। अभिधा के व्यापक क्षेत्र के भीतर लक्षणा और व्यंजना का भी अंतर्भाव पूर्ण रूप से हो जाता है। वाचक शब्द द्योतक तथा व्यंजक उभय प्रकार के शब्दों का उपलक्षण है। दोनों में समान धर्म अर्थप्रतीतिकारिता है। इसी प्रकार प्रत्येयत्व (ज्ञेयत्व) धर्म के सादृश्य से द्योत्य और व्यंग्य अर्थ भी उपचारदृष्ट्या वाच्य कहे जा सकते हैं।

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते। (वक्रोक्तिजीवित 1.10)

कविकर्म की कुशलता का नाम है वैदग्ध्य या विदग्धता। भंगी का अर्थ है - विच्छित, चमत्कार या चारुता। भणिति से तात्पर्य है - कथन प्रकार। इस प्रकार वक्रोक्ति का अभिप्राय है कविकर्म की कुशलता से उत्पन्न होनेवाले चमत्कार के ऊपर आश्रित रहनेवाला कथनप्रकार। कुंतक का सर्वाधिक आग्रह कविकौशल या कविव्यापार पर है|

डा० नगेन्द्र का मत –

डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार "आधुनिक शब्दावली में इसे कलावाद कह सकते हैं- काव्य का सर्वप्रमुख तत्व कला है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कुंतक ने अपने सिद्धांत में विषय-वस्तु का निषेध किया है। उन्होंने काव्य वस्तु की स्वाभाविक रमणीयता को स्वीकार किया है। कवि को काव्य वस्तु के सहृदय-रमणीय धर्मों को व्यक्त करना चाहिए। यह कवि प्रतिभा से ही संभव है। इस प्रकार उनके अनुसार अंततः कवि व्यापार ही प्रमुख है|

वक्रोक्ति का अन्य सिद्धान्तों से सम्बन्ध-

भारतीय काव्य सिद्धान्त में रस सिद्धांत अनुभूति अथवा भावना पर आधारित है और अलंकार सिद्धांत कवि कल्पना पर आधारित है। वक्रोक्ति सिद्धांत का संबंध इस दृष्टि से अलंकार सिद्धांत से है। वक्रोक्ति में अलंकारों के कल्पना वैचित्र्य को व्यापक आधार पर स्वीकार किया गया है। यह कल्पना कविनिष्ठ है, सहृदयनिष्ठ नहीं। ध्वनि तथा वक्रोक्ति का अंतर भी यही है कि ध्वनि की कल्पना सहृदयनिष्ठ है और वक्रोक्ति की कल्पना काव्यनिष्ठ। अतः ध्वनि का दृष्टिकोण व्यक्तिपरक है और वक्रोक्ति का वस्तुनिष्ठ। कुंतक ने रस को वक्रोक्ति का प्राण मानकर कल्पना के साथ भावना के महत्व को भी स्वीकार किया है। कुंतक ने रस को वक्रता का विशिष्ट अंग मान कर भी अंगी वक्रता को ही माना है। वक्रता के बिना रस की स्थिति संभव नहीं है जबकि रस के बिना वक्रता की अपनी स्वतंत्र स्थिति है। कुंतक ने ऐसी स्थिति को महत्व नहीं देते हुए रसविहीन वक्रता को तिरस्कार योग्य माना है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त सभी आचार्यों में मम्मट, विश्वनाथ तथा जगन्नाथ के लक्षण अधिक व्यवस्थित तथा भारतीय काव्य-लक्षण-अवधारणा के तीन चरण हैं। अदोषता, रसवत्ता एवं रमणीयता - इन तीन विशिष्टताओं से युक्त लक्षण प्रस्तुत कर संस्कृत-आचार्यों ने काव्य में भाव, कला एवं बुद्धि का समाहार किया है।

हिंदी में रामचंद्र शुक्ल ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा –

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है।''

हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।" शुक्ल जी की यह परिभाषा बताती है कि भारतीय साहित्यशास्त्र व्यावहारिक एवं संतुलित है। रस से उसका

अभिप्राय आनंदबोध अथवा सौंदर्यबोध से है। रमणीयता जीवन के उस तत्व का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें अलौकिक भावना का सौंदर्य निहित होता है जो लोकजीवन को प्रभावित करता है। जीवन का राग झंकृत करने वाले काव्य-लक्षण की प्रस्तुति भारतीय काव्यशास्त्र की उपलब्धि है, जिसमें उसके बाह्य एवं आंतरिक पक्षों का समन्वय हुआ है।

कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धांत व्यापक और समन्वयशील सिद्धांत है। इसकी उद्भावना के मूल में अलंकार सिद्धांत की परंपरा के साथ ध्वनि सिद्धांत है। कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत में संपूर्ण काव्य को स्वीकृति मिली है। उनके सिद्धांत में बल भले ही कला पक्ष पर हो पर उनकी व्याख्या के अंतर्गत वस्तु पक्ष तथा भाव पक्ष का पूरा ध्यान रखा गया है | लेख में सन्दर्भ या स्रोत नहीं दिया गया है।

संदर्भ-

१-आचार्य विश्वेश्वर: हिंदी वक्रोक्ति जीवित, दिल्ली, 1957;

२-बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग 2, काशी, सं. 2012;

३-सुशीलकुमार दे: वक्रोक्तिजीवित का संस्करण तथा ग्रंथ की भूमिका, कलकत्ता

४-काव्य मीमांसा : कविराज शेखर , सं . पंडित केदारनाथ शर्मा सारस्वत , ज्ञानमण्डल लिमिटेड प्रकाशन , वाराणसी , सं0 1980

५-काव्य प्रकाश , सं0 डॉ0 नगेन्द्र , आचार्य मम्मट , ज्ञानमण्डल लिमिटेड

६-संस्कृत दर्पण सं० शेषनाथ मिश्र, चौखम्भा ओरियन्टालिया

७-पाणिनिय शिक्षा

८-हिन्दी साहित्य का इतिहास ,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ,पापुलर बुक डिपो जयपुर

डॉ० दिनेश मणि त्रिपाठी(प्रधानाचार्य)

एल० पी० के० इंटर कॉलेज

सरदार नगर बसडिला गोरखपुर(उत्तर प्रदेश)

25

विश्व भाषा की ओर हिंदी

डॉ0 प्रवेश कुमारी

सारांशः–

21वीं सदी 20वीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है तथा भौगोलिक दूरियां अपनी अर्थवत्ता खो रही रही हैं। विगत तीन शताब्दियों पर विचार करें तो कई रोचक निष्कर्ष पा सकते हैं। यदि अठारहवीं सदी आस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है; तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व की। इसी तरह बीसवीं सदी अमेरिका व सोवियत संघ के वर्चस्व के रूप में विश्व नियति का निदर्शन करने वाली रही है, मगर आज स्थिति यह है कि लगभग समस्त विश्व दबी जुबान में ही सही, यह कहने लगा है कि इक्कीसवीं सदी भारत के नाम रहेगी।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देता है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः महत्त्वपूर्ण बन जाती है ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए एक वरदान के समान है। यह तय है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है। इस समय हिंदी को अंतरराष्ट्रीय दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह अनेक विदेशी भाषाओं को न केवल स्वीकार करती है, बल्कि विश्व की समस्त भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। आज के वैश्विक फलक पर हिंदी स्वयं को एक संपर्क भाषा, प्रचार भाषा और राज भाषा के साथ–साथ वैश्विक भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित करती जा रही है। विश्व परिदृश्य में नजर दौड़ाएं तो आज हिंदी एवं हिंदी साहित्य विश्व स्तर पर विकसित हो रहा है।

मुख्य शब्द – वर्चस्व, हैसियत, वैश्विक, फलक, अंतरराष्ट्रीय, प्रख्यात, तादाद, समृद्ध सर्वस्वीकृत, बेहतर, संस्कृति, अतिशयोक्ति।

भूमिका

हिंदी भारतीय संस्कृति की भाषा है। यह हमारे धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म को वैश्विक स्तर पर आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यही कारण है कि आज पूरा विश्व हिंदी भाषा को सीखने, हिंदी भाषा में काम करने के लिए तत्पर है। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि हिंदी वैश्विक सम्मेलनों में हिंदी प्रेमियों का अपार जनसमूह एकत्र होता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी निरंतर अपनी आवश्यकता सिद्ध करती जा रही है। विश्वभर में हिंदी सीखने के लिए जो गहरी अभिरूचि जागी है उसका सांस्कृतिक कारण होने के साथ–साथ आर्थिक कारण भी है। दूसरे देशों में हिंदी इसलिए भी सिखाई जाती है ताकि वे देश अपने उत्पादों को भारत रूपी मंडी में बेच सके और यह कार्य तभी सफल हो सकता है जब वहां के लोगों को हिंदी आये। भौगोलिक दृष्टि से भी हिंदी विश्व की भाषा बनने की ओर अग्रसर है, क्योंकि हिंदी बोलने वाले, लिखने वाले या समझने वाले पूरे विश्व में हैं।

हिंदी का विस्तार

हिंदी जानने व समझने वाले लोग आज विश्वभर में मिल जाते हैं। नेपाल, बांग्लादेश, मॉरिशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, भूटान, म्यांमार, कुवैत, बहरीन, ओमान, पाकिस्तान, कतर, सउदी–अरब, अमीरात, श्रीलंका, दक्षिण अमेरिका आदि देशों में हिंदी को बोलने, पढ़ने, लिखने व समझने वाले लोग हमें मिल जाएंगे।

"हिंदी जानने व बोलने वालों की तादाद 65 करोड़ के आस–पास है। हिंदी 150 देशों में बोली जाती है, भले वहां एक हजार लोग ही हिंदी क्यों न बोलते हों। 15 से ज्यादा हिंदी के सर्च इंजन मौजूद हैं। हिंदी इंटरनेट पर बहुत तेजी से बढ़ रही है, अंग्रेजी से कई गुणा तेजी से। अमेरिका के 45 और दुनिया के 170 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। दुनिया की किसी भी बोलने वाली भाषा के मुकाबले हिंदी बोलने वालों की तादाद हाल के दशकों में सबसे ज्यादा बढ़ी है।"

"हिंदी वैश्विक स्तर पर प्रख्यात है। अब विदेशों में हिंदी शिक्षकों की मांग बढ़ती जा रही है। करीब 176 विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा को पढ़ाया जा रहा है। इसके लिए समाचार पत्र, बैंकों, मंत्रालय, स्कूल में व्यापक अवसर हैं।"

भूमण्डलीकरण के इस बाजारवादी दौर में हिंदी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। अपने उत्पादों के विज्ञापन में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिंदी को बड़े पैमाने पर उपयोग कर रही हैं। हिंदी बाजार की सबसे शक्तिशाली भाषा के रूप में सामने आ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में चार भाषाओं अंग्रेजी, हिंदी, स्पेनिश और चीनी का भविष्य वैश्विक बाजार में उज्जवल है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का झुकाव हिंदी की ओर है। अमेरिका, कोरिया, जापान और रूस ही नहीं अन्य देश भी हिंदी के अध्ययन –अध्यापन की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

हिंदी के वैश्विक होने का दूसरा आधार है इसकी अंतःशक्ति और साहित्यिक कार्य। भारत की सभ्यता संस्कृति, धर्म और दर्शन के रूप में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा ने सदैव विश्व को अपनी और आकर्षित किया है। संस्कृत, पाली प्राकृत और अपभ्रंश के विकास मार्ग से होकर गुजरी हिंदी को जहाँ विरासत में इन भाषाओं का समृद्ध भण्डार मिला वहीं इसने अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात किया है। खड़ी बोली हिंदी का विकास ब्रजभाषा, अवधी, मगही, बघेली, बुंदेलखंड़ी आदि बोलियों के संयोग से हुआ है। इसके अतिरिक्त बंग्ला, असमिया, उड़िया, गुजराती, मराठी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की आदि भाषा संस्कृत है। यही कारण है कि हिंदी भाषा का इन भाषाओं से भी अंतः संबंध है। इतनी सारी विभिन्नताओं को अपने अंदर समा लने की शक्ति हिंदी भाषा में ही है। इस तरह से हिंदी भाषा का अपना एक समृद्ध भण्डार है। यही वजह है कि हिंदी भाषा शब्द संख्या की दृष्टि से संसार की सबसे समृद्ध भाषा मानी जाती है। हिंदी ने विश्व को

उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएं दी हैं। पं0 जवाहर लाल नेहरू हिंदी के विषय में लिखते हैं–

"हिंदी एक जानदार भाषा है, वह जितनी बढ़ेगी, देश का उतना ही नाम होगा।"

भारत की बढ़ती हुई शक्ति के साथ हिंदी का वर्चस्व और संख्या बल भी वैश्विक धरातल पर निरंतर बढ़ रहा है।

"माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के हिंदी व्याख्यानों ने भी हिंदी के प्रति रूझान पैदा किया है। माननीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में दिये जा रहे व्याख्यानों ने नई पीढ़ी में हिंदी के प्रति एक चेतना और ललक पैदा की है। वर्तमान सरकार का ज्यादातर मंत्रिमंडल हिंदी में भाषण दे रहा है।"

अतः अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को निरंतर समृद्ध बनाने की दिशा में देश – विदेश के अनेक विद्वान, शिक्षक व भाषा विद् निरंतर कार्यरत हैं।

तकनीकी क्षेत्र में हिंदी

हिंदी के विश्वव्यापी इस प्रसार में वर्तमान समय की सर्वस्वीकृत तकनीकी सूचना प्रौद्योगिकी का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, व्ह्टसअप, ट्विटर, लिंकड़–इन, स्नैप चैट आदि न जाने कितनी ही एप्लीकेशनस पर हिंदी भाषा की मौजूदगी देखी जा सकती है। बहुत सारी ऐसी महत्त्वपूर्ण साइट्स हैं जिन पर जाकर हम हिंदी के विषय में जान सकते हैं, जानकारियाँ ले सकते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण वेब–साइट्स का परिचय देना समसामयिक होगा।

"www.indialanguages.com
भारतीय भाषा साहित्य
www.tdil.gov.in
भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी
www.dictionary.com
विश्व की प्रमुख भाषाएँ
www.rosettastone .com
भाषा हेतु इलेक्ट्रोनिक सुविधा
www.bharatdarshan.com
न्यूजीलैड हेतु हिंदी साहित्य
www.unl.ias.unw.edu
टोकिया हेतु

ऐसी ही सैकड़ों साइट्स हैं, जहां से मन पंसद हिंदी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान समय में उसी भाषा को प्रधानता मिलेगी, जिसका व्याकरण विज्ञान–संगत होगा, जिसकी लिपि कम्प्यूटर लिपि होगी। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि ये सभी विशेषताएँ हिंदी भाषा में विद्यमान हैं। इसके कार्य करने की पद्धति सरल व सुगम है। इन सभी विशेषताओं के साथ हिंदी सही अर्थों में विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

हिंदी विश्व भाषा की ओर

हिंदी भारत की राष्ट्र भाषा होने के साथ–साथ विश्व के अन्य देशों में भी पर्याप्त संख्या में लोगों द्वारा लिखी और बोली जाती है। लगभग 170 विश्वविद्यालयों में छात्र–छात्राएं हिंदी पढ़ रहे हैं, रिसर्च वर्क भी कर रहे हैं। वैश्विकरण के संदर्भ में हिंदी के प्रति सकारात्मक प्रवृतियाँ इस प्रकार दिखाई दे रही हैं–

- भौगोलिक आधार पर हिंदी विश्व भाषा है, क्योंकि इसके बोलने–समझने वाले सभी महाद्वीपों में फैले हैं।
- जनतांत्रिक आधार पर हिंदी विश्व भाषा है, क्योंकि हिंदी बोलने वालों की संख्या ससांर में तीसरी है।
- एशियाई संस्कृति में अपनी विशिष्ट भूमिका के कारण हिंदी एशियाई भाषाओं से अधिक एशिया की प्रतिनिधि भाषा है।
- हिंदी का किसी देशी या विदेश भाषा से विरोध नहीं है अनेक भाषाओं के शब्द ग्रहीत होकर हिंदीमय बन गये हैं। यही कारण है कि आज हिंदी का शब्दकोश विश्व का सबसे बड़ा भाषिक शब्दकोश है।
- हिंदी का साहित्येतर लेखन बढ़ा है तथा लेखन का स्तर भी ऊंचा होता जा रहा है।
- गुणवता की दृष्टि से अनुवाद की स्थिति बेहतर है।
- प्रवासी भारतीय वैश्वीकरण का सबसे प्रत्यक्ष वाहक प्रतीत होते हैं।
- इंटरनेट पर हिंदी स्वीकार्य और लोकप्रिय हो रही है।

निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि हिंदी एक समृद्धशाली भाषा है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम' की पवित्र भावना निहित है, क्योंकि भाषा का सीधा संबंध देश की संस्कृति से होता है। यही कारण है कि हिंदी को भारतीय संस्कृति का मूल आधार कहा गया है जो अपने आँचल में समस्त भारतीय संस्कृतियों को समाहित किये हुए है। हिंदी मात्र भाषा ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की संवाहिका भी है। राष्ट्रीय एकता व सांस्कृतिक चेतना को जोड़ने की क्षमता केवल हिंदी में है। इसलिए यह हमारी संस्कृति का विश्व से साक्षात्कार कराती है। हिंदी भाषा को गुणों की खान कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिंदी की पगड़ी में ऐसे रत्न जुड़े हुए हैं जो दुनिया की किसी अन्य भाषा के पास नहीं हैं। हिंदी के विषय में मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा है–

"हिंदी उन सभी गुणों से अंलकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।"

अतः निःसंदेह कह सकते हैं कि हिंदी भाषा और साहित्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेहद मजबूती के साथ आगे बढ़ रहा है। हिंदी विश्व फलक पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ रही है। भारत को पूरे विश्व के साथ जोड़ने में हिंदी भाषा एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य कर रही है।

संदर्भ सूची

1. Sahityasodha.com
2. हरिभूमि समाचार पत्र
3. रोहतक भास्कर समाचार पत्र, 25 अक्तूबर, 2020, पृ0 2
4. विश्व हिंदी पत्रिका, 2019, पृ0 162
5. राजभाषा भारतीय पत्रिका, अप्रैल–जून 2018, पृ0 82
6. वही0, पृ0 94
7. विश्व हिंदी पत्रिका, 2019, पृ0 179

डॉ0 प्रवेश कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक
दूरभाष : 9466429844
E-mail : parveshruhil4@gmail.com

26

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सरोकार के समन्वयवादी संत कवि बौआ साहब का दर्शन

पप्पु कुमार

सारांशः–

यक्ति और समाज में अविच्छेद सम्बन्ध है। समाज से अलग रहकर व्यक्ति के अस्तित्व और अस्मिता की कल्पना नहीं की जा सकती है। समाज वह धरातल है जो व्यक्ति को सुसभ्य, सुसंस्कृत तो करता ही है, उसमें परिष्कार और संस्कार की चेतना से आभामंडित भी करता है। हिन्दी–साहित्य में संतों का साहित्य वस्तुतः अध्यात्म–विज्ञान का नैसर्गिक आयाम है, जो व्यक्ति को पार्थिव सत्ता (भौतिक सत्ता) से अ–पार्थिव सत्ता (अभौतिक सत्ता) की ओर उन्मुख करता है। संत बौआ साहब संत काव्य परम्परा के एक ऐसे मनीषी और चिंतक रहे हैं जिनके दर्शन के परिधि में भारत का सामाजिक और आध्यात्मिक क्षितिज रहा है।

प्रसंगानुसार दर्शन क्या है? का विश्लेषण आवश्यक है– मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। सोचना–समझना मनुष्य का विशिष्ट गुण है। इसी गुण के फलस्वरूप वह पशुओं से भिन्न समझा जाता है। संत बौआ साहब ने मनुष्य को अन्य मनीषियों की भाँति ही विवेकशील प्राणी कहकर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया है। विवेक अर्थात् बुद्धि की प्रधानता रहने के फलस्वरूप मानव विश्व की विभिन्न वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने का प्रयास करता रहा है। मनुष्य की बौद्धिकता उसे अनेक प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए बाध्य करती रही है। वे प्रश्न इस प्रकार हैं– आस्तिक वाद का तथ्य एवं सत्य क्या है? आत्मा क्या है? ईश्वर है अथवा नहीं? ईश्वर का स्वरूप क्या है? ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण क्या है? जीवन का चरम लक्ष्य क्या है? नैतिक निर्णय का विषय क्या है? विश्व की उत्पत्ति का कारण और उसका स्वरूप क्या है? विश्व का कोई प्रयोजन है अथवा यह प्रयोजन हीन है? इत्यादि।

'दर्शन' उक्त प्रश्नों का युक्तिपूर्वक उत्तर देने का प्रयास मात्रा है। दर्शन में उक्त प्रश्नों का उत्तर देने के लिए भावना या विश्वास का सहारा नहीं लिया जाता है, बल्कि बुद्धि का सम्यक् प्रयोग किया जाता है। उक्त प्रश्नों का उत्तर मानव अनादि काल से देता आ रहा है और भविष्य में भी निरन्तर देता रहेगा। इन प्रश्नों का उत्तर जानना मानवीय स्वभाव का अंग है।

भारत में फिलॉस्पफी (फिलॉस– प्रेम, सौफिया– ज्ञान) को 'दर्शन' कहा जाता है। 'दर्शन' शब्द संस्कृत के दृश् धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाय'। भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व और परम तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। भारतीय दार्शनिक केवल तत्त्व की बौद्धिक व्याख्या से ही सन्तुष्ठ नहीं, होते, बल्कि वह तत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना उनका अभीष्ट होता है।

भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता व्यावहारिकता है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शन का सृजन हुआ। जब मानव ने अपने को दुखों के आवरण से घिरा हुआ पाया तब उसने पीड़ा और आक्रोश से छुटकारा पाने की कामना की। इस प्रकार दुःखों से निवृत्ति के लिए दर्शन को अपनाया। इसीलिए प्रो॰ हिरियाना ने कहा भी है– "पाश्चात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन का आरम्भ आश्चर्य एवं उत्सुकता से न होकर जीवन के नैतिक एवं भौतिक बुराईयों के शमन के निमित्त हुआ था। दार्शनिक प्रयत्नों का मूल उद्देश्य था जीवन के दुःखों का अन्त ढूँढ़ना और तात्त्विक प्रश्नों का प्रादुर्भाव इसी सिलसिले में हुआ।" अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में ज्ञान की चर्चा ज्ञान के लिए न होकर मोक्षानुभूति के लिए हुई है। अतएव भारत में दर्शन का अनुशीलन मोक्ष के लिए ही किया गया है।

मोक्ष की प्राप्ति आत्मा के द्वारा ही मानी गई है। यही कारण है कि चार्वाक को छोड़कर सभी दर्शनों में आत्मा का अनुशीनलन हुआ है। आत्मा के स्वरूप की व्याख्या भारतीय दर्शन के अध्यात्मवाद का सबूत है। अतः व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता दोनों सामाजिक धरातल पर सम्बद्ध है, जो भारतीय दर्शन की प्रधान विशेषतायें हैं।

जब हम संत बौआ साहब के रचनाओं का अध्ययन एवं चिंतन करते हैं तो पाते हैं कि उनके 'दर्शन' में लोक–संस्कृति, लोक–संवेदना और लोक–जीवन की मीठी सुगन्ध है। वे सामाजिक स्तर पर अपने समय में व्याप्त सभी प्रकार की कु–प्रथा एवं कु–रीति, अ–मानवीय परम्परा, बाह्याडम्बर और धार्मिक पाखण्ड आदि सभी प्रकार की सामाजिक बुड़ाईयों की समाप्ति हेतु प्राणपन से क्रांतिकारी संघर्ष किया है। उन्होंने रूढ़िवादी धार्मिक सिद्धान्तों और सामाजिक अंधविश्वासों के खोखलापन को न केवल ललकारा ही, बल्कि एक ऐसे समाज की परिकल्पना की जिसमें व्यापक राष्ट्रीयता एवं अन्तरराष्ट्रीयता की भावना सन्निहित हो।

लोक संस्कृति एवं लोक–संवेदना का मूलोद्देश्य संस्कारवान व्यक्तियों के निर्माण से है। उसके अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति, अपने अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति कर पा रही है। यों कहने को तो विश्व में सभ्यताएँ अनेकों हैं, परंतु सही कहा जाए तो संत बौआ साहब का मानना है– "संस्कृति मात्रा एक ही है–जिसे हम भरतीय संस्कृति के नाम से जानते व पुकारते हैं। भारतीय संस्कृति ही एक मात्रा ऐसी संस्कृति है, जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में सच्चा व अच्छा मानव बनाने की क्षमता एवं भावना से ओत–प्रोत है। भारतीय संस्कृति के मूल में ही ऐसी भावनाएँ कूट–कूटकर भर दी गइ हैं, जिनको अपनाकर व्यक्ति आत्मसंतोष एवं आत्मोल्लास से परिपूर्ण जीवन सहजता से बिता सकता है।"

संत बौआ साहब लिखते हैं– "जिस तरह इड़ा और पिंगला के योग से सुषुम्ना का, गंगा और यमुना के योग से त्रिवेणी का आविर्भाव होता है, उसी प्रकार संस्कृति धार्मिक परिप्रेक्ष्य में तो अंतर्मुखी जीवन के विकास की प्रेरणा देती है और सभ्यता के रूप में बाह्य–जीवन को भी शुद्ध और ऐसा बनाती है, जिसमें एक मनुष्य किसी भी दूसरे प्राणी के हित का अतिक्रमण न करता हुआ धार्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ता रहे। संस्कृति और सुशोभित बनाया जाता है, वही कार्य व्यक्ति की उच्छृंखल मनोवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित करके

संस्कृति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। किसान जैसे भूमि को खाद, पानी, जुताई आदि से उर्वर बनाता है और बीज बोने से लेकर फसल तैयार होने तक उन पौधों को सींचने, सँभालने जैसी अनेक प्रक्रियाएँ सम्पन्न करता है, वही कार्य संस्कृति द्वारा मानवीय मनोभूमि को उर्वर एवं फलित बनाने के लिए किया जाता है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द आता है। उसका शब्दार्थ भी उसी भाव को प्रकट करता है। अस्त–व्यवस्तता के निराकरण और व्यवस्था के निर्माण के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं, उन्हें 'कल्चर' कहा जाता है। संस्कृति का भी यही प्रयोजन है।"

संत बौआ साहब के 'दर्शन' के अन्तर्गत भारतीय सामाजिक क्षितिज पर लोक–जीवन के परिधि में 'संस्कारवान व्यक्तित्व निर्माण' की प्रक्रिया को श्रेष्ठ माना गया है और इसे आत्म–दर्शन व मोक्ष प्राप्ति की प्रथम इकाई कहना अतिशयोक्ति नहीं माना जा सकता।

संत बौआ साहब के 'दर्शन' का दूसरा प्रधान पक्ष उनका आध्यात्मिक क्षितिज रहा है। यूँ तो उनका दर्शन सद्गुरु कबीर साहब की दार्शनिक चिंतनधारा से पल्लवित–पुष्पित व अनुप्राणित है। या फिर यह कह सकते हैं कि संत बौआ साहब के रचनाओं में कबीर–दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, तथापि उन्होंने सत्य की ओर (आध्यात्मिक पत्रिका) में कुछ विषयों एवं प्रसंगों का वैज्ञानिक व्याख्या भी किया है जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। वह यह कि 'आस्तिक तत्त्व दर्शन' व ईश्वर के सम्बन्ध में संत बौआ साहब लिखते हैं– "बुद्धिवाद ने ईश्वर के अस्तिव को प्रत्यक्षवाद प्रमाण के आधार पर परखना चाहा, पर प्रयोगशाओं में उसकी सत्ता सिद्ध न हो सकी। इन्द्रिय शक्ति ने भी इस सन्दर्भ में कुछ न किया। मस्तिष्क भी प्रमाण न खोज सका और यांत्रिकी, भौतिकी ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली। ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था कि बुद्धिवाद ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता। प्रकृति की क्रम व्यवस्था सुसम्बद्ध और सुनियोजित है ऐसा तो माना गया, पर उसे स्वसंचालित कहकर संतोष कर लिया गया। इसके लिए किसी सृष्टिकर्त्ता का हाथ हो सकता है, इस बात से शोधकर्त्ताओं ने इन्कार कर दिया। नास्तिकवाद की प्रचण्ड लहर इन्हीं वैज्ञानिक इन्कारों से उत्पन्न हुई और आँधी–तूफान की तरह बौद्धिक जगत् पर अपना अधिकार जमाती चली गई।"

"लेकिन विज्ञान ने कभी यह नहीं कहा है– ईश्वर नहीं है। उसने केवल इतना ही कहा कि अनुसंधान प्रक्रिया की पकड़ में ईश्वर जैसी कोई सत्ता नहीं आती। इन्द्रिय बोध के आधार पर सूक्ष्मदर्शी उपकरणों की सहायता से प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक अनुसंधान चलते हैं। इस परिधि में जो कुछ आता है, वही विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है। उसकी छोटी सीमा या मर्यादा है। उससे जितना कुछ जाना और समझा जा सकता है। ज्ञान पकड़ पाता है उसे ही प्रस्तुत करना उसका विषय है, इस मर्यादा में यदि ईश्वर नहीं आया है तो उसका अर्थ यह नहीं कि उसकी सत्ता है ही नहीं।"

"विज्ञान अपने शैशव से क्रमशः विकसित होता हुआ किशोरावस्था में प्रवेश कर रहा है, अभी उसे प्रौढ़, वृद्ध एवं परिपक्व होने में बहुत समय लगेगा। उसे अभी तो आज की गलती कल सुधारने से ही फुरसत नहीं। बालबुद्धि आज जिस बात का जोर–शोर से प्रतिपादन करती है उसके आगे के तथ्य सामने आने पर पूर्व मान्यताएँ बदलने की घोषणा करनी पड़ती है। यह स्थिति संभव है आगे न रहे। जब विज्ञान अपनी किशोरावस्था पार करेगा और यौवन की प्रौढ़ता में प्रवेश करेगा तो उसे ऐसे आधार भी हाथ लग जाएँगे जो आज के भोंड़े उपकरणों की अपेक्षा प्रकृति की अधिक सूक्ष्मता की थाह ला सकें। तब संभवतः उन्हें पदार्थ की भौतिक शक्ति के अतंराल में छिपी हुई चेतना की परतें भी दृष्टिगोचर होने लगेंगी। आज भी इसकी संभावना स्वीकार की जा रही है। इसलिए ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि न होने पर भी विज्ञान ऐसे अनेकों संभावनाओं की तरह ईश्वर की संभावना का भी खण्डन नहीं करता, वह केवल नम्र शब्दों में इतना ही कहता है कि अभी प्रयोगशालाओं ने अपनी पकड़ में ईश्वर को नहीं जकड़ पाया है। उसका खण्डन इसी सीमा तक है। विज्ञानी नास्तिकता दुराग्राही नहीं है। वह अपनी वर्तमान स्थिति का विवरण मात्रा प्रस्तुत करती है।"

"परन्तु नास्तिकतावाद के पृष्ठ पोषण में जोश के साथ लगे दार्शनिकों ने विज्ञान के उसी प्रतिपादन को अपनी मान्यताओं का आधार बनाया है जो ईश्वर के अस्तित्व को प्रयोगशाला में असिद्ध होने की बात कहते हुए किए गए हैं। इससे तो यही प्रतीत होता है कि नास्तिक कहना अथवा कहलाना एक फैशन बन गया है और इस फैशनेबुल प्रतिपादन को पिछली तीन शताब्दियों में तूफानी लहर की तरह विकसित और व्यापक होने का अवसर मिला है। साम्यवादी शासन सत्ता ने प्रस्तुत अनास्था की जड़े और भी अधिक गहरी जमाई, पर लगता है वह उन्माद ठंडा पड़ने लग गया है। विज्ञान को नए सिरे से अपने निर्णय पर विचार करने के लिए पीछे लौटना पड़ रहा है। जड़–पदार्थ अपने आप में नियमित हलचलें करते रह सकते हैं पर अब पुरानपंथियों की तरह तथाकथित प्रगतिशीलों को भी सोचना पड़ रहा है कि सृष्टि संतुलन के जिन रहस्यों का – इकोलॉजी विज्ञान के आधार पर प्रतिपादन होता चला जा रहा है वह अनायास एवं संयोगवश चल रहा है – यह बात पूरी तरह गले नहीं उतरती। स्रष्टा कोई नहीं– उसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं– यह बात आवेश में तो कही जा सकती है, पर गहराई में उतरते ही संदेह उत्पन्न होता है कि इतनी क्रमबद्ध परस्पर पूरक और सोद्देश्य गतिविधियाँ किसी चेतन द्वारा नियंत्रित किए बिना ही किस प्रकार चलती रह सकती है?"

"माना कि यांत्रिकी और भौतिकी के साथ–साथ बौद्धिकी भी प्रत्यक्षवादी उपकरणों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर पा रही है, पर न मानने भर से ही तो समाधान नहीं होता। सृष्टि के संचालन क्रम में इतनी अधिक सुसंबद्धता का होना अनायास ही चल रहा है तो यह अनायास ही स्रष्टा का कार्य होना चाहिए। कर्त्ता के बिना कर्म, प्रेरणा के बिना हलचल, नियंत्रण के बिना व्यवस्था क्योंकर बनी? स्वसंचालित यंत्रों पर भी तो आखिर संचालक नियुक्त रहते हैं। फिर सृष्टि जैसा संयंत्र किस प्रकार बिना किसी बुद्धिमान सत्ता का आधार लिए– क्योंकर चलता रह सकता है? यह प्रश्न पिछड़े कहे जाने वालों से लेकर प्रगतिशीलों तक को समान रूप से संक्षोप उत्पन्न करता है। प्रमाण रहित को क्यों मानें? तर्क उचित है, पर मानने की बात तो और भी अधिक भारी पड़ती है। निगलने का बहुत प्रयत्न करने पर भी वह गले में ही अटकी रह जाती है।"

संत बौआ साहब के 'दर्शन' का केन्द्रीय भाव है– मनुष्य आत्मा को जानें, विवाद से परे ईश्वर के अस्तित्व को माने और आस्तिकवाद के तथ्य को बिना किसी पूर्वाग्रह के संभव हो तो स्वीकार करे या नहीं तो

सहन करे। इन सभी प्रकार के वैचारिक अभिव्यक्ति को संत बौआ साहब अपने एक भजन में इस प्रकार लिपिबद्ध किया है कि–

"सम दर्शन है ज्ञान महान।
नहि कोइ उँच नहीं कोइ नीचा, सब में एक ब्रह्म को जान।
सूकर, स्वान, काक, गीध, नर, सब में आतम एक समान ।।
काष्ट खंड में अग्नि न खंडित, गंगाजल नहि आन।
मिट्टी की मूरत बहु देखों, सब में मिट्टी एक सुजान।।
सुख दुख रोग राग का चक्कर, जग में घूम रहा सब ठाम।
सब में स्थिर मन को राखे, सबसे भिन्न आप को जान।।
'बौआ' साहब ज्ञान एक रस, दिव्य ज्योति भक्तिमय जान।
सदा रहे निर्भय जन पूरा, निंदा स्तुति सुनै न कान।।"

संत बौआ साहब का दर्शन का प्रथान बिन्दु सद्गुरू कबीर साहब कृत 'बीजक' को माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने अपने कई भजनों (पद) में इसका स्वयं उल्लेख किया है–

"जय जय 'बीजक' देव की, गुरु वचन प्रमाणा।
ज्ञान भक्ति सुविचार की, मति सहज अमाना।।
सदाचार सन्मार्ग है, बीजक फरमाना ।
बिनु विचार अधार है, सब कर बौराना।।
जाति पाति के संग में, नाहक ही बौराना।
मानव एक समान है, कह बीजक ज्ञाना।।
शब्द रूप देव का, सद्गरू विज्ञाना।
'बौआ' बीजक देव है, कीजै सन्माना ।।"

जहाँ तक प्रश्न है संत बौआ साहब का दर्शन एवं उनकी कृतियों के सामाजिक सरोकार का, के उत्तर स्वरूप मैं उन्हीं की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ, जिससे स्वतः स्पष्ट हो सकेगा कि संत बौआ साहब का दर्शन एवं उनकी रचनाओं का सामाजिक सरोकार आम–अवाम व लोक–चेतना से कितना गहरा व गम्भीर है, कितना भावनात्मक लगाव है और कितने लोक मंगल व उसके (आम–अवाम के) शुभाकांक्षी है। पंक्तियाँ इस प्रकार है–

"हे देव मंगल मय मिटा दो, कष्ट की उद्भावना।
भगवान परिपूरण करो, शुभ शांति मय यह कामना।।
जग में अविद्या का महा, चहु ओर फैला राज जो।
हे नाथ विद्या ज्योति से, मिट जाय तम का साज सो।।
मन में महा रवि ज्ञान का, सब भाँति से प्रकाश हो।
मिट जाय कलुषित भावना, शुभ प्रेम का प्रिय हास हो।।"

निष्कर्ष – आधुनिक संत कवि बौआ साहब का मानना है कि लोग यदि स्वच्छ नैतिक मानवीय मूल्यों के आधार पर जीवन यापन करता है तो वह मानवतावाद रुपी विशाल वृक्ष का ना केवल पृष्ठ–पोषण करता है, बल्कि आत्म–कल्याण के साथ–साथ जगत कल्याण की सार्वभौमिकता को उपस्थापित भी करता है। मानव जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य ब्रह्म की अनुभूति और मोक्ष की प्राप्ति है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से संत कवि बौआ साहब के ज्ञान एवं दर्शन का सामाजिक सरोकार के परिप्रेक्ष्य में व्यापकता से प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है।

सन्दर्भ–सूची :–

.भारतीय दर्शन की रूप रेखा, पृ.–2, ले. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, पटना, संस्करण–1963.

. सत्य की ओर (आध्यात्मिक पत्रिका), पृष्ठ–21, वर्ष–2007, अंक–.–10, सं. डॉ. बनारसी यादव, कबीर विचार प्रचार संघ, भरवारा, दरभंगा (बिहार)।

. वही, पृष्ठ–23.

. वही, पृष्ठ–25.

. वही, पृष्ठ–12, वर्ष–2007, अंक–11–12.

. वही, पृष्ठ–14, वर्ष–2007, अंक–07–08.

. वही, पृष्ठ–13, वर्ष–2007, अंक–01–02.

. वही, पृष्ठ–15.

. भजनमाला, पृष्ठ–21, लेखक– बौआ साहब, कबीर विचार प्रचार संघ, भरवारा, दरभंगा (बिहार) षष्टम संस्करण–2010.

. वही, पृष्ठ–42.

. वही, पृष्ठ–60–61.

पप्पु कुमार
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग,
ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा ग्राम+पोस्ट– तेपरी
वार्ड संख्या–13
थाना– पिअर
जिला– मुजफ्फरपुर बिहार
पिन कोड– 843115
मोबाइल संख्या– 9155194602

27

समकालीन दौर में कविता की सामाजिक भूमिका और गोरख पाण्डेय की काव्य–दृष्टि

अभिमन्यु कुमार राय

सारांशः–

बहुत समय से कविता की सामाजिक भूमिका पर प्रश्न उठता रहा है। यकीनन कविता सामाजिक मनोभावों के बदलाव का प्रत्यक्ष कारण नहीं होती बल्कि, वे गौण रूप से सामाजिक बदलाव की रूपरेखा तय करती है। कविता मनुष्य की चेतना और भावना को जागृत करने का काम करती है। वह व्यक्ति से परे सामाजिक मनोवृत्ति से संबद्ध है। कवि 'गोरख पाण्डेय' की दृष्टि में कविता एक सामाजिक कर्म है। कवि; कर्म, विचार और भावनाओं के अनुसंधान के पश्चात ही कविता की सृष्टि करता है, ऐसी स्थिति में वह व्यक्तिनिष्ठता से उपर उठकर सामाजिक विचारधारा और स्थिति में परिवर्तन का आकांक्षी होता है। 'गोरख पाण्डेय' मानते हैं कि कुछ कविताएँ समाज के लिये अनुपयोगी और अहितकर भी होती है। इसका कारण है कि वह कवि किसी प्रकार के लोभ, मोह या दबाव में पड़कर काव्य–रचना करता है, जो वह कविता होते हुए भी कविता के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर पाती। वह सामाजिक बदलाव की गति को धीमा कर सकती है या व्यक्ति को समाज से उपर दिखा सकती है। परन्तु, समकालीन कविता की व्यापक पृष्ठभूमि में उक्त विचारधारा का अभाव रहा है, जो कि समकालीन कविता की व्यापकता को और अधिक वैज्ञानिक बनाता है।

गौरतलब है कि समकालीन कविता के दौर में भी विषयगत विविधता विद्यमान है। पूर्व की अपेक्षा इस दौर में कवि आधुनिकता को अपनाते दिखते हैं। फिर भी कविता की मुख्यधारा पूर्व की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से प्रवाहमान है। दूसरी धारा के कवि कविताओं को समाज से काटकर उन्हें मनोरंजन का साधन बनाने पर तुले हुए हैं। ऐसी स्थिति में 'गोरख पाण्डेय' कविता को बदनामी से बचाकर उन्हें सही दिशा में मोड़ने के लिये प्रयासरत दिखते हैं। वे समाज के लिये उन्नत कविता और कविता के माध्यम से उत्कृष्ट समाज बनाने के पक्षधर हैं। कवि समाज के विभिन्न उत्पीड़ित तबके के लिये न्याय, समानता और आजादी की माँग के लिये लेखकों को आमंत्रित करते दिखते हैं। राणा प्रताप से हुए एक साक्षात्कार में गोरख पाण्डेय कहते हैं– "कवि को आत्मा का इंजीनियर कहा गया है, काफी हद तक यह बात सही है। तमाम गलत विचारों, मूल्यों और संस्कारों को तोड़ने में कविता अहम भूमिका निभा सकती है और स्वतंत्रता की राह दिखाने के लिये एक भारी मशाल का काम कर सकती है।"[1]

समाज के माध्यम से कविता को और कविता के माध्यम से मानवता को बनाए रखने के लिये कविता में प्रतिरोध का होना आवश्यक है। प्रतिरोध के अभाव में कविता में स्थिरता आ जाती है। समय के साथ–साथ परिस्थिति और विचारों में परिवर्तन होता है। किसी एक काल खंड में समाज की स्थिति अच्छी भी हो सकती है परन्तु, केवल उसी काल की शैलियों को ध्यान में रखते हुए कविता लिखी जाये तो वह बुरे समय के समाज को प्रभावित नहीं कर पायेगी। कारणवश, सुख और दुःख का असंतुलन होगा साथ ही जो पीड़ित है उसकी पीड़ा और बढ़ती जायेगी। तदनन्तर कविता अपने मूल उद्देश्यों से विमुख होकर उतनी प्रभावी नहीं रह पायेगी। अतः सत्य का उद्घाटन निष्पक्षता के साथ करने में ही कविता की प्रासंगिकता है, चाहे वह नेक कार्यों के समर्थन के लिये हो या फिर बुरे विचारों के प्रतिरोध के लिये। समकालीन दौर में आम जनता का संघर्ष सत्ता से है। सत्तासीनों को जहाँ जनता के मूल अधिकारों की रक्षा हेतु तत्पर होना चाहिए था, वहीं वे उनके अधिकारों का हनन कर उन्हें अवनति के मार्ग पर धकेलते हुए स्वार्थ–सिद्धि को अपना ध्येय मानते हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिरोध ही एक ऐसा माध्यम है जिससे शोषित–पीड़ित मजदूर, किसान, बेबस और लाचारों के अधिकारों को बचाया जा सकता है। लेखक सत्ता से सवाल पूछ सकता है, चाहे वह साहित्य के किसी भी विधा में पूछा जाए। 'गोरख पाण्डेय' की दृष्टि में भी कविता को जीवित बनाये रखने के लिये और उसके समुचित विकास के लिये प्रतिरोध की आवश्यकता होती है। खासकर ऐसे समय में जब सच बोलने वाले और सवाल पूछने वाले कवि, लेखक और कलाकारों के अस्तित्व को शासक वर्गों द्वारा खत्म करने की योजना बनाई जा रही हो। अतएव, यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में प्रतिरोध का स्वर घात के विरोध में प्रतिघात की आवश्यकता से प्रेरित है।

जन अथवा जनता को उसके महत्त्व की अनुभूति करवाना ही 'जनवाद' है। साहित्य के क्षेत्र में 'जनवाद' अपने मूल शब्दकोशीय अर्थ से इतर एक ऐसे 'वाद' के रूप में सामने आता है, जो राजनीति के क्षेत्रा में 'डेमोक्रेसी' के समशील है तथा सामाजिक अवधारणा के रूप में जनाकांक्षा की स्थापना है। वह आम जनता के भावों और विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। 'गोरख पाण्डेय' के कथनानुसार यह कहना अनुचित नहीं है कि साहित्य के क्षेत्र में जनवाद का समग्र विकास समकालीन दौर में होना शुरू हुआ। उन्होंने इस बात को भी चर्चा का विषय बनाया है कि, समकालीन कविता के दौर में दो विरोधी विचारधाराएँ मिलकर साहित्य की मुख्यधारा के रूप में जनवादी विचारधारा से परिपूर्ण लेखनी में रत थे। इनमें से पहला वर्ग था– मार्क्सवादी और दूसरा वर्ग गैर मार्क्सवादी। पहला वर्ग तो खुलकर इस प्रवृत्ति को स्थापित करने के लिये था वहीं दूसरा वर्ग भी वर्तमान दौर की आवश्यकता को देखते हुए जनवादी विचारधारा से साहित्य को सम्पोषित करने में लगा हुआ था। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि 'कम्यूनिज़्म' भी 'जनवाद' के समानार्थी पाश्चात्य शब्दों में गिना जाता है। साहित्य के क्षेत्र में जब इस 'जनवाद' शब्द को लाया गया, तब इसका एक ही कारण था कि इस विचारधारा का लक्ष्य समतामूलक और वर्ग–विहीन समाज की स्थापना करना। लेकिन इस साहित्यिक विचारधारा के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप, साहित्य प्रतिरोध जैसे विषयों को लेकर उठ खड़ा हुआ।

यह तो हुई 'जनवाद' के स्थापना सम्बन्धी तर्क, परन्तु यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि समकालीन दौर के कुछ आलोचकों का 'कविता की वापसी' से क्या तात्पर्य है और समकालीन हिन्दी कविता

में निहित जनवाद से क्या सम्बन्ध रखता है? ऐसा नहीं है कि समकालीन हिन्दी एक केवल जनवादी विचारधारा को धारण किये हुए है अपितु, इस दौर में प्रेम, प्रकृति, रोमानियत आदि विषय भी काव्य–रचनाकारों को लुभाती रही है। परन्तु, यह सब विषय कविता की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पायी। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के दौर तक जिस प्रकार भक्ति, देश–प्रेम और प्रकृति–प्रेम, व्यक्ति–स्वातंत्र्य आदि विषयों की काव्य–रचना कर कवि अपने कवि–कर्म को सफल मानते थे, समकालीन हिन्दी कविता में इन्हीं विचारधाराओं का ह्रास हुआ। इन विषयों का स्थान जनपीड़ा और जनाकांक्षा ने ले लिया। इस समय कवि जनपीड़ा के रेखांकन से ही कविता की सार्थकता मानने लगे। ऐसी स्थिति में कविता की मुख्यधारा में जनवादी प्रवृत्ति स्थापित हो गयी। इस दौरान 'अशोक वाजपेयी' द्वारा कहा गया एक मुहावरा प्रचलन में आया– 'कविता की वापसी'। जो मूलतः सातवें दशक के कुछ कवियों और लेखकों में उत्पन्न नई स्फुर्ति और ताजगी की द्योतक थी। परन्तु, कुछ आलोचकों ने इस पर प्रश्न उठाना शुरू कर दिया। वैसे देखा जाए तो साठोत्तरी कविता में प्रतिक्रियावादी विचारधारा साहित्य की दूसरी धारा के रूप में प्रवाहमान रही है। इस पर विचार करते हुए 'गोरख पाण्डेय' लिखते हैं– "इतना सच है कि आज की कविता में जनवादी धारा प्रमुख और व्यापक हो गई है। यही वजह है कि प्रतिक्रियावादी भी अपने मंसूबे जनवाद की भाषा में पेश करने को बाध्य हो गये हैं।"[2]

सामंती–पूँजीवादी मूल्यों की छाया से धूमिल छायावादी कविता के विरोध में जिस प्रगतिशील कविता आन्दोलन की शुरूआत हुई वह वास्तव में किसानों, मजदूरों, छात्रों, नौजवानों के संघर्ष का स्वर था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अंतर्विरोध से अपने आन्दोलन के रहते हुए भी प्रगतिशील विचारधारा उतना प्रभाव नहीं जमा पाई, जितना कि नक्सलवाड़ी के किसान विद्रोह ने बुद्धिजीवियों, कलाकारों, लेखकों और छात्र–नौजवानों को अपनी ओर खींचना शुरू किया। असंतोष और दिशाहीनता के इस माहौल में बहुत सारे लोगों को यह आभास हुआ कि शोषण–व्यवस्था के इस दलदल से आम जनता को बाहर निकालने का एक मात्र रास्ता है– प्रतिरोध का स्वर जागृत करना। तत्पश्चात् आलोक धन्वा, कुमार विकल, उग्रसेन, वेणु गोपाल और तड़ित कुमार जैसे अनेक लेखकों ने सामाजिक बदलाव के लिये क्रान्ति का रास्ता चुना। इस दौर की कविताओं में कवियों ने देश की वास्तविक स्थिति से साहित्य का परिचय करवाना शुरू कर दिया। इस वैचारिक बदलाव के कारण उपजी जनवादी कविताएँ समाज के शोषित–उत्पीड़ित वर्गों, गरीबों तथा बेबस–लाचारों की कविता बन गई। पुरानी पीढ़ी के हताश कवियों को नयी चेतना का आभास हुआ और उन्होंने न केवल अपनी लेखनी के माध्यम से इस चेतना के समग्र विकास का बीड़ा उठाया अपितु वे नये कवियों तथा लेखकों को जनवादी लेखन के लिये प्रोत्साहित भी करने लगे। इस पुरानी पीढ़ी के जनवादी रचनाकारों में नागार्जुन, मुक्तिबोध और धूमिल जैसे जनकवियों का नाम अगली पंक्ति में आता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि क्रान्तिकारी किसान आन्दोलन का जो प्रभाव समकालीन हिन्दी कविता में जनवाद की स्थापना पर पड़ा उसने सातवें दशक के बाद के साहित्य पर गहरी छाप छोड़ी। साहित्य में जनवाद की स्थापना को ही 'कविता की वापसी' का नाम दिया गया, यह उचित नहीं है क्योंकि उक्त विचारधारा के मुख्यधारा में स्थापित होने के बाद ही कविता अपने मूल उद्देश्यों से जुड़ती नजर आई। 'कविता की वापसी' पर विचार करते हुए 'गोरख पाण्डेय' लिखते हैं– "कविता की वापसी का फतवा विचारधारा और कविता पर एक सुनियोजित हमला है। इसका जबाव हम जनता के संघर्षों में और गहराई से शामिल होकर तथा कविता को जनता का संघर्ष और चेतना का वाहक बनकर ही दे सकते हैं।"[3] तात्पर्य यह कि जिस 'कविता की वापसी' के नारे द्वारा समकालीन कविता की परिभाषा बदलने की कोशिश की गई, वह समकालीन कविता में जनवाद की स्थापना के लिये और सहायक सिद्ध हुआ।

यह निर्विवाद सत्य है कि क्रान्तिकारी किसान आन्दोलन का जो प्रभाव समकालीन हिन्दी कविता में जनवाद की स्थापना पर पड़ा उसने सातवें दशक के बाद के साहित्य पर गहरी छाप छोड़ी। साहित्य में जनवाद की स्थापना को ही 'कविता की वापसी' का नाम दिया गया, यह उचित नहीं है क्योंकि उक्त विचारधारा के मुख्यधारा में स्थापित होने के बाद ही कविता अपने मूल उद्देश्यों से जुड़ती नजर आई। 'कविता की वापसी' पर विचार करते हुए 'गोरख पाण्डेय' लिखते हैं– "कविता की वापसी का फतवा विचारधारा और कविता पर एक सुनियोजित हमला है। इसका जबाव हम जनता के संघर्षों में और गहराई से शामिल होकर तथा कविता को जनता का संघर्ष और चेतना का वाहक बनकर ही दे सकते हैं।"[3]

तात्पर्य यह कि जिस 'कविता की वापसी' के नारे द्वारा समकालीन कविता की परिभाषा बदलने की कोशिश की गई, वह समकालीन कविता में जनवाद की स्थापना के लिये और सहायक सिद्ध हुआ।

निष्कर्ष – उपरोक्त विवेचन समकालीन कविता की बुनावट, रूपरेखा, अन्तर्वस्तु और केन्द्रिय भाव को उजागर करने के लिये पर्याप्त है। इसके अन्तर्गत समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इसके भीतर हो रही हलचल और उतार–चढ़ाव की समुचित व्याख्या तथा 'गोरख पाण्डेय' की विचारधारा और साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख समकालीन कविता और गोरख पाण्डेय के कवि–कर्म में निहित सत्यता, प्रासंगिकता और उद्देश्यों की विस्तृत सामाजिक–साहित्यिक भूमिका को दर्शाने के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. साक्षात्कार, गोरख पाण्डेय संकलित गद्य रचनाएँ, सं॰–गोपाल प्रधान, सांस, जसम, पृ॰ सं॰–22.
2. कविता की वापसी बनाम जनवादी कविता, गोरख पाण्डेय संकलित गद्य रचनाएँ, सं॰–गोपाल प्रधान, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच, पृ॰ सं॰–163.
3. वही, पृ॰ सं॰–172.

अभिमन्यु कुमार राय
शोधार्थी हिन्दी – विभाग
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा
ग्राम–सहोड़ा, पोस्ट–आनंदपुर
प्रखंड– हायाघाट, जिला– दरभंगा, बिहार
पिन–847105, मोबाइल संख्या– 7808877087

28

भारतेन्दु की नाट्यकला – एक परिशीलन

संजीव मिश्र

सारांशः–

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक युग के निर्माता कहे जाते हैं, वह इसलिए कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनके जैसा नाटककार, निबंधकार, रिपोर्ताज लेखक, यात्रा वर्णन लेखक, संस्मरण लेखक, इतिहासवेत्ता, कवि, लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार एवं पत्रकार कोई नहीं हुआ। उन्होंने अपनी 35 वर्षो की अल्पायु में बहुत ज्यादा साहित्यिक कार्य किया और लेखन में अहर्निश लगे रहे। सामाजिक, धार्मिक बुराईयों के खिलाफ लड़ते रहे। यह सब देखकर उनके विविध व्यक्तित्व पर आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है। भारतेन्दु के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''उनके व्यक्तित्व का स्वर देशभक्ति का था और वह बहुत ऊँचा था।''[1]उन्होंने देशभक्ति और राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर अपने युग की स्थितियों को भली–भांति परखकर अपने स्पष्ट विचार निर्धारित किये।

भारतेन्दु का ही ध्यान सबसे पहले नाटक लिखने और पत्रिका निकालने की तरफ गया। उनका विचार था कि ये दोनों ही माध्यम व्यापक जन–समुदाय को देश, समाज, सांस्कृतिक और औपनिवेशिक दासता के प्रति जागरूक बनाने में अहम भूमिका निभायेंगे। 'कविवचन सुधा' 1868 में प्रकाशित होने वाली भारतेन्दु की पहली पत्रिका थी। अपनी नाट्यकलाओं से इन्होंने समाज में न केवल जागरूकता का संचार किया बल्कि लोगों में हर तरह की दासता से संघर्ष करने का विवेक और साहस भी जगाया। कहना न होना कि पश्चिमोत्तर प्रांत में नवजागरण का सूत्रपात करने वाले भारतेन्दु ही थे।

11 वर्ष की अवस्था मं अपनी जगन्नाथ यात्रा के दौरान उन्होंने वर्द्धमान में बंगला भाषा में ''विधवा–विवाह'' नाटक खरीदा और उसे पूरा पढ़ गये इस नाटक में भारतेन्दु को बहुत प्रभावित किया और वे हिन्दी में इस तरह के नाटक के कमी को बड़ी शिद्त से महसूस करने लगे। उन्होंने देखा कि समाज बड़ी तेजी से बदल रहा है और साहित्य अभी भी अपने पुराने रास्ते पर खड़ा है। उन्होंने न केवलसाहित्य, बल्कि भाषा को भी एक नया स्वरूप दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र देश की तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों से असंतुष्ट थे। अत्एव वे इनमें सुधार और परिवत्तन के पक्षधर थे। इसके लिए सबसे जरूरी बात थी देश की जनता की सोई हुई चेतना को जगाना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने नाट्यकला को जनता से सीधे जुड़ने का सबसे सशक्त माधयम पाया। भारतेन्दु ने साहित्य की तत्कालीन ब्रज भाषा को छोड़ खड़ी बोली हिन्दी गद्य में साहित्य रचना का आरंभ किया।

भारतेन्दु ने सिर्फ नाटक ही नहीं लिखे बल्कि ''नाटक''[2] नाम से नाट्य कला पर इन्होंने एक स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी। यह पुस्तक इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के नाट्य–ग्रंथों का विषद् अध्ययन कर तैयार की थी। यह पुस्तक ''मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस'' से सन् 1883 ई0 में प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटक और रंगमंच के निर्माण और विकास में इस पुस्तक ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। हिन्दी नाटक कला और रंगमंच को समझने के लिए यह एकमात्र सैद्धान्तिक पुस्तक थी। भारतेन्दु के प्रयासों ने देखते ही देखते हिन्दी नाटककारों और खड़ी बोली गद्य लेखकों की पश्चिमोत्तर प्रांत में एक मंडली ही खड़ी कर दी, जो 'भारतेन्दु मंडल' के नाम से विख्यात हुई इस मंडल के प्रसिद्ध लेखकों में प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनाराण चौधरी 'प्रेमधन', लाला श्रीनिवास दास, ठाकुर जगमोहन, बाबू तोता राम, पंडित केशवराम भट्ट, पं0 राधाचरण गोस्वामी, अंबिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण दास और कार्तिक प्रसाद खत्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

''हिन्दी के मान्य आलोचकों ने हिन्दी नाट्य साहित्य का उद्भव और विकास काल 19वीं शताब्दी स्वीकार किया है, किन्तु डा0 दशरनां ओझा ने अपने महत्वपूण्र अनुसंधन द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास 13वीं शताब्दी में ही हो चुका था। डॉ0 ओझाा के मतानुसार हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक ''गयसुकुमार दास'' है, जिसका निर्माणकाल 1289 वि0 है। इसी क्रम में इन्होंने हिन्दी नाटकों की परंपरा का उदय 13वीं शताब्दी के 'संदेशरासक' से माना है।.....
भारतेन्दु के पूर्व 17वीं शताब्दी से ही हिन्दी नाटकों की रचना होने लगी थी, परन्तु उसमें नाटयशास्त्र के तत्त्वों का सर्वथा अभाव था। .....
.....भारतेन्दु के पूर्व केवल दो ही मौलिक नाटक लिखे गए, जिनमें पहला रीवाँ नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह का ''आनंद रघुनंदन (संभवत 1700 ई0) है। और दूसरा भारतेन्दु के पिता गोपाल चंद जी का 'नहुष नाटक (सन् 1841 ई0).....
..... पर इन दोनों नाटक की भाषा –'ब्रजभाषा' थी। 'खड़ी बोली दिन्ही' गद्य में पहला नाटक–निबंध लिखने का श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। भारतेन्दु ने अपने समय से पूर्व की सभी नाट्य परंपराओं को अपनाया तथा युगानुरूप उनमें संशोधन भी किया।'' [3]
''1868 ई0 में मात्र 18 वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'विद्या सुंदर' नाटक का बांग्ला से हिन्दी गद्य अनुवाद करके प्रकाशित किया।.....
..... भारतेन्दु को संस्कृत, प्राकृत, बंगलीा व अंग्रेजी के नाअ्य–साहित्य का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं से अनुवाद किए थे, नाट्य–कला के सिद्धान्तों का भी उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था, जो उनकी रचना 'नाटक' से सिद्ध है। साथ ही अपने नाटकों में अभिनय भी किया करते थे। इस प्रकार नाट्य–कला के सभी अंगों को विकसित करने का प्रयास भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने किया है। यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूँढे, जिसने नाट्यशास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्यकला संबंधी सैद्धान्तिक ग्रंथ लिखा हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन और अनुवाद भी किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो और

उसने नाटक की रचना ही नहीं अपितु उन्हें रंगमय पर खेल कर भी दिखाया हो – इन सब विशेषताओं से संपन्न नाटककार हिन्दी में ही नहीं – वरन समस्त विश्व साहित्य में केवल 2–4 ही मिलेंगे और उनमें भी भारतेन्दु का स्थान सर्वोच्च होगा। उनके नाटकों में जीवन और कला, सत्य और सुंदरम्, मनोरंजन और मंगल का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। नाट्य रूपों और नाट्य की विधाओं की दृष्टि से भी अकेले उन्होंने जितने प्रकार के प्रयोग किए हैं, उतने किसी और ने नहीं किए।''[4]

''आलोच्य युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार भारतेन्दु हैं। वस्तुतः भारतेन्दु काल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जागृत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था। मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने, प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, अनुकरणीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक यचित्रों के प्रति समाज को आकृष्ट करने का काम किया। .....
.....शास्त्रीय दृष्टि से भारतेन्दु कालीन नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए, युग और परिस्थिति के अनुसार उसमें थोड़ी छुट लेकर लिखे गये हैं। साथ ही पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं हैं। पाश्चात्य ट्रेजेरी की पद्धति पर दुसांत नाटक लिखने की परंपरा का श्री–गणेश स्वयं भारतेन्दु ने ही किया था।''[5]

''नाट्य कला के क्षेत्र में 'भारतेन्दु' भारतेन्दु ही नहीं पुवेन्दु हैं। उनमें कुछ दोष–धब्बे भी हैं, किन्तु वे उनकी सुधा–प्रवाहिनी रश्मियों के तेज–पुंज के समक्ष नगण्य हैं, उपेक्षाणीय है।''[6]

भारतेन्दु जी ने अपने नाटक से न केवल साहित्य की सेवा की बल्कि नाट्य–कला और रंगमंच के विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया। वे जानते थे कि दृश्य–काव्य होने की वजह से नाटक जनता को जागृत करने का सशक्त माध्यम हो सकता है। उन्होंने अनेक नाट्य–साहित्य की रचना की। उनके नाटकों की विषय–वस्तु यथार्थवाद के निकट है।

''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' [7] एक प्रहसन है। इसमें कुछ लोलुप और स्वार्थी जो अवसरवादी भी हैं ऐसे तत्त्वों पर तीखा व्यंग्य कसा गया है। ऐसे लोग देश की जड़ों को खोखला कर डालते हैं। ऐसे लोगों के प्रति सचेत करता हुआ व्यंग्य और उपहास की शैली में लिखा गया यह नाटक राष्ट्र प्रेम की शिक्षा भी देता है और देश के पुनरूत्थान के लिए प्रेरित करता है।

''विषस्य विषमोसयम् [8] संस्कृत की भाषा शैली में लिखा गया एक पात्रीय नाटक है। इसमें देश के रजवाड़े में चल रहे व्यभिचार–लीला, प्रजा–शोषण और षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है और बताया गया है कि इस तरह के कुचक्र से देश दुर्बल हो रहा है। ये राजा ही देश की परतंत्रता के कारण बने। ऐसे तत्वों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

''सत्य हरिश्चन्द्र'' [9] नाटक नवयुवकों में चरित्र और आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से लिखा गया था। हरिश्चन्द्र का सत्यप्रिय, न्यायप्रिय, त्यागप्रिय और कर्त्तव्यपरायण चरित्र हमारे देश के लिए एक तरह से मानदण्ड ही तो स्थापित करता है। इस तरह के चरित्र बल से ही गुलामी की जंजीर को काटा जा सकता था। यह नाटक भारतीय जनता के धैर्य और और करूणा का प्रतीक है।

''प्रगटहु रवि–कुल निसि, बीती प्रजा कमलगन फूले।
मंद परे रिपुगन तारा सम, जन–मय–तम उनमूले।।''[10]

सत्य हरिश्चन्द्र के रंगमंत्र पर आ जाने से अंग्रेजी राज को हटाने का संदेश इन पंक्तियों द्वारा स्पष्ट हुआ है। बलिया में '' सत्य हरिश्चन्द्र'' नाटक के मंचन में हरिश्चन्द्र के रूप में उन्होंने एक बड़े जन समूह को भाव–विभोर कर दिया।

''चन्द्रावली'' [11] स्त्री पात्र प्रधान नाटिका है। इसे रासलीला के लोकनाट्य रूप में लिखा गया है। इसमें राधा–कृष्ण के उपासक चन्द्रावली के प्रेम और भक्ति को दर्शाया गया है।

''भारत दुर्दशा'' [12] के द्वारा उन्होंने देशभक्ति का अलख जगाने की कोशिश की है। साथ ही स्वाभिमान की भावना जगाई है। यह नाटक अंग्रेजी राज की अप्रत्यक्ष आलोचना है। देश प्रगतिशील हो और उसका गौरव फिर से स्थापित हो इसकी कामना की गई है, ताकि देश का पुनरूत्थान हो सके। इस नाटक में भारत की दयनीय दशा का बहुत ही प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया गया है। आसमान छूती महंगाई उसपर से कर वसूली का शोसक चक्र से जनता त्रस्त थी। यह भी कहा गया है कि इस अधोगति के लिए विदेशी शासक जिम्मेदार हैं।

''अंगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहैं, अति ख्वारी।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी।
दिन–दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।
सबके उपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाये।। [13]

समाज में छुआछूत, आपसी दुश्मनी, आलस्य, बीमारी, नशाखोरी आदि अनेक बुराईयां व्याप्त थी। जिसने देश की दुर्दशा को और बढ़ाया। ऐसी परिस्थिति में भारतेन्दु ने देश के गौरवपूर्ण अतीत की इस नाटक के द्वारा याद दिलाते हुए लोगों को प्रेरित करने का काम किया है।

प्रयोगशीलता और लोकधर्मी चेतना के कारण यह नाटक आज भी प्रासंगिक है। यह लचीले शिल्प का नाटक है। इसमें पारसी रंगमंच और नौटंकी लोक–नाट्य का अद्भूत मिश्रण है।

''अंधेर नगरी'' [14] एक ऐसा नाटक है जिसकी सार्थकता और मूल्यवत्ता समय के साथ बढ़ती ही गयी है। इसमें भारतेन्दु जी की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष हुआ है। प्रहसन और व्यंग्यकला का चुटीला नाटक अपनी संजीवता और सजगता के कारण लाजवाब है। एक छोटी सी लोकोक्ति के आधार पर रचित इस नाटक में अपने समय का पूरा वर्त्तमान समेटे हुए है जो कि आज भी उतना ही प्रासंगिक है। प्रहसन शैली में लिखा गया यह नाटक देश के भीतर सूदखोर महाजन की जहां एक ओर खबर लेता है वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी शासन के जन विरोधी प्रशासन, शोषण और कर नीति पर भी प्रहार करता है। यह नाटक अपने प्रभाव में लोगों की आँख खोलने और सजग होने में सफल हुआ है।

''अंधेर नगरी चौपट राजा, टके शेर भाँजी, टके शेर खाजा''[15]

''नील देवी''[16] में पातिव्रत्य, देशभक्ति और वीरता को नारी

के चरित्र बल के रूप में दर्शाया गया है। नील देवी में उन्होंने पागल की भूमिका निभाई। इन नाटकों में देश के गौरवपूर्ण अतीत को याद दिला कर देशवासियों को आजादी प्राप्ति के लिए संघर्षरत होने के संदेश दिया गया है। नील देवी स्त्री प्रधान दुखान्त नाटक है।

''रहे हमहुँ कबहूँ स्वाधीन आर्य बलधारी''। [17]

''भारत जननी''[18] एक काव्य नाटक है जिसमें राष्ट्रीय जागरण का संदेश दिया गया है। इस नाटक में अंग्रेजी शासन के कारण हो रहे पतन को दिखाया गया है और कहा गया है कि इस शासन से रक्षा के लिए लोग प्राणपन से जुट जाएं।

''अब बिन जागे काज सरत नहिं आलस्य दूर बहाओ।
हे भारत भुवन भूमि निज बूड़त आनि बचाओं।'' [19]

''सती प्रताप''[20] में सती सावित्री के कथानक को लेकर भारतीय नारी की चेतना और आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का भी उद्देश्य लोगों में जागरण उत्पन्न करना है। भारतेन्दु जी इसके केवल चार दृश्य ही लिए पाए थे, बाद में बाबू राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा किया।

हिन्दी में नाटकों की कमी दूर करने के लिए इन्होंने कुछ नाटकों को दूसरी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद किया। ''मुद्रा राक्षस'' [21] संस्कृत के विख्यात नाटककार 'विशाखादत्त' के 'मुद्रा राक्षस' का अनुवाद है। इस नाटक के द्वारा भारतेन्दु जी यह प्रमाणित करना चाहते थे कि श्रृंगार रस के बिना भी विचारोत्तेजक महान नाटक की रचना की जा सकती है। चाणक्य की कूटनीति, दृढ़ता और नैतिकता दर्शनीय है। अनुवाद जीवन्त और मौलिक है।

''दुर्लभ बन्धु'' [22] शेक्सपियर के नाटक 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद है। भारतेन्दु ने इसका भारतीयकरण किया है। उन्होंने पात्रों के नाम, स्थान, कथा, संवाद आदि में परिवर्त्तन किया है। सच्ची मित्रता और धनिकों के हृदय की क्रूरता दिखाना इसका उद्देश्य है।

'रत्नावली'[23] हर्षकृत संस्कृत नाटिका का हिन्दी अनुवाद है। इस अनुवाद में मूल संस्कृत छन्दों के साथ स्वयं उन्होंने भी छंद बनाए।

''कर्पूर मंजरी''[24] प्राकृत में 'राजशेखर' रचित 'सट्टक' का अनुवाद है। इसमें राजदरबार का सुन्दर व्यंग्यात्मक चित्र है।

''पाखण्ड विडम्बन''[25] कवि कृष्ण मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का अनुवाद है। यह उनकी मौलिक दृष्टि का परिचायक है।

''विद्यासागर'' [26] यतीन्द्र मोहन ठाकुर के बंगला नाटक का अनुवाद है। यह एक रोमांटिक नाटक है, जिसमें रोमियो–जूलियट प्रेम में असफल होने के कारण प्राण नहीं देते, बल्कि अन्त में मिल जाते हैं।

''धनंजय विजय''[27] कांचन कवि के संस्कृत नाटक का अनुवाद है। यह वीर रस प्रधान ओजपूर्ण नाटक है।

भारतेन्दु जी के लिए 'नाटक साहित्य भी था और रंगमंच भी। भारतेन्दु जी ने नाटकों द्वारा देश की पतनशील अवस्था, अंग्रेजों की शोषक नीति आदि का चित्रण के साथ लोगों को अपने उन्नत अतीत की भी याद दिलाई और दर्शक में देशप्रेम की भावना जगाकर आजादी के संघर्ष के लिए उत्प्रेरित किया। भारतेन्दु जी की नाटक रंगशिल्प की दृष्टि से बहुत ही सरल होते थे। थोड़े से रंगमंचीय उपकरणों की सहायता से ये नाटक मेले–ठेले में कहीं भी खेले जा सकते थे। उन्होंने लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए इन नाटकों की रचना की। ये नाटक काफी प्रभावशाली सिद्ध हुए। लोक नाट्य शैली को अपनाने से इसके मंचन में कोई कठिनाई नहीं हुई।

निष्कर्ष :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक युग का नायक कहा जाता है। उन्हें आधुनिक युग का चारण भी कहा गया। गद्य लेखन में वे नाटक, रिपोर्ताज, संस्मरण, कहानी, उपन्यास, आलोचना, यात्रा–वर्णन, नाटक आदि विधाओं के अविस्मरणीय हस्ताक्षर थे। सबसे बड़ी बात है कि उनके समय साहित्य में अपने युग का प्रतिबिम्ह है। उनके रचनाओं में तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ पूर्ण–तटस्थता के साथ अभिव्यक्त हुई है। उनके नाटकों के संवाद, निबंधों की विचार–शीलता और पत्रकारिता की निर्भीकता, मुझे हमेशा से प्रभावित करती रही है। इस तरह निर्भीकता उनकी शैली है, जिंदादिली उनका स्वभाव और आत्मीयता उनका अहाता। ये तीनों गुण जो भारतेन्दु की तरफ बार–बार ले जाती है और मुझे प्रेरित करती है।

संदर्भ :–

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
(2) नाटक – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु की गद्य भाषा – डॉ0 ब्रजकिशोर पाठक, पृ.सं.– 28
(3) मिश्र एवं पाण्डेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 219 – 20
(4) साहित्यक निबंध – डॉ0 गणपति चंद्र गुप्त, पृ.सं.–393–94
(5) डॉ0 नागेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
(6) साहित्यक निबंध – डॉ0 गणपति चंद्र गुप्त, पृ.सं.–719
(7) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(8) विषस्य विषमोसधम – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(9) सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु समग्र।
(10) सत्य हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु समग्र।
(11) चन्द्रावली – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु समग्र।
(12) भारत दुर्दशा – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु समग्र।
(13) भारत दुर्दशा – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(14) अंधेर नगरी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(15) अंधेर नगरी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(16) नील देवी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(17) नील देवी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(18) भारत जननी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(19) भारत जननी – भारतेन्दु हरिश्चंद, भारतेन्दु समग्र।
(20) सती प्रताप – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(21) मुद्रा राक्षस – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(22) दुर्लभ बंधु – भारतेन्दु हरिश्चंद, भारतेन्दु समग्र।
(23) रत्नावली – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(24) कर्पूर मंजरी – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(25) पाखण्ड विडम्बन – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।
(26) विद्यासागर – भारतेन्दु हरिश्चंद, भारतेन्दु समग्र।
(27) धनंजय विजय – भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु समग्र।

संजीव मिश्र
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सूरत पाण्डेय डिग्री कॉलेज, गढ़वा,
नी.पी.विश्वविद्यालय, मेदिनीनगर, झारखंड।
Email-sanjeev.rajan2005@gmail.com

29

भारतीय दलितों की सामाजिक, धार्मिक समस्याओं का विश्लेषण

डॉ० मिथलेश कुमार

सारांशः–

भारतीय समाज की रचना में एक–दूसरे से भिन्न विशेशताओं वाले अनेक समुदायों का समावेश है। परिस्थितियों के आधार पर जहाँ हमारा समाज ग्रामीण और नगरीय जैसे दो मुख्य भागों में विभाजित है, वहीं सांस्कृतिक और धार्मिक आधार पर यहाँ बहुत लम्बे समय से विभिन्न समुदायों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थिति में बहुत अन्तर रहा है।

भारत गरीबों का देश है। यहाँ के बहुसंख्यक आबादी दलित, शोषित, मजदूर और किसान हैं। भारतीय समाज पिछले तीन हजार वर्षों से वर्ण, जाति, महिला, पुरुष विभेद तथा अस्पृश्यता में बंटा हुआ समाज है। यद्यपि 26 जनवरी 1950 में भारतीय संविधान लागू हुआ तथा देश में सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप में लोकतंत्र के आदर्श समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय ही स्थापना हुई। अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता को कानूनी रूप से समाप्त किया गया है। निःसंदेह पिछले तीन हजार वर्षों से जो सामाजिक आर्थिक परिवर्तन इस देश के सैकड़ों धर्मग्रन्थ (अर्थात चार वेद, अठारह पुराण, एक सौ आठ उपनिशद तथा दो महाकाव्य आदि) नहीं कर पाया वो मात्र एक संविधान के लागू होने से संभव हुआ। किन्तु चूंकि भारत गाँवों का देश है और गाँवों में आज भी आधुनिक मानवतावादी विचारधारा तथा वैज्ञानिक चेतना का अभाव है इसलिये आज भी गाँवों में ब्राह्मणवादी विभेद तथा सामन्तशाही यथास्थितिवादी सोच यत्र–तत्र देखने को मिलता है। जिस कारण 21वीं सदी की सूचना क्रांति के इस युग में भी आए दिनों जाति प्रथा, अस्पृश्यता तथा महिला–पुरुष, ऊँच–नींच विभेद इलेक्ट्रोनिक एवं प्रिन्ट मीडिया में रंगे–पटे रहता है।

अस्पृश्यता का अस्तित्व सामाजिक यथार्थ के तीनों प्रमुख आयामों – व्यक्ति, समाज में समान रूप से देखा जा सकता है। वैयक्तिक आधार पर भारतीय समाज में हमें तीन प्रकार के व्यक्तित्व देखने को मिलते हैं। पहली श्रेणी में आधुनिक व्यक्तित्व को रखा जा सकता है। यह आधुनिक परिस्थितियों से समायोजन करने में तुलनात्मक रूप से अधिक सफल होता है। व्यवहार में आधुनिक व्यक्ति जातिगत एवं वंशागत भेदभाव को गौण तथा निहित वैयक्तिक स्वार्थ को प्राथमिकता देता है। साधारणतया ऐसे व्यक्ति महानगरों एवं नगरों में पाये जाते हैं, हालांकि ये गाँवों में भी हो सकते हैं। नगरों में एक तो व्यक्ति को परम्परात्मक पहचान कम होती है। दूसरे, वैयक्तिक योग्यता व क्षमता की तुलना में उसकी परम्परात्मक स्थिति का विशेष मूल्य नहीं होता। जीवन में स्पर्धा व भागदौड़ अधिक होने के कारण नगरों में व्यक्ति होटल में खाना खाते समय, दुकान से सामान खरीदते समय, ट्राम या बस में सफर करते समय अथवा कारखाने या घरेलू कामकाज के लिए नौकर रखते समय जाति–पाति पर नहीं बल्कि अन्य चीजों जैसे उनकी कार्यकुशलता व क्षमता पर ध्यान देता है। लौकिक आचरण एवं व्यवहार में आधुनिक व्यक्ति अस्पृश्यता व जाति–पाति के भेदभाव से मुक्त होता है। निजी सामाजिक सम्बन्धों के मामलों में वह तुलनात्मक रूप से अधिक उदार भी होता है। किन्तु जाति और वर्ग की सीमाओं में पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं होता।

सामाजिक आधार एवं व्यवहार के दोहरे मानदण्ड आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। शहरों में अस्पृश्यता व सामाजिक भेदभाव हटा है। किन्तु गाँवों में कमोवेश अभी भी बना हुआ है। व्यक्ति जब शहर या दफ्तर में होता है तो छुआछूत से मुक्त होता है। किन्तु वही जब गाँव या घर में होता है तो जातीय व सामाजिक प्रतिबन्धों के दायरे में आ जाता है। शहरों में लोग एक दूसरों को नहीं जानते। वहाँ मंदिर में आने–जाने, होटल या जलपानगृह में खाने, पीने, बस, ट्राम, गाड़ी में सफर करने, सिनेमा में साथ–साथ बैठने में कोई भेदभाव नहीं दर्शाते और न ही ऐसा संभव है। किन्तु गाँवों में ऊँची जातियाँ अभी भी (चमार, धोबी, मेहतर, डोम, पासी, मुसहर तथा खटीक आदि) अस्पृश्य जातियों के यहाँ पानी नहीं पीते। उनके बर्तन में खाना नहीं खाते और न अपना बर्तन उन्हें खाने के लिए देते हैं। उनके द्वारा लाए गए पानी को कपड़े तथा घर धोने और कभी–कभी नहाने में काम भले ले लें, किन्तु खाना पकाने या पीने में इस्तेमाल नहीं करते। कुछ घरों में जहाँ अस्पृश्य नौकर है घर के कतिपय प्रगतिशील सदस्य उनके द्वारा लाए गए पानी को खाने–पीने में इस्तेमाल भले कर ले, किन्तु सभी ऐसा नहीं करते और न ही ऐसा सार्वजनिक रूप से किया जाता है। सार्वजनिक पूजा स्थलों पर जहाँ कथा एवं पूजा करते हैं। इसमें किसी प्रकार का भेद या विरोध नहीं है। किन्तु जब सवर्ण की कथा हो रही हो तो वे सवर्णों के साथ नहीं बैठते और न ही कोई ऊँची जाति के लोग उन्हें नीचे से उठकर चबूतरे पर अपने साथ बैठने के लिए आमंत्रित करता है। ठीक इसी प्रकार जब उनकी कथा होती है या कड़ाही चढी होती है, तो उनके साथ साधारणतः सवर्ण न तो कथा पर बैठते हैं और न कड़ाही चढाते हैं। प्रायः देखा गया है कि ऐसे गाँवों में जहाँ मंदिरों की देखभाल के लिए अलग पुजारी होते हैं, अस्पृश्य भगवान की पूजा फाटक के बाहर से ही कर पाते हैं। फाटक के भीतर जाकर भगवान को जल, पुष्प, अर्ध्य एवं प्रसाद चढ़ाने का अवसर उन्हें नहीं मिलता। हालांकि यह सब कार्य पुजारी स्वयं करते हैं और साधारणतः सवर्णों को भी भीतर जाने की अनुमति नहीं होती। फिर भी ऊँची जातियों में से प्रभावशाली लोगों या उनके परिवार के सदस्यों पर इस प्रकार की रोक टोक नहीं होती।

सामान्यतः ब्राह्मण पुरोहिती का कार्य हरिजनों व अन्य अस्पृश्यों के यहाँ नहीं किया करते थे। किन्तु अब ब्राह्मण उनके यहाँ शादी विवाह कराने तथा मंदिरों में पूजा–पाठ एवं कथा कार्य करने लगे हैं। फिर भी अधिकांश गाँवों में ब्राह्मण तथा अन्य सवर्ण दलितों के यहाँ से प्रसाद साधारणतः तभी ग्रहण करते हैं, जबकि यह उनके द्वारा किसी सवर्ण के घर तथा सवर्ण के बर्तनों में बनवाया गया हो। जबकि दक्षिणा के रूप में अस्पृश्यों के यहाँ से प्राप्त रुपया, पैसा, कपड़ा व अनाज आदि का उपभोग करने में संबंधित ब्राह्मण पुरोहित को कोई हिचक नहीं होती। किन्तु खाद्यान्न (आटा, चावल, दाल, सब्जी आदि)

स्वीकार करने के बावजूद भी वे इसे प्रायः स्वयं इस्तेमाल नहीं करते बल्कि मवेशी को खिला देते हैं और यदि वे इसे स्वयं खाने के काम में लाते हैं तो ऐसा सार्वजनिक रूप से बताकर नहीं करते। अस्पृश्यों के यहाँ पुरोहिती का कार्य प्रायः गरीब, तुलनात्मक रूप से कम प्रवीण तथा ऐसे ब्राह्मण करते हैं जिनके पास सवर्ण जजमानों का अभाव होता है। सवर्णों के पुरोहितों की तुलना में अस्पृश्यों के यहाँ पुरोहिताई करने वाले ब्राह्मणों को नीची नजरों से देखा जाता है।

सामाजिक अन्तःक्रिया के चार मुख्य दायरे – वैयक्तिक, पारिवारिक, सामुदायिक एवं सार्वजनिक, हमें देखने को मिलते हैं। सार्वजनिक आधार पर अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है। जबकि वैयक्तिक आधार पर, अस्पृश्यता यदि पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है, तो इसमें कमी अवश्य आई है। किन्तु अस्पृश्यों की नियोग्यताओं का परम्पराओं द्वारा निश्चित होने तथा सामाजिक रूप से लागू किये जाने के कारण अस्पृश्यता को समाप्त करने की कानूनी घोषणा कर देने भर से अस्पृश्यता न तो समाप्त हो पाई है और न अस्पृश्यों की नियोग्यतायें दूर हो सकी है। व्यापक सामाजिक आधार तथा दीर्घकालीन अस्तित्व ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज से संस्थागत स्वरूप दे दिया है। इसलिए पारिवारिक व सामुदायिक जीवन में अस्पृश्यता बहुत कुछ ज्यों के त्यों बनी हुई है। सूट–बूट व टाई पहिने साथ ही माथे पर चन्दन का टीका लगाएं कोई दक्षिण या उत्तर भारतीय शासकीय या अर्द्ध शासकीय कर्मचारी दफ्तर या दौरे पर अथवा सार्वजनिक उत्सवों एवं पार्टियों में छुआछूत का भेदभाव यदि नहीं बरतता है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह ऐसा अपने घर, परिवार या समुदाय में रहने पर भी करेगा। गणतन्त्र दिवस या अन्य सार्वजनिक उत्सवों एवं जलसों में वह बिना जातीय भेदभाव के सबके साथ खा पी ले, किन्तु अपने लड़के या लड़की के लग्न या विवाह में अपने परिवार, सम्बन्धी व जाति के सदस्यों की उपस्थिति में खाने पीने के समय भी वह अस्पृश्यता का भेदभाव नहीं बरतेगा – इस बात की गारंटी नहीं है।

जहाँ तक सवर्णों का अस्पृश्यों के साथ आवास का प्रश्न है अभी भी इस दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हो सकी है। गाँवों में अस्पृश्यों की बस्तियाँ भी सवर्णों से पृथक है। हाँ, आबादी बढ़ने के साथ कहीं–कहीं आवासीय दूरियाँ कम अवश्य हुई है। किन्तु आवासीय दूरियों के घटने पर भी सामाजिक अन्तःक्रियाओं की सीमाएँ अभी बनी हुई है। शहरों में भी मकान किराये पर लेते देते समय शासकीय व अर्द्ध शासकीय गृहों के आवंटन के समय, छात्रावासों में कमरों के चुनाव के समय कमोवेश जाति–पाति व छुआछूत की भावना काम करती है। समान श्रेणी के अधिकारियों में भूतपूर्व अस्पृश्य जाति के लोगों के कार्यालय के बाहर समान दर्जा नहीं दिया जाता। भारतीय प्रशासनिक सेवा जैसी उच्च स्तरीय सेवाओं में कार्यरत अधिकारियों में भी यह प्रवृति दिखाई पड़ती है। सामान्य चुनाव से चुने गए अधिकारी सुरक्षित पदों पर चुने गए अनुसूचित जाति के अधिकारियों से अपने को तरजीह देते हैं। आवासों के चुनाव के समय भी वे यथा संभव इन जातियों के अधिकारियों के पड़ोस से बचने का प्रयास करते हैं। यदि कहीं संयुक्त आवास में अथवा इनके पड़ोस में किसी सवर्ण अधिकारी को आवास मिल जाता है तो प्रायः देखा जाता है कि वह इनसे केवल औपचारिक सम्बन्ध रखना ही पसन्द करता है। बच्चों को सख्त हिदायत दी जाती है कि ऐसे पड़ोसी के बच्चों के साथ मेल–जोल न रखे। दलील यह दी जाती है कि निजी परिश्रम या सरकारी संरक्षण के माध्यम से कोई नीच जाति वाले ऊँच भले ही हो जाए, किन्तु उसकी नीचता जल्दी नहीं जाती। स्वभाव बदलने में अधिक नही तो कम से कम तीन पीढ़ियाँ अवश्य लग जाती है।

हालांकि भारतीय संस्कृति में अनेक शाखाएँ, उप शाखाएँ तथा मतान्तर हैं। किन्तु वेदों व उपनिशदों जो कि हिन्दू धर्म के प्रेरणा स्रोत हैं, की मुख्य धारा मानव व मानव में भेद न करते हुए समानता व सहयोग का संदेश देती है। समस्त चर अचर में एक शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करती है। फिर भी ब्राह्मण धर्मशास्त्र, विशेष रूप से मनुस्मृति तथा पुराण आदि जात–पात व अस्पृश्यता को प्रश्रय प्रदान करते हैं। समाज के क्रियाकलाप, धर्मशास्त्र अर्थात वर्ण, जाति, कर्म, पुनर्जन्म व संस्कार जनित नियमों द्वारा संचालित होते हैं। धर्मशास्त्रों में प्रणीत, नियम समाज में न केवल कर्तव्यों व अधिकारों का निर्धारण करते हैं, बल्कि व्यक्तियों को जन्मगत सामाजिक परिस्थिति के आधार पर उच्चता व निम्नता के श्रेणी समूहों में बाँटते भी हैं। आधुनिक सामाजिक धर्मशास्त्र (संविधान) ने जात–पात के भेदभाव एवं अस्पृश्यता को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। किन्तु सामुदायिक आख्यान एवं धर्म ग्रन्थ जो समाज में इन रिवाजों को बढ़ावा देते रहे हें अभी भी विद्यमान हैं। सामाजिक धर्म हालांकि समय व काल से परिसीमित होता है। फिर भी संविधान पारित होने के बावजूद भी ऐसे धर्मग्रन्थों को अभी तक न तो निशिद्ध घोषित कर इनका प्रकाशन बन्द कर दिया गया और न ही इनमें से आपत्तिजनक अंशों को हटाया गया है।

अस्पृश्यता से मुक्ति का दूसरा नाम समता का व्यवहार है, जिसे अस्पृश्यों ने भली भाँति समझ लिया है। समानता के प्रारम्भिक दौर में एक तरफ जहाँ अस्पृश्यों ने निम्न व गन्दे कार्यों का परित्याग किया है, वहीं ऊँची जातियों के संस्कारों जैसे जनेऊ पहनना, सवर्णों जैसे नाम या उपनाम रखना, खान–पान, रहन–सहन तथा पूजा–पाठ आदि में उनका बहुत कुछ अनुकरण भी किया है। उनके इन कार्यों और तद्जनित सामाजिक संरचना में परिवर्तन को विद्वानों ने सांस्कृतिकरण का नाम दिया है। इस प्रक्रिया का दूसरा दौर पाश्चात्यीकरण है। यह प्रक्रिया नगरों में काम करने वाले, तुलनात्मक रूप से अधिक शिक्षित तथा लौकिक व्यवस्थाओं में लगे अस्पृश्यों में अधिक सामान्य है। इसके प्रभाव स्वरूप उनमें जनेऊ और परम्परात्मक नाम और उपनाम का परित्याग कर आधुनिक नाम धारण करने, आधुनिक किस्म का रहन–सहन अपनाने तथा खान–पान एवं बात–वर्ताव करने की प्रवृति का विकास होता है। वास्तव में सामाजिक समानता की दौड़ में पिछड़ी जातियों ने जहाँ उच्च जातियों के संस्कार एवं मूल्यों को अपनाने की पहल की, वहीं उच्च जाति के लोगों का झुकाव पाश्चात्य रहन–सहन व मूल्यों की ओर अधिक गया है।

राजनीति में जाति का प्रभाव निःसंदेह बढ़ा है। विशेष रूप से निम्न और मध्य जातियों में शिक्षा के प्रसार, उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार तथा राजनैतिक समीकरणों में बदलाव आया है। जमींदारी प्रथा उन्मूलन तथा भूमि संबंधी सुधारों के लागू किये जाने के फलस्वरूप ग्रामीण अंचल में भूमि उच्च जातियों से निम्न जातियों विशेष रूप से मध्य श्रेणी की किसान जातियों (जैसे अहीर, कुर्मी, जाट आदि) के हाथों गई है। बढ़ी मंहगाई एवं शारीरिक श्रम से बचने की

प्रवृति के कारण उच्च जातियों को ग्रामीण क्षेत्रों में अपना स्तर बनाए रखने में कठिनाई आती है। जबकि मध्य जातियों ने साधारण जीवन स्तर पर कठिन परिश्रम करते हुए अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है। फलस्वरूप गाँवों में जमीन उच्च एवं कहीं–कहीं निम्न जातियों के हाथों से मध्य जातियों के हाथ आई। ग्रामीण आर्थिक संरचना में स्थिति मजबूत होने के साथ–साथ मध्यम जातियों के राजनैतिक प्रभाव में भी वृद्धि हुई है। इस परिवर्तन ने दबे या खुले रूप में अनेक संघर्षों को जन्म दिया है।

सत्तारूढ़ दल के साथ लम्बे समय से एकजूट होकर सम्बद्ध होने तथा प्रभावकारी जनसंख्या के कारण हरिजन व अन्य निम्न जातियों की समाज में एक विशेष राजनैतिक अहमियत बनी है। परिणामस्वरूप ये उच्च जातियों – जो अभी तक येन केन प्रकारेण सत्ता में रही है और मध्य जातियों, जो स्वातंत्रोत्तर काल में एक नई आर्थिक, राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरी है, के आँखों की किरकिरी बन गई है। गुजरात, राजस्थान या मध्यप्रदेश में आरक्षण विरोधी आन्दोलन के रूप में और उत्तर प्रदेश, बिहार तथा महाराष्ट्र के ग्रामीण/नगरीय अंचलों में छुटपुट संघर्ष के माध्यम से इनके बीच सामाजिक टकराव बढ़ा है। पहले की अपेक्षा अधिक बेहतर राजनैतिक स्थिति के बावजूद भी हजारों वर्षों के पिछड़ेपन की वजह से निम्न जातियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। जिसके कारण सामाजिक संघर्षों में कुल मिलाकर अभी इन्हें ही मात खानी पड़ी है।

आज भारतीय समाज तीन मार्गों से संघर्ष की ओर बढ़ रहा है।

(i) निम्न जाति के लोग खासतौर पर उनमें शिक्षित व युवा वर्ग के लोग उच्च जातियों, विशिष्ट रूप से ब्राह्मणों के प्रति अधिकाधिक अनुदान रूख अपनाते जा रहे हैं। वे शासन की संरक्षण की नीति के बावजूद भी अपने प्रति सामाजिक न्याय का अभाव महसूस कर रहे हैं। लौकिक आयाम पर उच्च स्थिति प्राप्त करने के बावजूद भी सामाजिक आयाम पर सदियों के जातिग्रस्त समाज द्वारा बराबरी का दर्जा दिए जाने से विलम्ब के कारण उनमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश बढ़ रहा है।

(ii) नौकरियों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए निम्न जातियों को आरक्षण दिये जाने के कारण उच्च व मध्यम जातियों के (विशेष रूप से युवा वर्ग के) लोगों में दलित विरोध की भावना उत्तरोत्तर उग्र होती जा रही है, और

(iii) मध्य जातियों की संगठनात्मक व आर्थिक स्थिति दृढ़ होने के साथ–साथ अधिकाधिक अधिकारों के लिए उनकी ओर से सामाजिक संतुलन पर दबाव बढ़ रहा है।

समाज में असंतोष तब अधिक मुखर हो जाता है, जब विभिन्न जातियों, संप्रदायों के विशेष रूप से नव–अभिजात वर्ग के लोगों को समाज में समुचित स्थान नहीं मिल पाता। जब समाज में इस तबके का कुछ भाग संतुष्ट नहीं होता तो वह व्यवस्था में विद्यमान अंतर्विरोध व असंतोष को और उभारता है। सामाजिक संघर्ष को अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए और हवा देता है। आज पिछड़ी जाति के नव अभिजात वर्ग के लोग निजी दान से लौकिक आयाम पर उच्च जाति के अभिजात लोगों की बराबरी पर आ गए हैं। किन्तु सामाजिक (सेक्रेड) अवरोधों के कारण उनके बीच इनकी घुसपैठ नहीं हो पा रही है। इतना ही नहीं उच्च जाति का एक साधारण व्यक्ति भी सामाजिक आयाम पर अपने को इनसे ऊँचा समझता है और इनसे समुचित आदर की अपेक्षा रखता है। उच्च जातियों के उच्च वर्ग के लोग अपनी जाति के मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों की जातीय भावना को उभार कर पिछड़ी जाति के नव–अभिजातों के विरूद्ध खड़ाकर उन्हें समाज में अपने बराबर का स्थान प्राप्त करने से वंचित कर देते हैं। ऐसी हालत में पिछड़ी जातियों में उच्च वर्ग के लोग अपनी जाति के मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों को उच्च जातीय अभिजातों के विरूद्ध संगठित कर उनसे समानता का दर्जा प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं। प्रधान रूप से इस कारण भारत में सामाजिक क्रांति में वर्ग संघर्ष की भूमिका जाति संघर्ष लेती जा रही है। चूँकि संगठन के प्रमुख स्तरों – उच्च जाति, मध्यम जाति एवं निम्न जाति पर नेतृत्व सामान्यतः अभिजात वर्ग के लोगों के ही साथ है इसलिए संघर्ष में कमजोर व गरीब लोगों के हितों की रक्षा नहीं हो पा रही है।

राजनैतिक आधार पर जैसा देखा जाता है कि सबको समानता प्रदान कर दी गई है। किन्तु सामाजिक एवं आर्थिक आधार पर लोगों में भेद घटने के स्थान पर बढ़े हैं। आधुनिकीकरण से पिछड़ी जातियों के कुछ लोगों को ऊपर उठने में भले ही मदद मिली हो, किन्तु अधिकांश लोगों की हालत पहले से अधिक बदतर हुई है। सम्पन्न उच्च व मध्यम जातियों की माली हालत में जहाँ सुधार हुआ है वहीं दलित व अन्य अस्पृश्य पहले की अपेक्षा अधिक गरीब हुए हैं। सामाजिक संरचना में यह अन्तर्विरोध यदि बढ़ता गया तो आधुनिकीकरण के प्रजातांत्रिक मॉडल को खतरा तो है ही, पूरी सामाजिक व्यवस्था के टूटने की संभावना भी कम नहीं है।

संदर्भ

1. सिंह, डॉ0 रामगोपाल; भारतीय दलित : समस्याएँ और समाधान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (मध्य प्रदेश), द्वितीय संस्करण 1998, पृ0 99, 102, 103
2. ऋग्वेद 5/59/3 और 5/30/5

डॉ० मिथलेश कुमार
अर्थशास्त्र
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

30

कबीरदास–एक क्रांतिकारी कवि

डॉ. सुधा शर्मा

सारांशः–

आज से कई वर्षों पूर्व लिखे गए कबीर दास जी के दोहे आज भी भारत–वर्ष के छात्रों को प्रेरित करते हैं। कबीर के दोहों के बगैर हिन्दी का पाठ्यक्रम अधूरा सा लगता है। उनके दोहों में विद्रोह का भाव साफ झलकता है। कबीर दास जी बड़ी निर्भीकता के साथ समाज की कुरीतियों पर कड़ा प्रहार करते हैं। मानव–जीवन का कोई भी पहलू उनसे अछूता नहीं रहा। आडम्बरशून्य, सरल–भाषा में उन्होंने मनुष्यों को अपने भीतर के ईश्वर को पहचानने, सभी प्राणियों से प्रेम करने, संतोषी बनने और परोपकार करने की शिक्षा दी है। कबीर दास जी, मानव–मात्र को जाति–पाँति, ऊँच–नीच और सांप्रदायिकता जैसी संकीर्ण भावनाओं को छोड़कर एक आदर्श जीवन–व्यतीत करने की प्रेरणा देते हैं। क्रांति की मशाल हाथ में थामे वे लोगों का पथ–प्रदर्शन करते हैं। यही कारण है कि उनके दोहे आज के युग में ज़्यादा प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

संकेत शब्द – पाठ्यक्रम, आडम्बर–शून्य, कुरीतियाँ, निर्भीकता, सांप्रदायिकता।

भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर कई कवियों ने जन्म लिया। इन कवियों में कबीरदास सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। उनके लोकप्रिय होने का कारण है कि उन्होंने आडम्बर–शून्य भाषा में मर्मस्पर्शी बातें कही हैं। आज से कई सौ वर्षों पूर्व कबीर का काव्य जितना प्रासंगिक था उतना ही आज भी है।

कबीरदास जी निर्भीक और स्पष्टवादी संत थे। कट्टरता और रूढ़िवादिता के वे बिल्कुल खिलाफ़ थे। कबीरदास जी को किसी व्यक्ति, जाति, धर्म या समुदाय से कोई द्वेश नहीं था। उनका मानना था कि आत्मा की कोई जाति नहीं है। सब जीव एक परम–ज्योति से उत्पन्न हुए हैं।

कबीरदास जी ने ईश्वर की साधना के लिए सन्यास का मार्ग नहीं बताया। उन्होंने गृहस्थ–जीवन की सराहना की है। वे खुद गृहस्थ थे और ज़्यादा समय साधु–संतों की संगति में बिताते थे। उन्हें धन–संग्रह का लोभ नहीं था। कबीरदास जी निर्धन थे लेकिन उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाए। उनका कहना था –

साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधु नाहिं।।

कवि होने के साथ–साथ कबीर दार्शनिक भी थे। उन्होंने अपनी वाणी को 'ब्रह्म–विचार' कहा। कबीर का ब्रह्म–विचार ही उनकी दार्शनिक विचारधारा है जो शंकराचार्य के अद्वैतवाद से अधिक प्रभावित है। उनके अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति भक्ति के द्वारा की जा सकती है। जीवात्मा परम ब्रह्म का ही अंश है। माया के कारण दोनों में पृथकता रहती है। उनकी स्थिति समुद्र और बूँद के समान होती है। जैसे ही माया का आवरण हट जाता है, जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। उसी प्रकार जैसे जल के भीतर कुंभ के फूट जाने पर कुंभ के भीतर का जल बाहर के जल में मिल जाता है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहर, भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना,
यह तत कथै गियानी।।

कबीर का रहस्यवाद सर्वश्रेष्ठ है। उनका रहस्यवाद, जीवात्मा का परमात्मा से संबंध स्थापित करता है। उन्होंने ईश्वर को प्रियतम माना है। कबीर ने प्रियतम के प्रति अपने प्रेम की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

कबीर रेख सिन्दूर की, काजर किया न जाई।
नैननि प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाई।।

उनका भावनात्मक रहस्यवाद दांपत्य प्रेम पर आधारित है। प्रियतम से मिलने पर द्वैत–भावना समाप्त हो जाती है, अहंभाव नष्ट हो जाता है और संपूर्ण विश्व ब्रह्ममय हो जाता है।

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

निर्गुण मत के सबसे बड़े सन्त होने के कारण उनके सिद्धांतों ने सब संतों को प्रभावित किया। कबीर ने सत्य के अनुभव से ज्ञान प्राप्त किया, पुस्तकों को पढ़कर नहीं। 'कागद की लेखी नहीं, आँखों की देखी' कहने वाले कबीर एक महान आध्यात्मिक क्रान्ति के प्रवर्तक हुए।

भारत में भिन्न–भिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। इन लोगों में आए दिन धर्म को लेकर तनाव बना रहता है। कबीरदास जी ने हिन्दू और मुस्लिम समुदाय की एकता का हर संभव प्रयास किया। उनके अनुसार–

''कोई हिन्दू कोई तुरक कहाबौ, एक
जमीं पर रहिए।''

निर्भीकता और सत्यवादिता कबीर के व्यक्तित्त्व के मूल तत्त्व थे। उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों धर्मों की रूढ़िवादिता, हठवादिता और अनुदारता का डटकर विरोध किया। हिन्दू धर्म में व्याप्त अंधविश्वासों के बारे में उन्होंने कहा–

मुंड मुंडायै हरि मिलै तो सब कोई लेत मुंडाय।
बार–बार के मुंडते भेड़ न बैकुण्ठ जाए।

मुसलमानों की नमाज़, रोज़ा और पूजा करने के ढंग पर भी उन्होंने व्यंग्य किया –

कांकर पात्थर जोड़ि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

हमारे देश में पाखंडी बाबाओं की भीड़ लगी है। ये धर्म के ठेकेदार लोगों को खूब मूर्ख बनाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। इन पाखंडी योगियों को खरी–खरी सुनाते हुए उन्होंने कहा –

मान न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिर में बैठे।
नाम छाँड़ि पूजन–लागे पथरा।
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ा ले।
दढ़िया बढ़ाय जोगी बनि गेलै बकरा।।

भारत को भ्रष्टाचार ने खोखला कर दिया है। भष्टाचार की जड़ें चारों तरफ फैली हैं।

हैं। पैसे के लोभ ने मनुष्य को अंधा बना दिया है। कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से मानव–मात्र को संतोषी बनने की प्रेरणा दी है–

साईं इतना दीजिए, जामैं कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधू ना भूखा जाय।।

भारत में जाति–प्रथा का बोलबाला है। तथाकथित ऊँची और नीची जातियों के लोग परस्पर झगड़ते रहते हैं। कबीर जाति–पाँति के सर्वथा विरुद्ध थे। उन्होंने कहा–

एक ही रक्त से बने हैं, कौ ब्राह्मण कौ सूद्रा।''

संत कवि कबीरदास ने अपने काव्य के माध्यम से मानव–मात्र को प्रेम का पाठ पढ़ाया है। कोरा–ज्ञान मनुश्य को महान नहीं बनाता उसके अंदर प्रेम की भावना भी होनी चाहिए।

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय,
एकै आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।

कबीर क्रांतिकारी कवि तो थे ही साथ ही सच्चे समाज–सुधारक भी थे। उन्होंने आम जनता को ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर ज़ोर दिया है। कबीर की सम–दृष्टि उन्हें सार्वभौमिक बना देती है। उनके काव्य ने भारतीय समाज को स्वस्थ बनाकर एक नई राह दिखाई है। उनका काव्य प्रगतिशीलता और मानवता की भावना से परिपूर्ण है।

उन्होंने समाज में फैली सभी कुरीतियों, जैसे–बाह्य–आडंबरों, मूर्ति–पूजा, अवतारवाद, तीर्थ–यात्रा, वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति–पाँति के भेदभाव, सांप्रदायिकता की भावना आदि का दृढ़तापूर्वक विरोध किया।

मसि कागद छुयौ नहिं, कलम गह्यौ नहिं हाथ

ऐसा कहने वाले कवि ने बड़ी निर्भीकता से समाज की हर बुराई पर प्रहार किया।

कबीरदास जी ने सिर्फ समाज की बुराईयों पर ही चर्चा नहीं की अपितु लोगों को जीने की कला भी सिखाई। जीवन के हर पहलू से संबंधित दोहे, लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। उन्होंने इधर–उधर ईश्वर को खोजने के बदले अपने अंदर परमात्मा को तलाशने को कहा–

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं।
ऐसे घटि–घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाहीं।।

कबीर ने मानव की सभी मनोभावनाओं और मनोवृत्तियों को उकेरा है–

दोष पराये देखि करि, चलै हसन्त–हसन्त।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त।।

साथ ही–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह दूसरों में बुराईयाँ ढूँढ़ता रहता है चाहे खुद कितना भी बुरा क्यों न हो।

लोग पैसे कमाने में अपना जीवन लगा देते हैं। अमीरी के साथ–साथ अहंकार की भावना भी आ जाती है। ऐसे लोगों को कबीरदास जी का कहना है –

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर।।

साथ ही यह भी कहा है –

चींटी शक्कर लै चलि, हाथी के सिर धूरि।

इतना ही नहीं, समाज में लोगों के साथ कैसा व्यवहार किया जाये, इसकी शिक्षा भी कबीरदासजी ने दी है –

ऐसी बानि बोलिए, मन का आपा खोय,
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय।

सिर्फ धन कमाना और स्वार्थ साधना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। परोपकार करना, दुःखी लोगों की मदद करने में ही जीवन का सार है। उन्होंने यह कहकर परोपकार करने की प्रेरणा दी–

वृद्ध कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर।।

मानव–मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं से वे अवगत हैं, तभी तो मनुष्य की प्रवृत्ति के बारे में वे कहते हैं –

आज कहै कल भजूँगा, काल कहै फिर काल।
आज–काल के करत हीं, औसर जासि चाल।।

वस्तुतः जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है, जिसपर कबीर के काव्य में चर्चा न की गई हो। कई सौ साल पहले लिखे गये ये दोहे आज ज़्यादा प्रासंगिक जान पड़ते हैं। तत्कालीन परिवेश की दृष्टि से तो कबीर का काव्य एक बहुमूल्य दस्तावेज़ है ही, वर्तमान समय में भी कबीर के काव्य की बहुत उपयोगिता है।

वर्षों पूर्व क्रांतिकारी कवि कबीरदास जी ने जो मशाल जलाई थी, वह युगों–युगों तक भारत–भूमि के लोगों का मार्गदर्शन करेगी।

निष्कर्ष

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक कई कवियों का प्रादुभार्व हुआ किंतु कबीरदास जी इन सबमें से सबसे ज़्यादा लोकप्रिय हैं। सरल भाषा में सच्ची बात कहना, कबीर के काव्य की विशेषता है। समाज में व्याप्त बुराईयों को उजागर कर उन पर प्रहार करके कबीर ने अपनी निर्भीकता का परिचय दिया। हमारे देश में व्याप्त जाति–प्रथा, सांप्रदायिकता की भावना तथा ऊँच–नीच के भेद–भाव ने देश को खोखला कर दिया है। कबीर दास जी ने इन सब बुराईयों को खत्म कर एक स्वस्थ समाज के स्थापना की कामना की है। उन्होंने आत्म–शुद्धि पर बल दिया है। हमारे देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला है, कबीर दास जी का काव्य हमें चरित्रवान बनने और भ्रष्ट आचरण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है। अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने मानव–मात्र का मार्गदर्शन किया है। हिन्दी साहित्य के आकाश में कबीर दास जी एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र हैं, जिनकी आभा कभी धूमिल नहीं होगी।

संदर्भ :–

1. भारत की महान विभूतियाँ, शबरी शिक्षा संस्थान, सेलम,पृ0 सं. 33

डॉ. सुधा शर्मा
सहायक प्राध्यापिका एवं विभागाध्यक्षा
हिन्दी निर्मला कॉलेज फॉर वीमेन (स्वायत्त)
कोयम्बटूर तमिलनाडु
28/48, लाल बहादुर कॉलोनी, पीलामेडु,
कोयम्बटूर–641 004. तमिलनाडु।
मोबाइल नम्बरः– 9677610830
ई–मेलःdept.hindi@gmail.com

31

धर्मबीर भारती के उपन्यास गुनाहों का देवता में सामाजिक समस्याएँ

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांशः–

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की समस्याओं का चित्रण करना साहित्यकार का दायित्व है सामाजिक प्रभाव और प्रेरणा के पीछे साहित्यकार की मानसिक प्रक्रिया निहित रहती है धर्मबीर भारती के अनुसार सृजन के संगो को स्मरण करो तो अदबदा कर वे क्षण याद आयेंगे जो मन पर जाने कब से अपनी छाप छोड गये है 1.

भारती जी का जीवन उनके लिए सबसे बडा प्रेरक है उन्होने जो कुछ अनुभव किया उसे अपने साहित्य में व्यक्त किया है। वे स्वयं लिखते है–

में अपने को स्वतः में सम्पूर्ण निस्संग, निरपेक्ष सत्य नही मानता मेरी परिस्थितियॉ मेरे जीवन में आने और चले जाने वालने लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ण, मेरे संघर्ष मेरी समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्यिक प्रवृतियों इन सभी का मेरे और कविता के रूप गठन और विकास में प्रत्यक्ष भाग रहा है। 2

धर्मबीर भारती का जन्म प्रयाग के अतरसुइया मौहल्ले में 25 दिसम्बर सन 1926 को हुआ सन 1943 में हाई स्कूल प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा सन् 1915 में एम. ए पास किया धर्मबीर भारती पर सिद्धो वैस्नवों अस्तित्ववाद का प्रभाव पडा है जो उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। उनके व्यक्ति की विलक्षणता ही उनके कृतित्व के उत्कर्ष की आधार भमि है। भारती जी का जीवन संघर्ष पूर्ण रहा है। उन्होने जीवन में दुख दर्द सहे हैं। उन्ही के शब्दों में –

में अपना पथ बना रहा हूँ, जिन्दगी से अलग रहकर नही जिन्दगी के संघर्षो को झेलता हुआ उसके दुख दर्द में एक गंभीर अर्थ ढूँढता हुआ और इस अर्थ के सहारे अपने को जनव्यापी 3.

सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करता हुआ है जो उनके व्यक्तित्व की सम्पन्नता का मूल रहस्य है। धर्मबीर भारती ने गुनाहों का देवता तथासूरज का सातवा घोडा' दो उपन्यासों की रचना की है। जिसमें उन्होने अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। गुनाहों का देवता उपन्याससें में नामक चन्दर कपूर प्रयाग विश्व विद्यालय का का रिसर्च स्कॉलर है। है। डॉ शुक्ला इसके गुरू थे जिनका विशेष प्यार एवं सहयोग भावना चन्दर के साथ की शुक्ला जी की पुत्री सुधा एवं चन्दर के बीच प्रेम भावना स्थपित हो जाती है लेकिन डॉ शुक्ला की रूढिवादी सोच के कारण विवाह सम्पन्न नही हो पाता भावना में जीने वाला चन्दर सुधा के प्रेम में असफल होने पर वासना को ही सर्वोपरि मानकर गुनाह के मार्ग पर चल पडता है सुधा का चन्दर से विवाह ना होने के कारण असफल मौत का शिकार हो जाती है। सुधा के जीव में चन्दर की महत्ता रेवता तुल्य थी लेकिन उसके प्रेम मेंअसफल रहने के कारण वह गुनाहों के मार्ग पर चल पडता है बिल्कुल शून्य सा हो जाता है। प्रस्तुत नाटक की कथा आर्कषण विकर्षण के माध्यम से मानव मन की गहराईयों में उतर कर उस मनोवैज्ञानों सत्य को खोजती है। कि बासना और स्नेह शरीर की प्यास और भावना वास्तव में एक सिक्के के दो पहलू है– यर्थाथ उवं आदर्श । शरीर की प्यास भी उतनी ही स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पुकार।

असफल प्रेम एवं अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत करना, प्रलय के विभिन्न रूपों विवाहेत्तर प्रेम को लेकर पुरूष एवं नारी मनोविज्ञान की भिन्नता को दायित्विक प्रेम के प्रश्न को, प्रेम ने एक निष्ठता की मान्यता को विश्लेजित करना – नाटक का उददेश्य रहा है। भारती जी ने प्रस्तुत नाटक में निम्नलिखित मध्यम वर्गीय समस्याओं को चित्रित किया है। मध्यवर्गीय समस्या, प्रेम सम्बन्धी, काम सम्बन्धी एवं अर्थ सम्बन्धी समस्याएँ, मध्य वर्ग की समस्या – हिन्दी साहित्य के कोश के अनुसार मध्यवर्ग की की परिभाषा पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया है। कि एक मध्यवर्ग की आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषतः बुद्धि प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रान्ति के प्रायः समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में ही होता है। 4.

गुनाहों के देवता के सभी पात्र मध्यवर्गीय है। चन्दर, सुधा, पम्मी, विनती सभी मध्यवर्गीय समस्याओं से जुडे है चन्दर भावुक है और इसी भावुकता के कारण वह पहले सुधा से फिर पम्मी से अन्त में विनती से प्रेम करता है। पात्रा गेसू मध्यवर्गीय व्यक्ति की तरह अपनी वेशभूषा के प्रति सचेत रहती है। गेसू जब सुधा के घर आई तो उसने सफेद रेशम की सलवार, रेशम का कुर्ता पहना था और उस पर बहुत हल्के शरबती फॉलसई रंग की चुन्नी ओढे हुई थी 5.

सुधा और गेसू दोनों मध्यवर्ग की हैं इसी कारण उन्हें विद्यालय में पढने के लिए नही भेजा जाता क्योकि वहाँ लडके पढते हैं बिसरिया जब सुधा को पढाने आता है तो वहॉ सुधा अकेले नही बैठना चाहती डॉ शुक्ला विवाह में स्वछदता का विरोध करते है वे दूसरी जाति में विवाह के विरोधी हैं। वे इसे जातिगत पतन मानते हैं। जब अलग अलग जाति में अलग अलग रीति रिवाज है तो एक जाति की लडकी दूसरी जाति में जाकरी कभी भी अपने को ठीक से संतुलित नही कर सकती । 6.

प्रणम की समस्याः– प्रणम मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है सृष्टि के आदि पुरूषों एवं स्त्रियों में भी इस प्रवृति के दर्शन होते हैं प्रस्तुत उपन्यास में चन्दर सुधा की प्रतीक्षा में एक पार्क में टहल रहता है वही उसका परिचय कवि बिसरिया से होता है क्योकि कवि आमतौर पर प्रेमी होते हैं। बिसरिया बैठा बैठा सोच रहा है कि प्रेम क्या होता है ? क्यों होता है? कविता क्यों लिखी जाती है? तब हॅसकर कटता है– प्रेम एक तरह की बिमारी होती है, मानसिक बिमारी जो मौसम बदलने के दिनों में होती है, मसलन तवार कार्तिक या फाल्गुन चैत। उसका सम्बन्ध रीढ की हडडी से होता है, सुधा के प्रेम में भानुकता और नादानी है, यथार्थ की भूमि पर उसके पाँव बहुत गहरे नहीं बैठे है। सुधा ने सोचा था कि विवाह के बाद बह चन्दर से सम्पर्क बनाए रखेगी

परन्तु मध्यवर्गीय वास्तविकता उसके सम्मुख भी आई और पति के घर में प्रेमी के प्रति मानसिक सम्बन्धता का निर्वाह कठिन ही नही असम्भव जान पडने लगा असफल प्रणम के बाद जीवन प्रायः सन्तुलित नही रहता सुधा का जीवन नष्ट हुआ उधर चन्दर असंतुलित हो गया प्रेम में धनी निर्धात बडा, छोटा विवाहित, अविवाहित, आदि का कोई आदि का कोई अन्तर नही देखा जाता इसीलिए तो पम्मी विवाहित व चन्दर से उम्र में बडी होने पर चन्दर से प्रेम करती है। मध्यवर्गीय जीवन में व्यक्ति निरंतर अभाव का अनुभव करता है। और उसकी पूर्ति काल्पनिक दुनियॉ में पहुॅच कर करता है सुधा विवाह के पश्चात भी चन्दर से प्रेम करती है युवक युवती प्रणम की परिणति विवाह में तो देखना चाहते है पर उनमें से बहुत कम में अपना आत्मबल और साहस होता है कि माँ बाप की इच्छा के विरूद्ध चल सके तथा उनकी सहायता के बिना अपने पांव पर खडे हो सके तथा उनकी सहायता के बिना अपने पांव पर खडे हो सके उन्हें अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं को कुचल देना पडता है ।

पारिवारिक समस्याएः–

परिवार एक ऐसा स्थाई समूह है जिससे व्यक्ति का जन्म से मृत्यु पर्यान्त किसी न किसी रूप में सम्बंध है। समाज परिवारों का ही संकलन है। पारिवारिक टूटन ही सामाजिक विघटन की सर्वप्रथम सूचना है। परिवार के विश्रंखल होने का केवल एक कारण ही नहीं है बल्कि आर्थिक समस्या, सम्बंधों में बिखराव, सामाजिक ढाँचा, वैयाक्तिक स्वतंत्रता, गृहस्थ जीवन, अति बौद्धिक की ओर झुकाव के अनेक कारण हैं जो परिवार के गहन को शिथिल करते हैं। पारिवारिक अलगात के कारण समाज की स्थिति शिथिल होती जा रही है। व्यक्ति अपने सम्बन्धों के संघर्षो में उलझ सामाजिकता से परे होता जा रहा है प्रस्तुत उपन्यास की पात्रा सुधा की माँ बचपन में चल बसती है उसके पालन पोषण हेतु उसके पिता उसे बुआ के पास गॉव भेज देते हैं। बडी होने पर जब वह वापिस अपने पिता के पास आती है तो संस्कारों के अभाव में आधी जंगली होती है तरकारी में घी कम होने पर वह महासजिन का चौका झूठा कर देती है रात में फूल ताडेकर ना लाने पर अक्सर उसने माली को दॉत से काट खाया था चन्दर सौतेली माँ का बेटा है। चन्दर अपने परिवार से झगडा करके प्रयाग से यहाँ आया हुआ है डॉ शुक्ला उसका खर्चा उठाते हैं। डॉ शुक्ला एवं सुधा के सम्पर्क में आने के पश्चात उसके जीवन में कुछ दिनों के लिए बहार आती है। लेकिन सुधा के ससुराल जाने के बाद वह छिन जाती है। विनती सुधा की फुफेरी बहन पारिवारिक स्नेह में वंचित है। उसके जन्म के साथ ही उसके पिता भी चल बसते हैं। जिसके कारण उसकी माँ उसे अभागिन समझती है। विनती की माँ समय असमय उसे प्रताजित करती रहती है। वह कितनी प्रताडना और कितने अपमान में पली है इसका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। सुधा के पति कैलाश बाबू व शंकर बाबू की शादी के पश्चात् पारिवारिक जीवन संतोष जनक नही है। शंकर की आयु तीस वर्ष उसकी पत्नी पुत्र जन्म के अवसर पर स्वर्ग सिधार जाती है दूसरा विवाह वे करना नही चाहते दूसरी ओर कैलाश का पारिवारिक जीवन भी संतोष जनक नही है। सुधा विवाह के पश्चात भी चन्दर को प्रेम करती है। सुधा भले ही पति कैलाश विवश होकर तन देती है। लेकिन कैलाश को सन्तुष्ट नही कर पाती अन्त में इसी तनाव में वह कैलाश बाबू को अकेला छोड जाती है।

पम्मी व बंटी दोनों का पारिवारिक जीवन असन्तुलित है।

विवाह सम्बंधी समस्याएँः–

भारतीय समाज में विवाह की पद्धति परमपरागत एवं सनातन है– सामाजिक संस्थाओं में विवाह का स्थान सर्वोपरी है। सुव्यवस्थित रूप से सृष्टि को संचालित करने, पारिवारिक जीवन को मधुर बनाने, सामाजिक जीवन में काम भावना को पवित्रता का आकार प्रदान करने का श्रेय विवाह को ही है।''8

वैवाहिक सम्बंधो के अंतर्गत वर्तमान समाज में परिलक्षित होता है कि अभिभावक वर्ग अपनी इच्छा के अनुसार विवाह सम्बंध जोडते हैं पर वे वर पक्ष की आर्थिक सम्पन्नता और विपन्नता को दृष्टि में रखकर भी कन्याओं को विवाह सूत्र में बांधने का निर्णय लेते है।

उपन्यास में चन्दर और सुधा के परस्पर आकर्षण–विकर्षण के माध्यम से मानव मन की गहराईयों में उतरकर मनोवैज्ञानिक सत्य को खोज निकाला है।

सारांशः–

भारती के तीखे जीवन संघर्ष से गुजरते हुए अपने जीवन का मार्ग अपनाना पडा। चन्दर के माध्यम से मानव मन की गहराईयों में उतरकर इस मनोवैज्ञानिक सत्य को जोडा है कि वासना और स्नेह, शरीर की प्यास वास्तव में एक सिक्के के दो पहलू है। प्रेम के अलावा जिन्दगी, समाज, मानव मूल्य आदि से सम्बंधित समस्याऐं भी प्रस्तुत की गई है। पारिवारिक समस्याओं में पिता–पुत्र, व पति–पत्नि में आंतिरक मेल नहीं रहा । सभी समस्याओं का मूल आधार अर्थ होता है। प्रस्तुत उपन्यास में उपर्युक्त सभी समस्याओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूचिः–

1. डॉ धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृ0 15 (भूमिका)
2. वही, ठंडा लोहा, भूमिका, पृ0 21
3. डॉ कृष्ण देव झारी, डॉ0 धर्मवीर भारती और कनुप्रिया, पृ0 4
4. हिन्दी साहित्य कोष, पृ0 564
5. डॉ धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ0 68
6. वही पृ0 54
7. वही पृ0 10–11
8. डॉ0 सीताराम झा, भारतीय समाज का स्वरूप, पृ0 139

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल, हरियाणा

32

Impact of accessibility and usage of electronic knowledge services on the efficiency of students in selected technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.

Dharmender Singh[1], Dr. Dharampal Singh, Dr. Ram Chander

Abstract:-

This paper is an attempt to study the use of electronic information resources, the collection of print and electronic journals its awareness among the users, and the places where the users are accessing these resources. A total number of 120 users from the, postgraduate, research scholar and faculty members were selected and their response was obtained with the help of questionnaire. The findings show that users from all these categories were using e-resources; the awareness about e-resources encourages users to use such resources to the maximum; and the users are using computer center and hostels more for accessing the information. The impact of e-resources was visible from the decrease in number of printed journals in comparison to the increase in number of electronic journals. The use of e-journals has increased manifold. The printed material is being quickly replaced by the electronic resources.

Key Words:

Case study, Electronic Journals, Electronic Information Resources, Usage of E-Resources, Printed Journals.

Introduction:

Information and communication technologies (ICTs) are seen as general-purpose forms of technology with applicability across a broad range of uses (Ashcroft & Watts 2005 Katundu 2000 Ojedokun&Lumande 2005 Powell 2002 Stilwell 2007). The application and integration of ICTs may be varied, depending on the specific uses to which they are put. They are therefore regarded as being applicable to specific industrial and professional sectors, such as libraries, banking, healthcare, and education. Academic libraries have benefited from the application of ICTs in information storage and retrieval, and in that context potential skills requirements on the part of users include familiarity with computer packages, the ability to use internet resources such as e-mail and e-databases, and information retrieval skills such as the ability to conduct Boolean or keyword searches.

When first introduced into academic libraries, ICTs were applied to carry outfunctions such as cataloguing, the creation of online public access catalogues (OPACs), acquisitions, circulation, and processes such as digitization (Zainab, Abdullah &Anuar 2004). This focus limited their application to control by the librarians and to the accessing of information resources within one's own library. Today the use of ICTs in academic libraries focuses more strongly on the users, the infrastructure, and the skills that users should possess in order to benefit from access to unlimited information resources. The importance of ICTs therefore lies more in their ability to facilitate increased access to information and to promote wider communication. This article deals more specifically with ICT infrastructure, ICT competencies, and the use of electronic resources. ICT infrastructure applies to specific components, including PC workstations for students, intranets and the internet, computer application packages, and connectivity. ICT competencies refer to the students' basic skills in the use of computers and the internet for information retrieval.

Ajuwon (2006) conducted a study of the physicians' use of the Internet for health information for patient care at the University College Hospital (UCH) Ibadan, Nigeria. The findings revealed that 98% of the respondents had used the Internet. A majority (76%) accessed the Internet from cyber cafes. Ninety percent reported that they had obtained information from the Internet for patient care; of this number, 76.2% had searched a database.

Asemi (2005) did a case study of Medical Sciences University of Isfahan (MUI), Iran. The results of the study showed that all the respondents used the Internet frequently because all faculties had an Internet connection. It was revealed that the researchers of the university were getting quality health information and patient care through the Internet. Fifty-five percent of respondents searched for scientific health information through the Internet because the university library provided access to databases and online journals students and staff.

Nicholas (2003) conducted a study in the UK to examine the use of the web for health Information and advice. More than 1,300 people were surveyed. The study showed that 66% of the respondents accessed the Internet from home, 28% from work, and the remainder

(6%) used a combination of both work and home.

Okoye and Ejikeme (2011) affirmed the necessity of accessing needed information research, in enriching education and sharing of knowledge; since there is a critical need to make research results available to as many academics and elite class as possible. However, despite the inherent benefits, researchers into the use of electronic resources have examined constraints associated with the use of ICTs and e-resources.

E- Resource

Electronic represent an increasingly important component of the collection building activities of libraries electronic resources refer to those materials that require computer access whether through a personal computer mainframe or handheld mobile device. They may either be accessed remotely via the internet or locally. Some of the most frequently encountered types are.

1. E-journals.
2. E-books.
3. Full-text databases.
4. Reference databases (biographies, dictionaries directories encyclopedias.)
5. Numeric and statistical databases.
6. E-images.
7. E- audio and visual resources.

Electronic resources whether acquired via purchase or license, free from the web, bron digital or multiple format materials (CD –ROM combined with a book) Electronic resources present a number of challenges notencountered with the selection and acquisition of traditional analog materials and it is advisable for the library to develop clear policies and processes for the selection and management of such resources. This will provide clarity to staff and ensure that electronic resources within the library are developed whit due consideration of cost, technical feasibility, licensing, access and preservation requirements, and constraints.

Research Methodology

In the present study the questionnaire method has been adopted to collect information from the respondents. A well-structured questionnaire covering all the facets of the topic has been prepared and distributed to students of technical streams of various departments inGuru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana

Aim of the study

The aim of the paper was to investigate the effect ofaccessibility and utilization of electronic resources onproductivity of students in technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana. Inother words, the paper aimed to determine if there is positivecorrelation between accessibility and utilization of electronicresources and productivity of academic staff in GJU University, Hisar. Thus the following hypothesis was formulated to guide the study.

1. There is no significant correlation between accessibility and utilization of electronic information resources and productivity of students in technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.

2. The hypothesis was further formulated and tested at international level of research productivity thus.

3. There is no significant correlation between accessibility and utilization of electronic information resources and international productivity of students in technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.

Category of User .

Table. 1

Academics 100 %	10%
Students 100 %	76%
Researchers 100%	14%

A total of 120 questionnaires were distributed randomly to the GJU users, of which 100 were returned and used for analysis. Out of the 100 users, 10.0 percent are academics, 76.0 percent are students and 14.0 percent are researcher's shows user distributions of the respondents.

Access to Internet.

Table.2

Work	100 %	3 %
Library	100%	20%
Residential Hall	100%	28%
Cyber Café	100 %	19 %
Home	100 %	30 %

The findings showed that 3.0 percent users acknowledge access to internet at work place, 20.0 percent accessed internet at library, 30.0 percent accessed at home, 28.0 percent accessed internet at residential hall, and 19.0 percent users access at cyber café. Finally we can decide that, most of the users access internet at home and residential hall than other places.

Access to Electronic Resources.

Table.3

Every Day 100	40 %
A few time every week 100	20 %
At last once a weeks 1001	0 %
At Least once a for Night 100	0 %
At least once a month 100	10 %

It was found that most of the 44.0 percent users access to electronic resources every day, 27.0 percent accessed electronic resources a few times every week, 17.0 percent accessed at least once a week, 3.0 percent accessed at least once a fortnight and 9.0 percent users accessed electronic resources at least once a month. Here we also see that, most of the GJU users used e-resources every day, which is good sign for technical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.

Purpose of using electronic resources.

Table.4

Research	100 %	6 %
Learning	100 %	54%
Current Information	100%	35 %
Teaching	100 %	5 %

The GJU users use electronic resources for many purposes. According to the respondents, 54.0 percent users mostly used electronic resources for learning, 35.0 percent used e-resources for current information, 6.0 percent used electronic resources for research purpose and 5.0 percent used electronic resources for teaching purpose. Here, it is found that, more than half of respondents used e-resources for learning purposes.

Types of Electronic Resources use.

Table.5

Library Catalogue	100 %	11 %
Bibliographic databases	100 %	6 %
Electronic Books	100 %	21 %
Electronic Journals	100 %	62 %

Analyzing the respondents replied, it has been found that, the majority of users 62.0 percent prefer to use electronic journals, second highest number of users 21.0 percent used electronic books, 11.0 percent users used library catalogue and the lowest 6.0 percent users used bibliographic databases. Here it is found that, most of the users use e-journals rather than library catalogue, bibliographic databases and e-books.

Conclusion.

This paper confirms that a large number of e-resources are made available in GJU. This study reveals that, a majority of the users of GJU use e-resources for their learning purpose. It was found that, e-resources materials in GJU are available and users are generally satisfied with these materials. Although GJU lacks of infrastructure facilities, the existing e-resources can fulfill user needs. Moreover, GJU should arranges more training programmes for users, appoint trained professionals with ICT skills and accommodated users opinions on subscribing new e-journals. With the growing popularity of e-resources, the following recommendations are made for improvement in the use of e-resources intechnical University Guru Jambeshwar University of Science and Technology in Haryana.

Reference :

Powell (2002) Supporting the revitalization of public libraries in Africa,Information Development Vol.18(4), pp.245–249.

Stilwell, (2007) Library and information services in South Africa, an overview, IFLA Journal Vol.33 (2), pp.87–108.

Zainab, (2004) Building online historical resources collaboratively, making the most of a digital library to reinforce ICT skills in Malaysia, Information Development,Vol. 20(3), pp.200–210.

Ajuwon, Grace A. (2006). Use of the Internet for health information by physicians for patient care in a teachinghospital in Ibadan, Nigeria. Biomedical Digital Libraries, Vo.3(12), pp.1-9.

Asemi, Asefeh.(2005). Information Searching Habits of Internet Users a case study on the Medical Sciences University of Isfahan, Iran,Webology, Vol.2 (1),pp.1-12 .

Nicholas, David (2003). The British and Their Use of the Web for Health Information and Advice a survey, Aslib Proceedings,Vol.55 (5-6),pp.258-260.

Ejikeme, A. N. (2011). Open Access, Institutional Repositories, and scholarly publishing the role of Librarian in South Eastern Nigeria,Library Philosophy and Practice Vol.2,pp.1-9.

Ashcroft, L(2005). Information Communication Technologies skills for information professionals in developing countries perspectives from a study of the electronic information environment in Nigeria. IFLA Journal , Vol.31(1),pp.6–12.

Katundu (2000) African scientific information in international databases, Information Development Vol.16 (3), pp.164–169.
Ojedokun, Lumande(2005) Cooperative electronic networks of academic libraries in southern Africa. Information Development Vol. 21(1), pp.66–73.

Dharmender Singh[1]
Research Scholars,
Singhania University,
Pacheri Bari, Jhunjhunu (Raj.)
E-Mail- dahiya.lis@gmail.com

Dr. Dharampal Singh[2]
Research Guide,
Department of Library &Information Science
Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu(Raj.)
E-Mail- dharampal4060@gmail.com

Dr. Ram Chander[3]
Co-Research Guide, Librarian,
Department of Library &Information Science
Aggarwal College Ballabgarh, Faridabad. (Haryana).
E- Mail ramcahnder@aggarwal.college.org

33

Conflict Between Tradition and Modernity in Bhabani Bhattacharya's Novel "Music for Mohini"

Sunita Singh[1]

Abstract:-

The Theme of conflict between tradition and modernity assumes great prominence in the novels of the indian novelists of the Gandhian era. The main concern of the novelists of the era was to deal with the changing contemporary situations. This theme occurs in Bhabani Bhattacharya's novels too- most prominently in **Music forMohini and Shadow from Ladakh**, and in flashes in other novels of his. Bhattacharya himself says in a letter to marlene Fisher that "the transition from the old to the new, the crisis of value adaptation, is a strong motif' in many of his novels.[1]

An idealist that he is, Bhattacharya throws hints at what things are adoptable and what arewhat are not. He does not consider all that is old worth discarding and all that is new worth adopting. As Chandrasekharan observes, "with his progressive ideas and his vision of a glorious future he has also great admiration for the spiritual and cultural heritage of the country. Like the great men whom he admired, particularly Tagore and Gandhi, he is also a builder of bridges between the present and the past."[2]

The emphatic message in Bhattacharys's novels is that India should preserve her identity and carve out her own destiny and that her constant aim should be the attainment of the purity, equipoise and altruism. As Marlene Fisher points out, Bhattacharya,s novels "deal with the efforts of human beings to forge and to fulfill workable communal ideals perforce, with the struggle to reconcile individual social goals"[3]

Bhattacharya simplifies in his novels the conflict between tradition and modernity by introducing clearly distinguishable sets of noble and progressive, and selfish and obscurantist Characters. While the noble and progressive Characters welcome the new and fresh ideas, the obscurantist characters with vested interests do not wish to part with the decadent traditions. Bhattacharya believes that sticking to the outdated traditions cause so many social evils such as economic and social exploitation, inequality between the sexes, the menace of casteism, cultural erosion etc. It warrants the need of an integral vision which cannot grow out of a static tradition but out of a living understanding and by inculcating human quality.

In Bhabani Bhattacharya's novels the rural people are predominantly traditional and deprived of the fruits of modernity, mainly because of the lackof education and also because the rays of modernity and progressive ideas reach them too late. But it is to the credit of the rural folk that despite their poverty, ignorance and misery, they stick to their cultural and moral values. "Centuries of hardship and strain have not destroyed their faith in human values."[4]

Music for Mohini is regarded by the critics as artistically the most satisfying and best of Bhabani Bhattacharya's novels. While The Chicago Tribune ranks it with pearl S Buck's The Good Earth, Millen Brand praises its 'pure Music.'[5]Thecentral theme in the novel is the conflict between tradition and modernity and at the centre of it there is the novelist's concern for society. With freedom of the country in sight, the novelist fears that the putrid Indian society, caught in the deadly mire of obscurantism, superstition, rituals and obsolete customs, may fail to utilize political freedom for the real progress of the country till it undergoes a complete social and cultural rejuvenation. Reflecting on the degenerated Indian society, the protagonist of the novel,Jayadev, says:

Society, rural society (and nine-tenths of India was rural)
Was sick with taboos and inhibitions of its own making:
the iniquities of caste and untouchability; the ritualism
that passed for religion; the wide-flung cobweb of
superstitious faith. It was all an outgrowth of centuries of
decadence. The purity of ancient though had been lost in
misinterpretation until the dignity of man had become a
mera plaything of vested interest.[6]

He feels

The political implication were visible to all but not the
Social problems. What was political liberty worth to the
Common man if it was part of a renascence in social life?[7]

Bhattacharya implies that in order to make freedom effective in the true sense, India must "reorient her national life on a new social basis." Jayadev is determined to make his contribution to "India's developing struggle for social freedom, the fountain of all true freedom."[8]

Bhattacharya contrasts the old and outdated beliefs with the new and progressive ideas that are coming into vogue as a result of the cultural encounter between the East and West. His disapproval

Of things as matching the horoscopes and looking at the luck sings of the bride's hand before finalizing the marriage or offering the blood by a woman from her bosom to the deity to secure the boon of pregnancy is manifest in the novel. But he disapproves of these things not through open denunciation but by means of gentle irony and humour.

Bhattacharya presents the conflict between tradition and modernity by introducing two categories of
Characters- traditional and modern ones with a few in

between. In Music For Mohini the greatest repositiories of orthodox traditionalism are two old women, Mohini's grandmother (Old Mother)
andJayadev's mother and the votaries of change and modernity are the young and educated characters like Mohini's father', Mohini herself, her husband Jayadev andHarindra. Bhattacharya
Presents the conflict between tradition and modernity in various forms through the life-story of Mohini. The conflict begins when Mohini attains the age of marriage. She has great talent for music.
She has got her songs recorded and has even got a contract to sing for All India Radio once a week.
While for her father, "It is a matter of pride that Mohini gets her songs recorded,"9 for the orthodox Old Mother, it is a disgrace to the family:
I won't have this family disgraced.Rogues and roughs and scamps,
all the vagabonds and cutthroats in the four bazaars mouthing the name
of our girl with a leer, befouling it, and they make her sing at their bidding.[9]

Old Mother is insistent on a horoscope made for Mohini but her father retorts, "Horoscope, Mother?
In this age of microscope, who needs a oroscope?"[10]
Mohini's father, a professor, has obviously a leaning towards modernity. He prefers a microscope to a horoscope and is for a reconciliation of tradition and modernity:
"Luck sings. Horoscopes. What rubbish!" His voice was mocking.
"There is to be a cultural synthesis of a horoscope and a microscope!"[11]

Again, on the day of Mohini's marriage, Old Mother wants Mohini to honour the "time honoured ritual," and observe fast but her father scornfully dismisses it as a "foolish practice,""hating to see his daughter go hungry on this day of joy."[12]

The juxtaposition of the forces of life and anti-life is rendered in terms of Mohini's search for happiness. Her light-hearted childhood comes to an end as soon as negotiation for her marriage begins. Bhattacharya is equally critical of the traditional arranged marriages and modern marriages with matrimonial advertisements, bride showings, interviews and dowries. The whole process of arranged marriages appears to Mohini to be highly commercialized, and the advertisement in the matrimonial colums like "hawked in print" like a toothpaste.[13] There is also a great demand for dowry and the bride showing interviews are a humiliating experience.
Mohini'sinspection by bridegroom and party is a haqqowing tale:
Four pairs of eyes surveyed the girl from foot to head.she had to walk a few steps at the mother's bidding to prove she did not lack grace of movement. They fumbled with her prettily arranged hair and loosened it down on her back to know its length. They rubbed her face with their thumbs to make sure the fair complexion was natural, not of paint. Mohini gulped down tears of shame. when the women stooped to pull upher sari to the knees to inspect the shape of her ankles and legs, father rose to his feet, his face livid.[14]

Mohini's reactions are bitter and she resents being on show just as much as she resents the life-denying aspect of tradition which is rigid in its hold on life. Her anger is not only against the system of bride-showing but also against her grandmother's insistence on the old ways:

Her face drained of colour was like stone till anger made it burn. Then her eyes hardened and her breast heaved. Never has she been so angry with Old Mother. Why must she, who was of anther age, have her way against all reason ?
Why must her antiquated outlook prevail against even Father's judgment?
With her fixed ideas, her iron prejudice against modernism, how could she
expect to know, to feel, to understand the new generation? Misery to
dancein public! She,Mohini, would love to dance on a ballroom floor in the English way, in tune to lovely music.[15]

The choice of a husband for Mohini, however, is finally made on the basis of the luck sings spotted by a bangle-seller. The horoscopes of Mohini and Jayadev are matched and the city-bred Mohini succeeds in persuading her father that she will be happy in a village. Young and inexperienced as she is, she has no idea of thekind of life she would be expected to lead in the village or of the hold of superstition and tradition on the life there. After her marriage, she learns to her dismay that life in the Big House in Behula Village is very different. Dorothy Blair Shimer holds the view that.

Mohini's journey into her unknown life may be seen as symbolic; her future
a probing into India's ancient village centred past, which is at once past, present and future of culture.[16]
Mohini's idealist husband, Jayadev, has already created a role for her to fulfill. To him she is a Gargi or Maitreyi meant to be a perfect helpmate. Mohini is upset by the lack of personal freedom and emotional response:
Mohini was perplexed, Mohini was worried. She, ignorant

one, with a mere smatter of knowledge, was unpretentious. She had no ambitions to be Maitreyi! She hated seriousStudy for which she had no patience. She needed life, feeling.She was not curious about East-West culture patterns. NoOne, by temperament, could be less like Maitreyi.[17]

Nevertheless, Mohini gradually adapts herself to the life style and traditions of the Big House and the Behulavillage.She resolves to help her husband in hisself appointed task of educating the villagers and weeding out their superstitions and starts teaching the village women.

For Jayadev his village Behula and its Big House to which he belongs are symbols of his country with their social putrefaction caused by the centuries of blind faith and iron traditions. Musing over the condition of India and Big House,he wonders:

What had happened to the ancient quest of the Hindus,
The quest for satyam, sivam,sundaram-Truth, Goodwill
And Beauty? The core, the spiritual content had been choked
By centuries of evil overgrowth. Misguided faith burned
Like a great lamp of oil that gave little light but a great
Deal of smoke. It was this smoke which was pouring over
India, this smoke which made the Big House stifling.[18]

Just as India finds it difficult to introduce any social reforms because of the stubbornness of its conservative priests and obscurantist social mentors, so does the Big House of Behula defy any change in its traditional set up because of the eccentricities of Jayadev'smother. Describing her mother, Jayadev 's sister Rooplekha tells Mohini:

My mother is the usual orthodox Hindu woman, only she
Is more intense than others, and all her faith is pinned to
Family tradition. No deviation for her,not one inch.Stern-
Willed, though tender at heart, she is a simple soul, with a
Singleness of purpose, a one-eyed mind. She exits for the
Big House; she wouldn't have it changed the least way.[19]

On the contrary, Jayadev “has no liking for ritual of any kind.” His idea of modernization is opposed both to the slavish imitation of the western modes of life and the blind adherence to the ancienttraditions of India. He stands for” a harmony of cultures for india. He reads ancient thought in today's light. He seeks in ancient thought sanction for the West-influenced ideals of our time.”[20]Jayadev wants to erect the edfice of new India on the judicious synthesis of the best features in the Western and Eastern cultures.

The conflict between the stubborn and orthodox mother and the enlightened Jayadev is the conflict between traditionalism and modernism. Mohini's failure to conceive, even after eighteen months of marriage, leads directly to a serious clash between Mohini and her mother-in-law – a confrontation that represents old values and the new, the ancient radition and modernity. Mohini's mother-in-law arranges ritual to cure Mohini of her supposed sterility by offering blood from her bosom to the Virgin Goddess. Though Mohini's lucid intelligence is never clouded over, she appears to acquiesce in her mother-in- law's obscurantist ways. She accompanies her mother-in-law to the Devi'shrine.However Jayadev's timely arrival saves her from the Peril.Jayadev's admonition to his mother on this occasion is the novelist's warning to the stubborn mentors of the orthodox Indian society:

Values, Mother? There are values beyond your grasp, since
You'll always try to reach them with your reason, never
With your feelings.Life has punished you… Blind belief
Shapes your thinking; blind belief cannot make a sentiment.[21]

Jayadev's mother concedes defeat and' crushed with despair' says to him, 'Do as you with.'[22]Jayadev stands vindicated when a little later it is discovered that Mohini had already borne the child for three months before she was led to appease the goddess. With the reconciliation between Jayadev and his mother, life for Mohini becomes sweet harmonious music throbbing with every pulsation of her innermost being, as it would be for new India with the regeneration of its social set-up under the influence of modernization:

The Big House lived in her, a part of her inmost self. At
Last, there was no discord. Life was music-a note of song
For the old Mother was in her, a note for Jayadev and his
Rebel gods, a note for the Big House and Behula village,
torn and at cross-purposed for while. Her life was music-
The true quest of every woman, her deepest need.[23]

The harmony which Mohini achieves is through a synthesis of the old and the new, through a reworking of the traditional values into the new needs and ideas, for in themselves alone both are life-denying. The fact of Mohini's pregnancy allows her mother- in-law to transcend the selfish confines of her being in order to understand ther”new revolt, restless spirit of the new dawn.”[24]

The conflict between the old and the new is echoed and reflected at other lelsalso.A group of so-called'ruffians' oppose the marriage of a seventy-year old moneylender with a very young girl and a reformist group a people led by Harindra cleans the temple tank, which had become a breeding ground for malaria, to prove that the devout crocodile was” a figment of fancy.”[25] Harindra has no faith in the caste-system, the myth of the devout crocodile and the ayurvedic system of medicine. His differences with his father over the relative merits of the ayurvedic and modern systems

of medicine and the caste- divisions form integral part of the plot of the novel. It is also reflects in sudha's life who is caught between the needs of life and the belief in the stars.

Music for Mohini, thus, is a novel about the reconciliation of old and new values. Bhattacharya does not suggest that between tradition and modernity one is better than the other, but that the best elements of both are derivable and acceptable. The novel depicts the contry" based on the ancient, but without its clap-trap, absorbing the modern but without dehumanization - an 'amalgam' of the best of the village and the best of the city."[26] Marjorie B. Snyder considers Music for

Mohini as " a sociological battleground in which the older generation clings to tradition" whereas the educated people struggle' to throw away charmas and bangles, to open themselves and their country to western ideas."[27]

SUNITA SINGH
C\O = SHRI ANAND BIHARI SINGH
BARI PATAN DEVI COLONY
GULZARBAGH
PATNA-800007
BIHAR
V.K.S. University, Ara (Bihar)
MOB-8235591032
E.MAIL ID- sunitarajiv49@gmail.com

34

Psychological Analysis of Human characters in Mulk Raj Anand's stories

Dr. Navanit Kumar

Abstract:-

[Psychological analysis of human characters is one of the living aspects of existentialism in the short stories of Indian Dickens namely Mulk Raj Anand. In fact existentialism is a philosophy of human existence, Anand's sincere attempt is "to see reality in naked majesty." And it also concentrates on Man and his place in the present world. The different layers of the sub-conscious minds of the characters like Roopa, a young wife and expectant mother in "The Tamarind Tree', the sexual jealousy of Sajni, a sweeper girl in the Silver Bangles and Ganesh's passion for the beggar in 'The Thief' are successfully analyzed by the writers to prove their existence in this world.]

The writer of under-dogs in Indian English fiction namely Mulk Raj Anand (1905-2004) is no more with us. His departure from this mundane world is painful but his writings fulfill his absence among the common readers. Elizabeth Bowen has rightly pointed out in Tatler, 'Mulk Raj Anand writes about the Indians much as chekhov writes about the Russians, or Sean O' Faolin, or Frank O' Corner writes about the Irish……. Mr. Anand's writing has an attractive sensuous quality. He some show charges his pages with heat, colour, scents. He has, most of all, the touch, the power that makes the writer great-he can give humanness a dignity of its own.' In fact, a large number of scholars and critics have said on Mulk Raj Anand's humanistic and Marxist view but very little is found on his existentialist view not only in his novels but also in his stories.

Existentialism is a philosophical, artistic and literary movement that stresses individual existence and freedom of choice. It concentrates on Man and his place in the present world. As an existentialist he pours out human condition in the chaostic world. The predicament of 'Man' and 'Woman' is his chief concern. And in his writings he tries to search the meaning of life in the vast world that is threatened by the human disasters.

His stories are full of psychological implications which is one of the living aspects of EXISTENTIALISM. In a true sense, Darwin, Freud and Marx have influenced directly and indirectly all existential forms of Philosophy. There are philosophers who don't consider the probing of the mind as one of the subjects of Philosophy. But in the modern world the total man cannot be understood properly without understanding the varying moods and emotions of one's being. For Anand emotions and feelings do have an important place in the life of individual. Stressing the need of psychological study, the novelist of UNTOUCHABLE, OF POWER AND PITY and REFLECTION OF THE WHITE ELEPHANT Mulk Raj Anand strongly says;

"I wanted to reveal ……. the intricate contradictory emotions, feelings, moods and events."

So the total man might be brought to light. **The Tamarind Tree, The Silver Bengles** and **The Thief** are the stories to offer the psycho-analysis of Anand's characters. Anand's hunches for such psychological studies of human beings might have been inspired by his wide reading of existentialist philosophy and by its treatment of still another theme that recurs in the writings of its practioners- the emotional life of man.

Forcing the need of psychological analysis, John Macquarrie rightly points out;

"This again is something that has been in the man neglected by philosophers of the past or else turned over to Psychology. When Philosophy has been dominated by the narrower kinds of rationalism, the changing feelings, moods or affects that appear in the human mind, have been considered irrelevant to philosophy's tasks or even a hindrance in the way of the ideal of objective knowledge. But the existentialists claim that it is precisely through these that we are involved in our world and can learn something about it that are inaccessible to a merely objective building. From Kierkegaard to Heidegger and Sartre the existentialists have provided brilliant analysis of such feeling states as anxiety, boredom, nausea and have sought to show that these are not without their significance for philosophy."[1]

It is not for nothing then that Anand chooses to provide the psychological studies of Human beings through his stories. Different layers of their sub-conscious minds have been deeply analyzed to make us know what they really are and what they pretend to be. Their 'wild swirling waves of desires, their sexual jealousy and deep-seated feeling of guilt which lie buried in the subconscious mind of the protagonist"[2] have been brought to light in the way a psychologist studies his patient.

It is perhaps this undying love for psycho-analysis that seems to have compelled Anand to carve out the story around the famous **The Tamarind Tree**.

In this story Roopa, a young wife and expectant mother emerges as the female heroine with her longing to eat tamarind from her neighbour kesaro's tree. But under the yoke of the fear of the elders and the weight of convention she is

forced to suppress her desire. The sad realization that the social taboos have made it impossible for her to communicate satisfactorily with her husband has exposed her real self. And one is made to believe that "her inner impulses had always remained where they were, incommunicable even to her man."[3]

Pregnant she brings us back to the moments of the night when her husband wanted her blandishment. We are told how she crumpled on her bed, how half out of fear and half out of coquettishness. She had evaded him on the top terrace of the house. It was on that night:

"All the shame had disappeared from her face and she had looked at his strong face, with hard jaw, relieved by the big black eyes. All the impulses of her youth had flared up into the fire which consumed her and filled her with the insanciance of dreams before she knew she had gone off to slep."[4]

Roopa's pang of remorse is that she uselessly resisted him always and now she feels the gnawing desire to be with her husband. Partly she longs for her husband's company and partly she longs for the tamarind fruit;

"I would like to come to tamarind from aunt kesaro."[5]

As Roopa fails to the tamarind fruit' she becomes fearful of the dark shadows of her future. She knows that she has not eaten enough of the good things which make a child's bones strong when her child comes into the world, it might starve for want of enough nourishment. She is tormented by the terrible thought;

"Will the lack of enough nourishment turn the boy into a robber ? It may know somehow that it never had enough as a child, and it may wish to revenge itself on others……."[6]

The remorse, the hunches, for the tamarind fruit and the frightful fear of the dark future make Roopa psychologically defeated and look like the shallow "leaves of the tamarind tree."

One would be mistaken if one wishes to understand Roopa from the outside. It is her interior rather than her exterior that helps to study her personality closely.

If Roopa, a young wife in **The Tamarind Tree** is prevented from communicating with her husband in presence of her elders, Sajani in **The Silver Bangles** has to incur the wrath of Shrimati Gopi Goel, the wife of Shrimati Gopi Goal, the wife of Shri Goel of Amritsar.

A sweeper girl namely Sajani becomes a victim of sexual jealousy. In her daily round she has to do the house of Shri Ram Goel. His wife, suspicious of love connection between her husband and the sweeper girl, wants to get a confirmation of her doubt. Smt. Goel, the wife of Sri Ram Goel has seen on many occasions her husband exchanging glances with the young sweeper girl. She has also found him pressing a coin of money on her soft palm. She wants to explore the young woman's visage.

Perhaps she has caught him red-handed or red headed because "he had looked up to the untouchable girl with the segment of his lascivious lips slavering and wet……."[7]

Shrimati Gopi Goel unfortunately suffers from inferiority complex as the sweeper girl's trim, small crounching figure stand no comparison puppets. She has the sinking feeling therefore, that her husband is indifferent to her. In spite of this routine relation between wife and husband, she doesn't allow any encroachment on her vested interest by any outsiders.

Shrimati Gopi Goel gradually realizes that her husband is a practiced hypocrite in matters of love with her. In fact, his love for her is feigned and affected and not in any useful in her conjugal life.

Sri Ram Goel's private love affair with the untouchable girl is further established when Smt. Goel says;

"I know the kind of lovers who look separates but are drawn by the invisible words of mock poems, and who indulge in all extravagances of connection with an embraces."[8]

Smt. Goel wants Sajni, the sweeper girl to take off those silver bangles which her husband has stolen from her box and has given to the girl. The eyes of the sweeper girl are filled with tears of innocence accused of guilty by this high caste Hindu woman. She is forced to accept the conventional belief; "Untouchables in the south are not supposed to wear silver at all."[9]

Shrimati Goel surpasses all her limit in humiliating Sajani, the untouchable girl by asking her to get out of her houses, as she is afraid that the girl has disturbed the peaceful relation between husband and wife.

"You have not only stolen the bangles, but also my husband."[10]

Thus humiliated Sajni falls down senseless under the weight of humiliation.

Words used by Shrimati Goel are not only angry and harsh they are as piercing as the edge of an arrow and are enough to wound the innocent temperament of Sajni. The sweeper girl is not to blame if her handsome, shapely figure has evoked the emotions of her husband for making love to her. To what extent these savage words cover up the weakness of Shrimati Goel is known but this much is clear enough that their sexual jealously and nothing else compels the mistress to use such font and wretched words. It is probably because;

"The high caste lady of the house, who is sexually frigid, is actually jealous of the attraction her husband feels for the sweeper girl, is only seeking refuge in her caste-superiority to her inferiority vis-à-vis the untouchable beauty."[11]

If sexual jealousy as the central idea of the story 'The Silver Bangles' helps the reader to understand the personality of the protagonist on deeper level of consciousness, 'The Thief', one

of the finest stories of Anand, successfully serves as a befitting tool to understand the prominent figure on psychological plane.

The story writer's chief concern is to expose Ganesh's passion for the beggar woman, the passion that becomes a compassion' in the end. Ganesh is a young man whose philanthropy as well as sensitiveness to the nauseatic condition of the poor creates a compelling situation for him and he is compelled to get out a bag of wheat for the starving beggar woman.

Ganesh, the young hero, comes to realize his place in the world. He tries to establish his existence in the world not merely as an outsider but as a living agent actively engaged to confront it. When he gets up in the morning and looks below from the top terrace of his house, his eyes don't fail to see the sordid sight of a beggar woman picking up a rotten banana peel from the rubbish bin and lick it. This woman with a child, taking shelter on the marble steps at the foot of old king George's statue, compels the young man's attention not only because she is without food and shelter but also because she is beautiful. The slippery pads of her buttocks and the nipple of her bare breasts excite him first. And the maddening waves of his desire for the beggar woman make him restless;

"And as she drifted about like this, Ganesh felt a yearning in his blood, and his breath came and went quickly, until he was nearly chocked in the utter hush of the mornings."[12]

The fascination is over whelming and Ganesh feels a distinct wave of nausea cum pity for the beggar woman. He wants to tell her that she might get cholera if she ate anything out of that bin. But he is equally gripped by fear psychosis. The next day Ganesh again sees this woman feeding her child on a bared breast. It arouses a feeling of unbearable tenderness in him;

"A tenderness, however, which gnawed at his vitals and aroused a lust of which the other point was fixed somewhere in the memorises of his own childhood."[13]

Not, Anand takes us back into the past life of the hero to explain the reason of his passionate warmth for the lady. Ganesh is reminded of the incident in his youth when he had unjustly accused a beggar of stealing a silk dhoti form his study. He had to remain a silent spectator when his servant started beating the beggar. Later on, he was convinced that he needlessly and even unjustly punished the beggar. This violence against the innocent woman haunted the hero and since then he has been in search of expiration of this sin;

"And this hang over of an unkind act against one beggar had become an undertone beneath the lust for another……."[14]

This hate for the thief turns into love for the beggar woman. Hence these ambivalent feelings of love-hate relationship are reflected in the inner and outer personality of Ganesh. The waves of passion are so strongly felt by Ganesh in the presence of the beggar woman feeding her child that he feels like a slow forest fire.

Breathing heavily, hot, suffocated, the hero decides upon a course of action. The lady is found feeding her child but the child goes on crying for want of milk in her breast because there was no milk in the woman's breast.

Ganesh, realizing the need to help the beggar woman, resolves to break the conventional code of morality and honestly and rightly chooses to be a thief for benevolent act than to remain an honest rich young man useful neither for himself nor for the starving millions and millions of children dying without mother's milk because their mothers have to go without food.

Ganesh as an outsider has to live in confrontation with the world. But his self awareness that his being in the world is primarily a matter of finding satisfactory values and guiding one's life by them. He is aware that the existing world around us comprises our needs and desires. The primary or essential need of the beggar women is her bread. And his relationship with her is neither illegal nor amoral. The existential analysis of his character would demand that in the world of one's fellows one must extend a helping hand to justify one's meaningful existence in the world. So, his compassion shown for the beggar woman is justly supported by his existential outlook.

The feeling of hatred for the beggar in the subconscious mind of the protagonist is struggling hard for atonement in the conscious mind. To protect one's life one has to justify sometimes even the immoral acts like "the subterfuges, lies and innuendos" of all kinds."

Ganesh's compassion seems to have been grown out of his consciousness to bring benefit to the suffering humanity. Like Dostoyevsky's character he shows his belief in the immorality of human mind. Hence, he triumphs in his attempt to bring relief to the beggar woman taking a bag of wheat to her. He is never aware of his inability to help the lady. He shares Dostoyevsky's belief that;

"Love for mankind is even altogether unthinkable, and altogether impossible without concomitant faith in the immortality of the human mind."[15]

Like Dostoyevsky neither Maxim Gorky nor M.R. Anand is in the galaxy of great existentialist authors. But a deep study of their works depicts that all of them are much interested in improving the lot of the suffering humanity like optimistic existentialists. In a true sense existentialism essentially studies man and his place in the universe. Dostoyevsky's 'underground' people become the people of 'the Lower Depth' in Gorky and Bhakha Munoo, Old Bapu

Cobbler, Nur, Roopa and Sajani – the poorest of the poor of Indian society. Whereas Anand's existentialist protagonists are prepared for action most of the time, the characters created by the British writers like Norman Mailer, Harold Pinter, Irish Murdoch, Virginia wolf, are reflective in their temperament and in most of the cases are disillusioned.

D.H. Lawrence, a well-known modern writer like Anand was fully convinced of the misery of man but he was equally convinced of the measures to be adopted for the redemption of mankind. Anand, though dissatisfied with society, wants to bring about a change in it through his characters to get an ideal world of happiness for the millions and millions of hungry caravan human beings like the beggar woman in the story The Thief who have no words to speak nor minds to think aloud. Her condition may be compared to the large number of Indian labours during the Lockdown periods due to the Covid-19 outbreak. Like Camus' Anand's vision is a modern one. His existential outlook is not without the mixture of Marxism and humanism. In this godless world as Anand points out, nothing but love and mutual understanding can save the sense of humanity from extinction like Charles Dickens, Tolstoy and D.H. Lawrence.

"As I write, I have tried to drink from the source of love in our people specially poor people and to give them my own exuberant passion, by joining in the burning and melting that goes on in life at its interest."[16]

In sum, Psychological studies of human characters in Mulk Raj Anand's stories like "The Tamarind Tree", "The Silver Bangles" and "The Thief" take an important place in his existential outlook. In these stories Anand considers Man and his dignity major of all things in the hostile world. Through suffering, despair, hope and death, he prepares his characters to be what he calls 'integral human being.' As a short-story writer of the human condition Mulk Raj Anand is always optimistic about man's future like Sartre.

References :

1. Macquarrie John; Existentialism, Pelican books- 1980, PP- 17-18
2. Naik, M.K.; Selected Short-Stories of Mulk Raj Anand, Arnold Heinemany, New Delhi- Page- 284
3. Ibid ; P – 270
4. Ibid ; P – 269
5. Ibid ; P – 269
6. Ibid ; P – 273
7. Ibid ; P – 274
8. Ibid ; P – 281
9. Ibid ; P – 282
10. Ibid ; P – 282
11. Ibid ; P – 284
12. Ibid ; P – 25
13. Ibid ; PP – 285-286
14. Ibid ; P – 287
15. Tripathi, B.N.; Meaning of life in Existentialism, Anuradha Prakashan, Varanasi, 1987, Page- 389.
16. Anand, M.K. ; Why I write in Indian writing in English ed. K.N. Sinha, Heritage Publishers, New Delhi, 1979, Page-9.

Dr. Navanit Kumar, English Teacher

Kendriya Vidyalaya, Katihar

PIN- 854105

Mob. No.- 9430884186

ON FUNCTIONAL RELATION OF MATRIX ARGUMENT

Dr. Kumari Saraswati

Abstract:-

ABSTRACT

In this paper two formulae involving series summation and the diagamma function are established with the help of a generalized Riemann-Liouville operator of fractional calculus of matrix argument.

Introduction

The Riemann – Liouville fractional integral operator of matrix argument of order mxm of a function F(X) is defined and represented as

$$R^{(\alpha,m)}_{0,x}[F(X)] = \frac{1}{\Gamma_m(\alpha)}\int_{X>0}|X-T|^{\alpha-\frac{m+1}{2m}}F(T)DT = \frac{d}{dx}\left[R^{(\alpha+1,m)}_{0,x}\{\phi(X)\}\right]$$

Here X and T are positive definite symmetric matrices of order mxm and X=X'>0, T=T'>0, Re(a)>)>(m-1)/2. Also

While the Weyl fractional integral operator of matrix argument of order mxm of a function F(X) is given by

$$W^{(\alpha,m)}_{x,\alpha}[F(X)] = \frac{1}{\Gamma_m(\alpha)}\int_{0<x>\alpha}|X-T|^{\alpha-\frac{m+1}{2m}}F(T)DT$$

T = T' >0, X = X', Re (α) >(m-1)/2 = $\frac{d}{dx}\left[W^{(\alpha+1,m)}_{x,\alpha}\phi(X)\right]$1.2)

Where $\phi(x) = (T-X)(T-X)^{-1}F(X)$

Similar types of operators have been defined earlier by Poonam and Sethi [85]

The generalized R-L fractional integral operator, due to Saigo and Raina [109], is converted as follows.

$$I^{(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[F(X)] = \frac{|X|^{-\alpha-\beta}}{\Gamma_m(\alpha)}\int_{0<T<x}|X-T|^{\alpha-\frac{(m+1)}{2}}\times {}_2F_1\left[\begin{matrix}\alpha+\beta,-\eta\\ \alpha\end{matrix};(\iota-TX^{-1})\right]F(T)\,dT, \quad (1.3)$$

c

series of matrix argument, see Mathai and Saxena [73]

$${}_2F_1\left[\begin{matrix}a,b\\ c\end{matrix};z\right] = \sum_{k=0}^{\infty}\frac{(a)_k(b)_k}{(c)_k}C_k(z),$$

Where, $(a)_k = \prod_{i=1}^{m}[(a-1)/2(i-1)]_{k_1}$

or $(a)_k\ a(a+1)\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(a+k-1),\ (a)_0=1$

and $C_k(z)$ is the Zonal polynomial

$$\Gamma^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[F(X)]^{-1} = \frac{d}{dX}\Gamma^{[(\alpha+1,m),(\beta-1,m),(\eta-1,m)}_{0,x}[\phi(X)]$$

The inverse operator of $I^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}$ is given by

$$I^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[F(X)]^{-1} = I^{[(-\alpha,m),(-\beta,m),(\alpha+\eta,m)}_{0,x}[F(X)]$$

$$I^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[F(X)] = R^{[(\alpha,m)}_{0,x}[F(X)] = \frac{1}{\Gamma_m(\alpha)}\int_{X>0}|X-T|^{\alpha-\frac{m+1}{2}}F(T)dT.$$

Particular Cases:-

$$I^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[F(X)] = E^{(\alpha,m),(\eta,m)]}_{0,x}[F(X)] = \frac{|X|^{-\alpha-\eta}}{\Gamma_\alpha(\alpha)}\int_{X>0}|X-T|^{\alpha-\frac{m+1}{2}}|T|^{\eta}F(T)dT.$$

Where E[F(X)] is the fractional integral operator of matrix argument. The inverse operator for R is given by

$$R^{(\alpha,m)}_{0,x}[F(X)]^{-1} = R^{(-\alpha,m)}_{0,x}[F(X)]$$

The two functional relations established in this chapter are the following –

(for λ> max{(0,m), (-α,m) (-α − β,m)(-α − β − η,m)}

$$\sum_{n=1}^{\lambda}\frac{\Gamma_m(\alpha+\eta)}{n\Gamma_m(\alpha+\beta+\lambda)\Gamma_m(\alpha)}{}_3F_2\left[\begin{matrix}\alpha+\beta,\alpha+\eta,-\eta,\\ \alpha,\alpha+\beta+\lambda+\eta,\end{matrix};1\right] = \frac{\Gamma_m(\alpha+\eta)}{\Gamma_m(\lambda)\Gamma_m(\alpha)}[\Psi_m(\lambda)+\Psi_m$$

$$(\alpha+\beta+\lambda+\eta)-\Psi_m(\beta+\lambda)-\Psi_m(\lambda+\eta)] \quad (2.3)$$

and , for λ> max {(0,m), (α,m)}

$$\sum_{n=1}^{\lambda}\frac{(a)_n}{n(\lambda)_n}{}_{p+1}F_{q+1}\left[\begin{matrix}(a_p),\lambda\\ (b_q),\lambda+\eta\end{matrix};\frac{X}{a}\right] = \sum_{k=0}^{\infty}\frac{\Pi_{j=1}^{p}(aj)_k}{\Pi_{j=1}^{q}(aj)_k(k)!}(C)_k\left(\frac{X}{a}\right)\times\{\Psi_m(\lambda+k)-\Psi_m(-\alpha+\lambda+k)$$

(2.4)

Required Results

The following results, due to Saigo and Raina [109] and Gradshteyn and Ryzhik [34] in the matrix argument form.

(i) If K > max [0,m), $(\beta-\eta,m)] - \frac{(m+1)}{2}$, $I^{[(\alpha,m),(\beta,m),(\eta,m)}_{0,x}[|X|^{\gamma}] = \frac{\Gamma_m\left(\gamma+\frac{m+1}{2}\Gamma_m\left\{-\beta+\eta+\gamma+\frac{m+1}{2}\right\}\right)}{\Gamma_m\left\{-\beta+\eta+\gamma+\frac{m+1}{2}\right\}\Gamma_m\left\{\alpha+\eta+\gamma+\frac{m+1}{2}\right\}}|X|^{\gamma-\beta}$

(2.5)

(ii) If Re (η+α) > (m-1)/2 and Re $(\beta+\lambda)$ > (m-1)/2,

$$\int_{X>0}|X-T|^{\beta+\gamma-(m+1)/2}|T|^{\beta+\lambda-(m+1/2)}{}_2F_1\left[\begin{matrix}\alpha+\beta,\eta\\ \alpha\end{matrix};1\right](2.6)$$

$$= \frac{|X|^{\alpha+\beta+\gamma-\frac{m+1}{2}}\Gamma_m(\beta+\gamma)\Gamma_m(\alpha+\eta)}{\Gamma_m(\alpha+\beta+\gamma+\eta)}{}_3F_2\left[\begin{matrix}\alpha+\beta,\alpha+\eta,-\eta,\\ \alpha,\alpha+\beta+\lambda+\eta'\end{matrix};1\right]$$

107

Reference:-

1. Mathai, A.M. and Saxena, R.K. (1978(. The H-function with Application in Statistics and Other Disciplies. Wiley Eastern Limited, New Delhi, India.

2. Mathai, A.M. and Saxena, R.K. (1978). The H-function with Applications in Statistics and other Disciplines.

3. Poonam and Sethi, P.L. (1991). Fractional integral operators of matrix argument. Bull. Cal. Math. Soc. 83, 519526.

4. Saigo, M. (1979) A certain boundary value problem for the Euler-Darboux equation. Math. Japonica 24(4) 377-385.

5. Saigo, M. & Raina, R.K. (1988). Fractional calculus operator associated with a general class of polynomial Fukuoka Univ. Sci. Re. 18(1), 15-22.

Dr. Kumari Saraswati
(D/o Shri Ram Kumar Roy)
Roy Sadan, Jyotish Kendra,
Maharaja Hata, Ara– 802301

36

UNIFORM CIVIL CODE: THE NECESSITY AND THE ABSURDITY

Dr. Santosh Kumar Sharma

Abstract:-

The question as to whether after 68 years of the Constitution India is ripe enough to have a uniform set of civil law has been raised yet again. The Uniform Civil Code (UCC) has always been piped as an effective tool to realise and effect the empowerment of the Indian women and uplifting their status in the social institutions such as family and marriage. This paper tries to evaluate the entire dialogue around the UCC, the arguments on its necessity and the various doubts on its nature, so as to ascertain the extent to which the question of women gets addressed. It is of the utmost importance to scrutinise how the judicial and political intelligentsia has been trying to address the Subject of gender parity through of discourse UCC.

THE HUMAN rights of women in India have always been associated with the personal laws which involve social institutions like marriage and family. Indeed, it is the personal laws which lay down the legal contours of the status of women in these social institutions. Unlike the west, India is far from being a homogenous nation-state and is a home to one of the most diverse and variable melange of a population. It is ethnically diverse, linguistically diverse, culturally and religiously diverse, these not being water tight categories either. Thus the ymingle up and create a mashup of an ectremely vibrant but difficult to handle populace.

Hence, a Kashmiri Brahmin woman will have different existential realities than a Sarayupari Brahmin woman. A Brahmin woman in West Bengal will not only have different social and religious norms than a Bengali low caste woman, but also a Namboodiri Brahmin in Kerala. The oppression of patriarchy seems to be a common experience to all these women from a distance, but when one tries to get into the skin of each and every such woman we find that what seems similar is actually very different in its form and nature.

II Uniform civil code: Reasons given for its imminent necessity

The Colonial India witnessed many of her laws getting codified by the British such a as the criminal law, the law of contract and transfer of property *etc*. These laws were made by the British while divesting away with all religious, cultural factors. Hence, we observe that the law of contract is purely along the law that existed in Great Britain around that time. The only sphere which was left behind was the personal laws which governed various aspects of the lifestyles of the people, such as marriage, family, succession *etc*. The British considered such civil topics to come within the purview of the religion and thus specific religious principles should govern these civil laws. The transfer of sovereignt y from the colonisers to the colonised in our nation was marred by the high communal tensions. Restoration of communal harmony which was weakened to a very great extent was in the mind of the Constitution makers. Article 35 of the draft Constitution of India was added as a part of the directive principles of the state policy in part IV of the Constitution of India as article 44. It was incorporated in the Constitution as an aspect which would be fulfilled when the nation would be ready to accept it and the social acceptance to the UCC could be made. However, after 66 years of the adoption of our Constitution, UCC remains to be a constitutional dream to be fulfilled. The judiciary has time and again reminded the legislature the need to have a UCC through its various judgments.[3] How judiciary has stated UCC to be a necessity in Indian polity has to be understood as well.

The intent of the judiciary

The Supreme Court of India has always been an ardent supporter of the UCC. It was the legendary case of *Mohd. Ahmed Khan* v. *Shah Bano*[12](hereinafter referred as *Shah Bano case*), that once again brought the issue of UCC on the preface. In this much celebrated case the Supreme Court brought a divorced Muslim woman within the cover of section 125 of the Code of Criminal Procedure, 1973 and declared that she was entitled for maintenance even after the completion of her *iddat* period. Although Supreme Court had assumed the role of a social reformer in many other previous cases,[13] *Shah Bano case* usurped a landmark position in the history of debates on religion, secularism and the rights of women. If we carefully side- step the political drama that later unfolded, we would be able to trace the problems the courts of our country have been facing due to the separate conflicting personal laws.

As pointed out in the Constitutional Assembly debates, there already exist a number of uniform laws in our country. The courts were taken by surprise in situations where such uniform laws came at loggerheads with the various personal laws, as was the case in *Shah Bano*. With articles 14[14], 15[15] on one hand and article 25[16] on the other, the courts found themselves in a fix so as to decide to give precedence to which fundamental right. The Supreme Court's use of a uniform law to provide remedy to Shah Bano proved to be a much easier path to protect the basic rights of women. Had the

Supreme Court taken recourse to the specific personal laws, it might have found itself embroiled in debates of theology thus neglecting the plight of the women. The court has stated:[17]

Section 125 was enacted in order to provide a quick and summary remedy to a class of persons who are unable to maintain themselves. What difference would it then make as to what is the religion professed by the neglected wife, child or parent? Neglect by a person of sufficient means to maintain these and the inability of these persons to maintain the mselves are the objective criteria.

In the case of *State of Bombay* v. *Narasu Appa Mali,*[21] the Supreme Court was face to face with such a situation. The constitutional validity of the Bombay (Prevention of Hindu Bigamous Marriages) Act, 1946 was to be determined by the High Court of Bombay. One of the two major contentions was that it was violative of articles 14 and 15 since the Hindus were singled out to abolish bigamy while the Muslim counterparts remained at full liberty to contract more than one marriage and this was discrimination on the grounds of religion. Questions such as these were raised due to an absence of a common civil code and clash of different principles in different personal laws. M.C. Chagla J. upheld the validity of the Act by stating that it was not violative of any Fundamental Right since such prohibition should not be seen through the lens of religious discrimination. He argued that the Muslims and Hindus differed from each other not only in religion, but in historical background cultural outlook towards life and various other considerations. Gajendragadkar J. stated:

High Court of Madras also in *Srinivasa Aiyar* v. *Saraswati Ammal*[22] upheld the validity of Madras Prohibition of Bigamy Act on similar grounds.

III Downside of a uniform civil code: Generalization of oppression of women

Where does the woman find her voice in the entire hullabaloo around the protection of her rights and change in her social status and how? Uniformity in civil law has for a long time been advocated in order to secure the rights of the women and social reforms to empower the women suppressed by the diseased ways of religion and culture. The debates around a uniform civil code have always sidetracked the lived experienced of different categories of women from their perspective. Not only people against a UCC but also the proponents of the code failed to address the core issues of the rights of women.

Two statements around which the concept of UCC has been spun are firstly, that it seeks to achieve gender justice and national integrity and secondly, that it seeks to suppress the identity of the minorities and is a grave threat to the cultural diaspora. The two downsides of a common civil code which can be culled out are hence, firstly, the threat to the different diverse identities of the people and the collective identity of the communities, and secondly, the dubious and somewhat failed formula of uniformity sufficient to secure the rights of the women. The former is a more discussed and more stressed upon argument against the UCC while the latter is a much ignored argument lost in the political cacophony.

Uniformity and rights of women: A myth debunked

UCC is always harped on around the movement around the rights of women. It is lauded as the ultimate solution to do away with many of the discriminations between the genders that have seeped through religious edicts and social structure. Even in the Constituent Assembly Debates the discrimination against women and much needed social reforms for elevation of their status in the society was the moot point in favour of article 35. The members against a common civil code ignominiously dodged the question of elevation of the status of women and focused only on the cultural disparity and dominance of the majority. No one tried to question the practical working of a common civil code and how would it be beneficial in the drive for rights of women in our country. Ironically, none of thewomen members participated in the debate on article 35 and the proposed future prospect of securing a uniform civil code. K.M. Munshi appealed to the House that absence of uniform personal law would amount to all discriminatory practices being covered under the purview of religious freedom and hence rendering impossible for legislative reforms to correct them as they would be struck down on the premise of religion.[26]

The Indian legislators merely assumed the roles of their western colonizers and drafted the codified Hindu law, unifying various categories within the definition of Hindu and sifted through the different diverse religious practices and principles to cull out only those principles which were appeasing to their western British homogenous minds. Indeed, many provisions were borrowed from other religions and world views, such as divorce, but it was because of the different personal laws, which worked separately in a close knit society, that such references and examples could be taken as social reforms.

In fact, if any example has to be carved out of the present codified Hindu law then it should be that how without recognizing the difference in stature and socialization of women, social reforms can in fact become regressive. There has to be an internal mass development of social conscience first and then the reforms are to be heralded.

one religion and exempting other was obvious even before the Supreme Court.[29] Introduction of monogamy and prohibition of polygamy without stirring the social conscience resulted in the continued practice of polygamy in Hindu men,

except that now they were safer to escape the clutches of law since the Hindu Marriage Act, 1955 had fixed the definition of a valid marriage. A pell mell of brahmanic rituals such as *saptapadi*, *lajja home* etc. were made essentials of a valid Hindu marriage. The other forms of marriage which might have been accepted in other Hindu communities were ignored. The Hindu man could now have a perfect defence ready for his second marriage that it was not valid according to the fixed, unified Hindu Marriage Act, 1955.[30] Instead of empowering, the status of the second wife was in fact demolished. The woman who was a second wife had no protection left under her own codified unified personal law.[31]

111This sums up the lesser taken route of discussing the pitfalls of having a UCC and coaxes us to take the question of rights of women, women who do not belong to homogenous groups and come from different social and religious setups looking forward to specific reforms endemic to their specific existential realities and not a uniform social reform which might lose its progressiveness in the effort to unite. Hence uniformity cannot be expected to be a perfect solution to multitude and diverse gender inequalities.

Consultion:-

One has to identify what is the moving jurisprudence behind UCC that is it national integration with one nation-one people motto or is it the eradication of the gender based injustices engrained in the all personal laws. These two future results of the UCC are quite distinct from each other. It has been observed that the original dialogue around UCC was more inclined towards the idea of national integration, with the cause of gender equality as an ancillary effect. However, today in the contemporary times UCC has come up as a champion of the gender equality. If so, then the dialogues around UCC have woefully missed their mark.

It is not that uniformity in laws is undesirable. Extensive cultural diversity is the truth of India, but absolute heterogeneity in laws is also not desirable. Uniformity very rightly leads to a constricted scope for arbitrariness and equal protection of law to all the subjects irrespective of the diverse backgrounds they come from. The clarion call for UCC in India has always been with the idea of divesting law from all kinds of religious influences. That law, even the personal laws should be stoic without specific religious and cultural hurdles creeping in. Religion and culture since a very long time have been the ultimate explanation to any and every social evil that exists in the society. Sati, therefore was justified because the religious tenets supported it. One could find a number of justifications ranging from pure religious fanaticism to scientific rationalism and sociology. However, in a country where Hindus shared their day to day lives with other religions where women who need not deliberately die with their husbands existed, questions were raised that why Hindu women be subjected to such atrocity? In fact those who raised such questions became the beacon lights for a movement of social reform such as Raja Ram Mohan Roy, Ishwarchandra Vidyasagar and others.

In a heterogeneous society like ours comparisons are normally to be made. These rigid and compartmentalized personal laws which cannot, in any probability, be influenced by others might have the tendency to throttle any scope of social reform.

Codification of scattered laws and legal norms, religious edicts, traditions and cultural laws gives a fixed recognition to rules and eases the enforceability of laws. The rights and duties which flow out of such laws and rules also get due recognition and traceability. Indeed, a uniform law with all populace equally and uniformly governed by it is the desired goal and as Dr. Ambedkar had said the society to inch towards its complete realisation.However, the taking example of a uniform criminal law as a benchmark for the goodness of uniformity in personal laws is not correct. Personal laws govern the unique and peculiar realms of family and marriage which are endemic to each and every diverse group of people. Unlike the criminal law, personal laws govern the way of life of the people which can differ from one community to other. And therefore uniformity in personal laws has to be treated much more delicately.

Two questions need to be addressed which are being completely ignored in the present din around UCC. *Firstly,* how can uniformity in personal laws are brought without disturbing the distinct essence of each and every component of the society. What makes us believe that practices of one community are backward and unjust? If one does not address these questions with gravity and depth, then we would commit the same horrible mistake of the Americans who considered the indigenous population as savages, needed to be liberated from their customs and rescued by the progressive, civilised norms of Christianity.

The second question is that whether uniformity has been able to eradicate gender inequalities which diminish the status of women in our society? This question is interlinked with the previous question. Otherwise, what is happening is that these societies become defensive against the demands of uniformity and injustices within their communities are rendered invisible. This positive side of the debate on UCC time and again reminds the people to tend to the diseases in their personal law system and adjust them to the contemporary times, by taking inspirations from another community which might be more progressive in some aspect. It must never be forgotten that all this is a slow process and any undue haste

would only result in failure rather than the desired outcome.

Dr. Santosh Kumar Sharma
M.COM, MBA, LLB, WITH Ph.D, LLM.
(PGDIM IN MATERIAL MGMT. IIMM.)
Mob -9899882948
Email:- santosh.sharma2013@gmail.com
H.NO. 5113 SEC-3, FARIDABAD, HARYANA

37

ROLE OF TECHNOLOGY IN ENHANCING TEACHER PREPARATION

Ms. Kavita Kumari

Abstract:-

Technology holds great promise for individual empowerment and education improvement not just because of its data handling capabilities but because of how it is used. As the technology has become more sophisticated, so has its implementation in daily classroom life. While many kinds of technologies have a useful place in education. As it is frequently said and felt that ICT is playing a major role in today's society and it will undoubtedly effect the field of education, it is very essential to the teacher to get acquainted with the necessary skills which are required to cope up with present scenario. Each and every teacher trainee should get exposed to different situations in the teacher training institutions regarding Use of Computer, Internet, Software and related skills which are considered as basic skills without which teacher cannot succeed in his profession. Teacher training institutions should focus on different aspects like providing theoretical information about different computer related skills as well as providing opportunities to expose themselves to some of the practical aspects. This is done by assigning projects and also by arranging workshops where they can acquaint necessary skills and use them effectively in different situations. These acquired skills can be used by teacher trainee when he gets technology informed students. He may even become handicapped and lose confidence without the knowledge of ICT. Hence the knowledge of ICT is considered as the pre-requisite to become an effective teacher and it is the first duty of the teacher training institutions to provide an opportunity to acquire these skills.

In the present day society, the technology has become the keyword in all walks of life. We can say that technology in education means pursuit of excellence, consistency and fairness, satisfaction of client needs and appropriate development of resources. Technology is a multifaceted concept and it is a complex process also. By keeping this fact in mind the existing teacher education curricula should totally revamped. Technology should be incorporated as a compulsory component in the teacher education curriculum.

Indeed Globalization and liberalization are affecting the economy culture and information the internationalization of relations, and the increasing mobility of individuals a complete revolution in the communications, media and the massive advent of computerization into daily life and into the world of work represent both a challenge and an opportunity to the education systems. We are witnessing three types of explosions viz. Explosion of population, Explosion of knowledge and Explosion of Expectations. These explosions necessitate bringing forth various revolutions.

INTRODUCTION

"Teacher is maker of man"-Sir John Adams. He is the foundation of all education, and thus of the whole civilization of mankind, present or future. No National Re-construction is possible without the active co-operation of the teacher. Teacher is expected to acquire necessary required knowledge and skills to meet the demands and needs of today's children. It is not sufficient if teacher has acquired mastery over the content and methodology of teaching but teacher has to meet the demands of the present society by catering to the needs of the present day children. It is frequently said the ICT will playa major role in today's society and it undoubtedly effect the field of education. It has changed the role of the teacher and the definition of Classroom". But do we really know what role IT can play in Education? Have we as teacher educators explored the possibilities? Further on, do we attempt to make our teacher trainees competent to deal with the students they must face *tomorrow?* The present paper tries to focus on the need to train teachers using the new technologies in their classroom for the technology-informed students.

The present day knowledge and experience have a strong influence on developing intending teacher's practices and teaching strategies. Teachers are very much inclined to teach in the way that they were taught and model their practices on those that they judged to be effective from personal experience. Moreover, technology holds great promise for individual empowerment and education improvement lot just because of its data handling capabilities but because of how it is used. As the technology has become more sophisticated, so has its implementation in daily classroom life. While many kinds of technologies have a useful place in education, Indeed many people believe that computer goes beyond providing a new or alternate way as has actually become an essential part of
Educational process in the life-long sense-Naron and Estes, 1996. Innovations in education are frequently avoided if current methodologies appear to be serving their own purposes and no real need for change is apparent. Change is more likely to occur when people can relate the change to need. The presentation of technology in teacher education programmes must relate to the classrooms needs which student teachers recognize or which they can prompt to appreciate and accept.

Technology in teaching and learning is not a new activity; it started out as computer assisted learning (CAL) which became a significant minority activity in the 1960s. At that time the underlying educational philosophy was based on behaviorist models designed to generate programmed learning. This was

the era of mainframe computering and the using was largely initiated by military training applications, with some academic research backed by central budgets.

How to create and develop technology resources for teaching and learning is beyond its scope to consider how to create pages for the World Wide Web (WWW), write a piece of tutorial courseware, or set up a moderated discussion list or video conference. Creation of resources had become a little less difficult, but it still required technical specialists to produce materials. By the 1980s applications were broadening out in range and variety, a change which again reflected the underlying change in technology away from centralized mainframe computers; 1981 was the year in which the personal computer was launched. Familiarity will provide a confident starting point from which it is possible to imagine potential gains, such as ways in which using technology in teaching could make the learning better for the students, or could enable more effective use of time.

It is possible to use technology in teaching and learning in a whole range of ways:

- Accessing electronic journals;
- Computer-generated presentations to accompany lectures;
- Electronic publication of lecture notes;
- Running electronic discussion groups with your learners.
- Setting computer-based bibliographic searches:
- Setting worked examples making use of tools such as Spreadsheet or databases:
- Using computer-based learning programmes;
- Using e-mail communications for class management; using real current databases to retrieve information;
- Video conferencing with other students in overseas.
- Sharing and interchanging information such as knowledge, mental skills, motor skills and attitudes through the use of mass media and especially electronics.
- Achieving success in this sharing and interchanging by having communication.
- Receiving (hearing or seeing)
- Accepting (Nothing is going to change unless the information is accepted)
- Word-processed lecture notes
- Data Processing.

Higher education is bound to go for the unavoidable shift from the culture of print to a culture of digital technology, which effects not only teaching, learning and research; but the whole of university life. It has arrived with a big bang. The very nature of teaching, learning and research has to depend also on electronic data, over and above the print material. Conduct of research now requires co-operative resource sharing and networking of local, national and global resources.

RESEARCH IN TECHNOLOGY

Universities and colleges shall have to share the resources and change their nature of depending exclusively on their own limited resources. Cost containment through regional approach is the only solution. Universities have to develop new paradigms of teaching, learning research and management of learning Resources. Inter-university structures and organizations will have to emerge in various regions for resource sharing with the help of ICT and inter university committees for resource sharing.

A faculty member and a researcher have a different modus for learning and research in their areas. In addition to the print material they generally have:

(i) An e-mail address of the library or the department if not a personal one:
(ii) Connection with on line-e-print archive, dealing with ongoing research in their respective areas, with access to World Wide Web and other databases on the Internet.
(iii) Access to data transmission lines, terminal and laser printers;
(iv) Access to desktop machine and data libraries;
(v) Access to electronic library as a gateway to global knowledge;
(vi) Access to global reference room via internet; and
(v) Access to electronic journals and books.
Over the ages teaching techniques have changes for better understanding by the learner. ICT has also influenced and variated it. In teaching techniques, there is a lesser emphasis today on the erudition and intellectual impact, as such, and more emphasis on the very process of search for objective knowledge with a spirit of inquiry by the learner. The Gutenberg revolution, five centuries ago shifted oral method of teaching to self study by individual student. Now, ICT and multimedia have changed the pattern of teaching where the learner uses technology, through critical thinking, to manipulate and query data in newer ways instead of just lecturing and / or reading activity. In this IT era, we have moved from old practice of memorizing facts to discovering data and information; and synthesizing them for problem solving.

Technology makes research more convenient and efficient. It connects and helps in synthesizing disparate bits of information. For research it is essential to use information in print as well as electronic information both are available in various sources crossing the boundaries of a specific library. There has to be co-operative arrangements in providing for information needs of researchers and learners. Research today, in many areas, touches or covers almost all disciplines. Modern research requires navigational tools and filtering of information electronically and professionally, by generating tools and by developing filters. Packing and dissemination of print and electronic information has to be done by a modern librarian. Libraries are required to support teaching, learning and research by Incorporation of electronic and digital information and professional.

This is an age of information. The spectrum of knowledge is

available to everyone at mouse click distance. Updating the knowledge is imperative to everyone. Research and experimentation pave the way for amelioration of the promotion of research and taking the humanity to march, ahead in the. Direction of progress the knowledge of ICT not only helps the teacher educator to improve their competency in teaching and learning but also assists them to undertake meaningful research project which will in turn wider their mental horizon refine their reactions and sharpen their intellect.

THE TECHNOLOGY TRAINING SHOULD HAVE THE FOLLOWINGASPECTS:

- Refresher training courses for giving advanced knowledge and skills.
- Orientation on training for wider exposition and better acquaintance with latest developments.
- Participating in professional meetings, conferences, seminars, workshops etc.
- Staff discussions or faculty meetings.
- Making various distance education courses and career development programmes available.

- Encouraging staff members to take up researches, experiments, extension work and publication activities.
- Fundamental knowledge regarding the computer, information and communication technology and Internet

- Orienting and further facilitating the trainee teachers to explore the available avenues and scope of readymade software.
- Providing real land direct experience to teacher trainees to expose themselves to actual execution part i.e., handling the computer, knowing the difficulties involved and to know the tremendous uses of the computers and' Internet by assigning different projects to the students as a practical activity as a part of syllabus.
- Fundamental change is required to use computers for teaching is to teachers' existing conception of the teacher-centered process and. of their pedagogic role within it. A shift from teacher-directed teaching to student-centered learning where the teachers would find that their role has changed from a lecturer to a facilitator who monitored students learning.

To make a truly professional response, intending teaches must be equipped with the ability to see clearly and critically the values being ascribed to technology, the motives propounded for using it and the consequences for 'ways in which they might introduce and use information technology in their teaching. Teacher trainees, in the process of their education, must take on board new knowledge, skills and attitudes if they are to perform effectively in classrooms and teacher education, must take on beard new knowledge, skills and attitudes if they are to perform effectively in classroom and teacher education must aim at the same. Such a dimension in teacher education would also lay the foundation for the role of new teachers as technological innovators in schools -a role they might well exercise unexpectedly quickly, given the current rate of increase in computer using schools.

ROLE OF TECHNOLOGY IN ENHANCING TEACHING ND LEARNING

Technology aims to improve the quality of human learning. Educational Technology is a field involved in applying a complex integrates Process to analyze and solve problems in human learning. Educational Technology 'has been used to varying degrees In our nations. Numerous studies exist demonstrating that

- Technology appropriately applied can enhance learning and achievement compared to traditional teaching method.
- The benefits of Technology cannot be adequately separated from other variables that impact learning in the larger instructional context.

- Converts behavioral objectives into the learning conditions in the context of educational objectives.
- Analysis the characteristics of the learners.
- Organizes the contents.

- Formats the performance of the *people* with reference to the achievement of educational objectives.

- To provide reinforcement and feedback in order to modify the behaviors of the pupils.

- It brings decide improvement in teaching learning process by making *it effective.*

- It develops to the maximum cognitive, affective and psychomotor aspects of the pupils.
- It has maximized the learning facilities

- It emphasis the maximum use of available resources in the learning situations, which may benefit all the *pupils* of the nation from those *limited* resources which are available for teaching work pertaining to this.

- Internet, e-mail, Fax and Video Conferencing have *helped* to overcome the barriers of face and time, and opened new opportunities for learning. For example the use of internet application in the *field* of education, the standard of education really gone up now. One of the important reasons for this the applications of internet in education. A few important and *latest* applications of internet in the *field* of education are

- Internet libraries or electronic libraries E-Journals
- E-Books
- Online Testing Procedures
- Online Research Surveys
- E-Learning or Web Based Learning
- Virtual Universities

In future, an International Library may be a small room with internet facility, a virtual university may be something like it small house and the class room may be monitor. This the possible as the internet technology has growing speed.

MEASURES FOR EFFECTIVE EHANCEMENT OF TECHNOLOGY IN TEACHER PREPARATION:

To situate technology integration more effectively the existing curriculum should be revised to large extent *i.e.* technology can be introduced step by step as follows:

- Fundamentals of technology: Basic Terms and Concepts in Computer, Word, PP'ts, Excel, Graphic Programs, Browsing, Wikis, Blogs, GNU, SGMC etc.
- Train teachers to integrate the learnt technology with subject through modern .demonstrations, interactive theme presentation, group discussion and round table tasks, hand on practice etc.
- Train to create software to evolve cultural specific pedagogy as a project during the course.
- Train the teachers to understand the difference between the students and us different ICT tools. Enable them to manage the difficulties that can arise while using ICTs.
- Encourage to keep pace with latest technologies to use them in providing information support and services.
- Enrich them with the knowledge and skill to develop new software through projects at the end of the course.
- Enabling to infuse ICTs in subject areas.
- Empower to know the foundations of program and software development.

CONCLUSION:

If Education should build nation builders, Teacher preparation should concern itself with providing master builders well equipped, physically, intellectually, emotionally and spiritually" (S.R.Rohdekar, 2009). These master builders should be equipped with technological skills too. "A sound program of professional education of teachers is essential for the qualitative improvement of education". So integrating technological skill in Teacher Preparation is very important to improve the quality of education for the present education system. Thus, appropriate use of technology can catalyze the paradigmatic shift in both content and pedagogy. If designed and implemented properly, technology supported education can promote the acquisition of knowledge and skill.

REFERENCES:

- Beyerbach,B.A,(2001)- From teaching technology to enhance student learning, journal of technology and teacher education, no.9 , V.1, 105-127, New York
- Gilder, G (1993), Teachers and technology, International journal of Instructional media, no.29, V.2, 153-170, New York.
- Honnafin.R.D (1993) Technology in the classroom, Apple pub, U.S.A
- Rogers,P.L(2000), adopting emerging technologies in education, journal of educational computing research no.22, V.4, 455-472, New York

www.education.edu.au

www.iste.org

www.uncw.edu

www.ed-directory.org

Ms. Kavita Kumari
Assistant Professor
S.S.M College of Education,
Makrouli Khurd, Rohtak

38

पंत की ताज कविता का पूनर्मूल्यांकन

अशोक कुमार

सारांशः–

'युगांत' में संकलित सुमित्रा नंदन पंत की कविता 'ताज' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। छायावाद के कवियों में कहा जाता है कि प्रसाद सौंदर्य शिल्पी, निराला नाद शिल्पी और महादेवी वर्मा गीत शिल्पी हैं। मुझे यह कहने में प्रसन्नता हो रही है कि छायावाद के महाकवि सुमित्रानंदन पंत एक साथ सौंदर्य शिल्पी, नाद शिल्पी और गीत शिल्पी तीनो हैं। पंत छायावाद के प्रवर्तक भी रहे और उसके अवसान के उद्घोषक भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि–''मैथिलीशरण गुप्त की साहित्य साधना इसलिए महत्वपूर्ण है कि वे विकासगागी और विकासकामी दोनों रहे। गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुशरण को क्षमता। अर्थात् उत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि वे निःसंदेह कहे जा सकते हैं। भारतेन्दु के समय से स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसी का विकास भारत भारती में मिलता है। इधर के राजनीतिक आंदोलनों ने जो रूप धारण किया उसका पूरा आभास पिछली रचनाओं मे मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यत्ववाद, विश्वप्रेम, किसानो व श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान सबकी झलक देख पाते हैं''।

विगत चार दशकों से काव्य सर्जना करने वाले पंत के संदर्भ में यह बात आसानी से कही जा सकती है कि– पंत जी भी अपनी रचनाओं में विकासगामी और विकासकामी दोनों रहे। अपने जीवन के प्रथम चरण में पंत प्रकृतिवादी एवं सौंदर्यवादी रहे और अपने कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति करते रहे **बाले का बाल जाल** उन्हे अपने में उलझा न सका–

छोड द्रुमो की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूं लोचन?
भूल अभी से इस जग को,
तजकर तरल तरंगों को,
इंद्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रु भंगों में कैसे विधवा दूं निज मृग–सा मन।
भूल अभी से इस जग को।

परन्तु धीरे–धीरे पंत छायावादी से प्रगतिवादी हुए और उनकी लेखनी से **द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र** और **ताज** जैसी कविताएं निःसृत होने लगी–

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त–ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण,
हिमताप पीत मधुवाद भीत,
तुम वित राग जड़ पुराचीन,
निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग,
जग नीड़ शब्द औ' श्वासहीन,
च्युत अस्त–व्यस्त पंखों से तुम,
झर–झर अनंत में हो विलीन,
कंकाल जाल जग में फैले,
फिर नवल रूधिर पल्लव लाली,
प्राणों की मर्मर से मुखरित,
जीवन के मांसल हरियाली,
मंजरित विश्व में यौवन के,
जगकर जग का पिक मतवाली,
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से,
भर दे फिर नवयुग की प्याली। युगांत,1936

विश्व के आठ आश्चर्यजनक चीजों में परिगणित होने वाले ताज को पंत सौंदर्य का प्रतीक नहीं मानते, वे उसे मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन स्वीकार करते हैं। आलोच्य कविता में पंत का कहना है कि जब जग का जीवन विषण्य और निर्जीव पड़ा हो तब यह उचित नहीं है कि मृत्यु का इस प्रकार अपार्थिव अमर पूजन किया जाय–

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन?
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।
स्फटिक सौंध में हो श्रृंगार मरण का शोभन,
नग्न क्षुधातुर वास विहीन रहे जीवित जन?

पंत को यह स्वीकार नहीं कि मृतक का इस प्रकार पूजन और श्रृंगार हो तथा जीवित प्राणी नंगे, भूखे, बिना घर–द्वार के घूमते फिरे। मानव जीवन के प्रति विरक्ति समझ में नहीं आती और यह देख कर अचरज होता है कि वह आत्मा का अपमान करते हुए प्रेत और छाया से प्रीति क्यों करता है–

मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान प्रेत और छाया से रति?
प्रेम अर्चना यही करे हम मरण को वरण?
स्थापित कर कंकाल, भरे जीवन का प्रांगण?

पंत कह रहे हैं कि प्रेम साधना का क्या यही अंतिम परिणाम है कि हम मरण का तो वरण करें और जीवित अस्थि पंजरों से विश्व को भर दें। अर्थात् शव को मानव तथा मानव को शव का रूप प्रदान करें। वस्तुतः यह सुंदर ताजमहल गत युग के धर्मरूढ़ियों का प्रतीक है–

शव को दे हम रूप रंग आदर मानव का,
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दे शव का?

यह '**ताज**' विगत युग के मृत आदर्शों का प्रतीक मात्र रह गया है और मनुष्य के मोहान्ध हृदय में घर किये हुए है, पंत ने लिखा है –

युग–युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर,
मानव के मोहान्ध हृदय में किये हुए घर!
भूल गये हम जीवन का संदेश अनश्वर,
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर!

क्या हम जीवन का अमर संदेश भूल गये हैं कि जीवितों का ईश्वर ही एक मात्र सहायक है। इस प्रकार कवि का कहना है कि हमारे मानस में मोह रहने के कारण ही हम अपने वस्तु रूप को नहीं पहचान पा रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौंदर्योपासक कवि पंत के मानस पर ताजमहल के सौदर्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उलटे स्फटिक के सौध (महल) में मरण का श्रृंगार देखकर उनका मन तीव्र प्रतिक्रिया से क्षुब्ध हो जाता है। **ताजमहल** पर आधुनिक भारतीय काव्य में कुछ उत्कृष्ट कविताएं मिलती हैं जिनमें कवियों की भावुकता उमड़ पड़ती हुई दिखाई पड़ती है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने शाहजहां का स्मरण सम्राट कवि के रूप में किया है। ताज उनके (टैगोर) शब्दों में अमरता के गालों पर एक बूंद आंसू है (A drop tear on the chick of time)। मगर साहिर लुधियानवी की दृष्टि में **'ताज'** एक बूंद आंसू नहीं अपितु गरीबों की मुहब्बत का मजाक है–

एक शाह ने दोलत का सहारा लेकर,
हम गरीबों की मुहब्ब्त का उड़ाया है मजाक।

यह शोषित पीड़ित मजदूर की दृष्टि है किंतु पंत के कवि मन पर पड़ी हुई प्रतिक्रिया सर्वथा भिन्न है। उसमें आध्यात्म का स्वर है। वे **'ताज'** में आत्मा का अपमान तथा प्रेत और छाया से रति देखते हैं। यह शव की पूजा है मृत देह की प्रतिष्ठा है और आत्मा का अपमान है। जीवितों का अनादर है। कवि की आस्तिकता इसमें स्पष्ट है। उसने नग्न क्षुधातुर गृहहीन जनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है।

निष्कर्षः–

प्रस्तुत कविता में कवि के प्रतिक्रियावादी विचारों की झलक ही दिख पड़ती है और हम देखते हैं कि एक ओर पंत जी के मन में ताज के प्रति जो असीम आक्रोश है उसका मूल कारण करूणा प्लावित हृदय है। कविता में प्रयुक्त शब्द हाय! में ही कवि हृदय का अनंत विषाद मूर्तिमान हो उठा है। अतः भावः भाषा छंद, अलंकार सभी दृष्टियों से **ताज** कविता वैभवपूर्ण है। यही कारण है कि **ताज** पंत की कविताओं में शिष्ट और विशिष्ट है और मील का पत्थर भी।

संदर्भ ग्रंथ– रश्मिबंध– सुमित्रा नंदन पंत
ज्योति विहग– शांति प्रिय द्विवेदी
पंत और उनका गुंजन– आचार्य केसरी कुमार
साठ वर्ष और अन्य निबन्ध– सुमित्रा नंदन पंत
रश्मिबंध और सुमित्रा नंदन पंत –
आचार्य दुर्गा शंकर मिश्र

अशोक कुमार
प्रमाणिक, (एम. ए., हिन्दी, नेट)
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।
चलभाषः 8862965694,
Email: pramanikashok38@gmail.com

39 लोक साहित्य की अवधारणा और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संजय कुमार

सारांशः– परमात्मा की अद्भुत सृष्टि यह संसार है, पुराणों के अनुसार इस संसार में 84 लाख योनियाँ हैं। महाकवि तुलसी दास ने अपने महाकाव्य **'रामचरितमानस'** में इसका संकेतन किया है–

आकर चार लाख चौरासी।
जीव भ्रमति यह तह अविनाशी।''

इन चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ मानी गयी है–

'बड़े भाग्य मानुस तन पावा। वेद पुराण संत मत गावा।।'

तुलसी ने गरूड़ द्वारा पूछे गये सात प्रश्नों में से एक प्रश्न यह भी था कि सर्वाधिक दुर्लभ तन कौन सा है। काक भुशुण्डी ने उत्तर दिया था–

नर तन सम नहि कौनउ देही। जीव चराचर जाँचत तेही।।

अस्तु काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए भू–भाग पर पनपता हुआ मानव समाज भारतीय लोक है। भारतीय लोक–जीवन हमारे सुदीर्घ इतिहास का अमृत फल है। जो कुछ हमने सोचा, किया और सहा उसका प्रकट रूप हमारा लोक–जीवन है। लोक राष्ट्र की अमूल्य निधि है। हमारे इतिहास में जो कुछ भी सुन्दर तेजस्वी तत्त्व है वह लोक में कहीं न कहीं सुरक्षित है। हमारी कृषि, अर्थशास्त्र, ज्ञान, साहित्य, कला के नानारूप, भाषाएं और शब्दों के भंडार, जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत, कथा–वार्त्ताएं, आचार–विचार सभी कुछ भारतीय लोक में ओत–प्रोत है। लोक की गंगा युग–युग से बह रही है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि–''**लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित है। लोक के कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक की धातृ सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इनका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्वाण का नवीन रूप है। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्यानतम् रूप है।''** इस संक्षिप्त परिचयात्मक भूमिका के पश्चात् 'लोक' शब्द के शाब्दिक अर्थ पर विचार करना अपेक्षित है–

हिन्दी साहित्य कोश के भाग–1 में 'लोक' शब्द पर डॉ. सत्येन्द्र की प्रविष्टि है– शब्द कोशों में 'लोक' शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे जिनमें से साधारणतः दो अर्थ विशेष प्रचलित है। एक तो वह जिससे इहकोक, परलोक तथा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ लोक का होता है 'जनसामान्य' इसी का हिन्दी रूप 'लोग' है। इसी अर्थ का वाचक लोक शब्द साहित्य का विशेषण है।

वस्तुतः 'लोक' साहित्य अंग्रेजी के 'फोक लिट्रेचर' का अनुवाद है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिट्रेचर' का अर्थ 'साहित्य'। यदि हम गंभीरता से विचार करें तो लोक मानव समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है। जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते है वह लोक तत्त्व कहलाते है।

लोक की अवधारणा के केन्द्र में यही लोक है जो सभ्यता के विकास के साथ न ज्ञान में शिक्षित हुआ है और न ही शास्त्र में दीक्षित। लोक विवेक भी कहीं इसी से जुड़ा हुआ है, यदि विस्तार से विचार करें तो लोक के कई क्षितिज उद्घाटित होंगे। लोककथा, लोकोक्ति, लोक मुहावरा, लोक संस्कृति, लोक परंपरा, लोक गीत, लोक नाट्य, लोक नृत्य आदि।

लोक की अवधारणा के पीछे जो कारक तत्त्व है वह है एक असभ्य और अशिक्षित, आप चाहे तो मूर्ख भी कह लें। समाज का लोक–विवेक जो क्रूर शासक की गोलियों से डरता है और न ही किसी तानाशाह से। यह एक लंबी चली आती परंपरा का अलिखित असंवैधानिक कानून है। जो अब भी अदृश्य रूप में कहीं समाज की डोर पकड़े हुए है।

लोक साहित्य का महत्त्वः

1. लोक सर्वोपरि है।
2. लोक का अध्ययन बुद्धि का कौतूहल नहीं हृदय की बात है।
3. लोक सम्पर्क के बिना अन्य सब शास्त्र अधूरे है।
4. लोक का अमृत निस्पंद जिस शास्त्र में नहीं मिला वह कितना भी पंडित हो, वह निष्पाण रहता है।
5. जो ज्ञान लोकहित के लिए नहीं वह अधूरा है। वह मानवीय चिंतन का छूछा फल है।
6. जो शास्त्र लोक के साथ नहीं जुड़ा वह बुद्धि का छलावा है।
7. लोक और वेद में जब भी विवाद हुआ लोक की जीत हुई।
8. लोक कहा सुनी की नहीं, देखा–देखी में ज्यादा विश्वास करता है।

''कहा सुनी की है, नहि.....''

लोक साहित्य की प्रवृत्तियाँः

1. लोक साहित्य सामान्यीकृत होता है।2. लोक साहित्य लोकहित की चिन्ता करता है।
3. लोक साहित्य प्रायः वाचिक परंपरा का साहित्य है।
4. लोक साहित्य में राग तत्व की प्रधानता होती है।
5. लोक साहित्य में ग्रामीण जन और उसकी संस्कृति की चित्रण मिलता है।
6. लोक साहित्य में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का वर्चस्व रहता है।
7. लोक साहित्य लोक और मनुष्य के गहरे संबंधों की अभिव्यक्ति है।
8. लोक साहित्य नैतिकता प्रधान रहता है।
9. लोक साहित्य में विश्वास और धर्म की अभिव्यक्ति रहती है।
10. लोक साहित्य आस्थापरक होता है।

साहित्य–इतिहास लेखन में लोक साहित्य की भूमिकाः

साहित्य मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति है। साहित्य में 'सहित' की भावना होती है। **'सहितस्य भावः इति साहित्यम्''** साहित्य के इतिहास लेखन में लोक की अहम भूमिका है। लोक लगातार हिन्दी की बुद्धिजीवियों को झकझोरता है। लोक के बिना

साहित्य की परिकलपना अकल्पनीय है और जब साहित्य ही नहीं तो किसका इतिहास। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लोक एवं साहित्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है '' **जबकि प्रत्येक देश के साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।''**

कहना न होगा कि आचार्य शुक्ल ने जिस साहित्य को जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब माना है, वह अंततः लोक की चित्तवृत्ति है।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'लोक जागरण और हिन्दी साहित्य' शीर्षक अपने आलेख में यह स्वीकार किया है कि साहित्येतिहास लेखन में लोक साहित्य की अहम भूमिका रही है। लोक कच्चा माल है 'वेद' या शास्त्र पक्का माल है। बिना कच्चे माल के पक्के माल का निर्माण नहीं हो सकता है। लोक सर्वव्यापक है यह परमात्मा की तरह सर्वशक्तिमान और शाश्वत है। इसीलिए आचार्य भरत ने देखा कि चारो वेदों जो कुछ ज्ञान कौशल और आनंद के स्रोत मौजूद है वह सब देवों को अर्पित हो गया है अब लोक जन का क्या होगा? यह तो लोक धर्म की उपेक्षा हो रही है। लोक का अपना स्वभाव है, वह अपनी तरह से व्यक्त होता है। वैदिक ग्रंथों में उसकी अभिव्यक्ति नहीं है। लोक के सुख–दुःख, राग–विराग के लिए अलग शास्त्र की जरूरत है। इसीलिए उन्होंने लोक के लिए पांचवे वेद 'नाट्यशास्त्र' की रचना की। उनके अनुसार –

''कर्मशिल्पाणि शास्त्राणि, विचक्षण बलानि च।
सर्वाण्येतनि यश्यन्ति, यदा लोकः प्रणश्यति।।''

अर्थात् मनुष्य के सभी काम, शिल्प कलायें, कौशल और निपुणता लोक पर निर्भर हैं। लोक न रहे तो कुछ न रहेगा।

आचार्य भरत ने अपने इस पंचमवेद की रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि – श्रमार्तां नाम..... ।

सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व लोक पर टिका है। लोक अपने ज्ञान को मौखिक परंपरा से स्मृति में संचित करता है। लोकवार्ता में आख्यान करता है। लोकज्ञान में मिथकों की परंपरा महत्वपूर्ण रही है। मिथकों का वृत इतना बड़ा होता है कि उसमें सारी दूरियां मिट जाती है, देश–काल की सीमाएं कम से कम रह जाती है। मनुष्य जीवन की भिन्नताएँ उसमें अतिक्षीणता में अंकित होती है। गंगा का जल जैसे तत्त्व रूप में अनंत का हिस्सा है तथा रूपाकार में वह देशज।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक की शक्ति और उसका ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित होता है। लोक का सत्य, जिये, भोगे और देखे गए का सत्य है। कबीर ने इसी को कहा कि –

''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।

जिसमें कोई लाग–लपेट, आरोहण–प्रत्यारोहण की गुंजाइस नहीं है।यही उसकी शक्ति है। कबीर इसी शक्ति के बल पर पण्डितों और मुल्लाओं से अपने समय में जूझें थे और उन्हें बचाव की मुद्रा में आने को विवश किया था, उन्हें ध्वस्त भी किया था। ऊपर की उक्ति उनकी शक्ति और उनका सत्य था जो शास्त्र के सिर चढ़ कर बोला। साहस के साथ कबीर ने कहा था– पण्डित वाद वदन्ते झूण/काजी कौन किते बखाने। लोक निश्चित ही साहित्य के केन्द्र में है और यह साहित्य लेखन की संजीवनी शक्ति है।

संजय कुमार,
एम.ए., हिन्दी, नेट
द्वारा– डॉ. जे.बी. पाण्डेय,
शोध छात्र, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
चलभाष– 9835809555
8603039006

40

बदलते गाँव और प्रेमचन्द की यादें

चंद्रमणि किशोर

सारांशः–

कथासम्राट मुंशी प्रेमचन्द का जन्म वारणसी जिले के लमही गांव में 31 जुलाई 1880 को एक अन्यंत ही साधारण परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम अजायब राय था, उनका बचपन का नाम धनपत राय था और पिता प्यार से नवाब राय कहा करते थे। लमही के गलियों में घुमनेवाले इस बालक ने जब साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया, तो अंग्रेजों की नजर से बचने के लिए प्रेमचन्द बन गया। लिखा ऐसा कि ब्रिटिश शासन की नींद हराम हो गई। **'सोजे वतन'** की प्रतियां जलायी गयी। लेकिन प्रेमचन्द की चेतना उसमें जल न सकी और वे आगे बढ़ते गये। यही नाम साहित्यिक जगत में कथा–सम्राट प्रेमचन्द के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

प्रेमचन्द के कथा–साहित्य की यात्रा गाँवों की डगर से होकर गुजरती है। वह रास्ता हमें गाँव की पंचायत तक ले जाता है, जहाँ **पंच–परमेश्वर** की अवधारणा निहित है। वह रास्ता उस ठाकुर के गाँव तक जाता है, जहां आज भी गावों में प्रभु वर्ग की बहुलता है और हरिजनों के पानी के लिए अलग प्रावधान करना पड़ता है। वह रास्ता उस गांव तक जाता है, जहां सवा सेर गेहूं मालिक से कर्ज लेकर शंकर आजीवन उनकी गुलामी करता है। मरणोपरांत पुत्र को गुलामी के लिए विवश होना पड़ता है। वह रास्ता उस घर तक जाता है, जहां बूढ़ी काकी आज भी परिवार में अन्य बुजूर्गों की तरह उपेक्षित जीवन जीती है। वह रास्ता वहां ले जाता है, जहां गाँवों में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और अलग्योझा के दर्द से परेशान लोग अपनी–अपनी डफली बजा रहे हैं। वह रास्ता उस गांव तक ले जाता, जहां 21 वीं शताब्दी में लोग सदगति पाने के लिए धार्मिक अंधविश्वासों के शिकार हो रहे हैं। वह रास्ता उस गांव के उस घर तक ले जाता है, जहां बूढ़ी दादी **अमीना** को रोटी सेंकने के लिए चिमटा की जरूरत है और बालक ईदगाह के मेले से बालसुलभ लालसाओं को दबाकर चिमटा खरीदता है।

वह रास्ता गांव के गरीब मजदूर हलकू के घर तक ले जाता है, जो मालिक से खेत लेकर **'पूस की रात'** में फसल–रक्षा में अपनी जान देने के लिए तत्पर है और जो कड़ाके की ठंड में एक चादर या कम्बल नहीं खरीद सकता है। वह महाजन की गालियों को बर्दाशत करता है और कर्ज मुक्ति के लिए कम्बल नहीं खरीदता है। उसकी पत्नी मुन्नी का विरोध आज की श्रमिक ग्रामीण महिलाओं की स्वर में सुनाई पड़ाता है–''**तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते हो? मर मर कर काम करो, उपज हो तो बाकी को दे दो।'' या अच्छी खेती है! मजूरी कर के लाओ, वह भी उसी में झोंक दो उसपर धौंस।**'' **'पूस की रात'** कहानी का यथार्थ आज भी अधिकांश कृषि मजदूरों के जीवन में रेखांकित होता है। ऐसी परिस्थिति में आज भी दलित और शोशित मजदूर मनरेगा के सरकारी मजदूर बनकर कफन में घीसू और माधो की मानसिकता में जीवन व्यतीत कर रहें हैं। हीरा मोती, दो बैलों की कहानी हो या गुल्ली डंडा बालकों का खेल, बड़े घर की बेटी हो या नमक का दारोगा या परीक्षा प्रेमचन्द ने अनेक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखी हैं, जो ग्रामीण परिवेश को उजागर करती हैं। गांव के मध्यवर्गीय जीवन जीने वाले लोग झूठी शान और निरर्थक मान के लिए रमानाथ की तरह गबन का शिकार बनते हैं। तिलक दहेज की असमर्थता में उनकी बेटियां **'सेवा सदन'** की सुमन का अनुशरण करने को विवश होती है या अनमेल विवाह के कारण **'निर्मला'** बनकर बढ़े वकील तोताराम के विधवाएं हो जाती है। प्रेमचन्द का '**गोदान**' तो भारतीय कृषक संस्कृति का महाकाव्य और भारतीय गांवों की महागाथा है। वह कृषि संस्कति की महात्रासदी एवं कृषक जीवन की करूण कथा है। होरी और धनिया की कथा लगभग संपूर्ण भारतीय कृषक जीवन की कथा है। यह कहना सही होगा कि प्रेमचन्द के कथा–साहित्य में समाज और जीवन का सर्वांगीण चित्रण तथा ग्रामीण जीवन का सजीव और यथार्थ वर्णन हुआ है। प्रेमचन्द ने पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण करते हुए भी भारतीय ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता की आत्मा को पहचाना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि –**' अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ जानना चहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। उससे अधिक सच्चाई से दिखा सकने वाले परिदर्शक को भी हिन्दी उर्दू की दुनिया नहीं जानती'**

प्रेमचन्द को गुजरे हुए 80 वर्ष बीत गये हैं (1880–1936) और उन्होंने अपने कथा साहित्य के द्वारा जिस भारतीय ग्रामीण समाज को प्रस्तुत किया था, वह समाज कितना बदला है, उसे प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री उदयराज के उपन्यास '**अंधेरे के विरूद्ध'** के निष्कर्ष द्वारा जाना जा सकता है – 'भारतीय गांवों के उत्थान के लिए स्वतंत्रता के बाद अनेक सरकारी योजनायें बनी है। विकास के लिए स्कूलों की स्थापना हुई। गांव की सड़के पक्की हो गई, बिजली की रोशनी का प्रबंध हुआ, स्कूलों की संख्याएं बढ़ गई, लेकिन इतिहास के पृष्ठ बदल गये परन्तु किस्से पुराने ही रह गये।

प्रेमचन्दोत्तर काल में अनेक कहानी आंदोलन हुए, नई कहानी, साठोत्तर कहानी, समकालीन कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी और जनवादी कहानी – किंतु प्रेमचंद ने जो प्रगतिशीलता और आधुनिकता का बीजारोपण **'पूस की रात' और 'कफन'** कहानी के द्वारा किया था। उसी का पुष्कल पल्लवन आज तक विविध रूपों में होता रहा है। उस काल के सभी श्रेष्ठ कहानिकारों ने प्रेमचन्द्र को लिखते समय स्मरण में रखा है वैश्विक व्यापक्ता, सामाजिक समरसता, शहरीकरण की प्रवृति, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के प्रति आग्रह, सामाजिक यथार्थ का आभ्यांतीकरण, व्यवस्था परिवर्तन की आकांक्षा, गांवों का आधुनिकरण, सामाजिक बदलाव की आकांक्षा, नारी सशक्तिकरण, दलित चेतना आदि की प्रवृतियां, 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशको के कथा साहित्य में व्यक्त हुई है। यशपाल, राधाकृष्ण, रेणु, नागार्जुन, शैलेश मटियानी, विवेकीराय, मार्कण्डेय, डॉ0 श्रवण कुमार गोस्वामी, डॉ0 ऋता शुक्ला,

चंद्रमणि किशोर
एम.ए. हिन्दी लब्ध स्वर्ण पदक, नेट
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष– 8862827946
Email- chandramanikishore@gmail.com

डॉ0 मिथिलेश्वर और मधुकर सिंह जैसे कथाकारों ने आंचलिकता को प्रमुख रूप से उकेरा है। किंतु प्रेमचन्द का '**गोदान** ' पुनः नहीं लिखा जा सका है। स्वाधीनता, क्षेत्रीयता, आंचलिकता से ऊपर उठकर '**गोदान**' का बेलारी गांव भारत के समग्र गांवों का प्रतीक है।

संचार माध्यमों, दूररर्शन, आकाशवाणी तथा पत्र–पत्रिकाओं में उपलब्ध सूचनाओं ने लगभग गांव और शहर के पार्थक्य को बहुत कम कर दिया है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार और राजनीतिक चेतना के कारण लोग सजग हो गये है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में अभूतर्पूव क्रांति हुई है। देश उदारीकरण, वैश्विकरण, निजीकरण (LPG) और बेरोजगारी से उलझता गया, विश्व संस्कृति ने पूंजीवाद एवं बाजारवाद को समृद्ध किया। विकास के नाम पर लोगों का जीवन संघर्षपूर्ण हो गया। आतंकवाद और नक्सवाद ने जड़ें जमा ली है। पिछले बीस तीस वर्षों में अनेक कहानीकारों ने प्रेमचन्द के अधूरे सपनों को मुक्कमल करने का प्रयत्न किया है। मधुकर सिंह (पहला) मिथिलेश्वर (हरिहर काका), सुरेश कांटक (एक बनिहार का आत्म निवेदन), नीरज सिंह (चक्रव्यूह टूटेगा), प्रेमकुमार मणि (लाल के बाजार), बासुदेव (एक गांव की हत्या), विजेन्द्र अनील (नई अदालत) चित्रा मुदगल (जगदम्बा बाबू आ रहे हैं), नकिता सिंह (जंगल –गाथा), डॉ0 श्रवण कुमार गोस्वामी (जंगल तंत्रम), चन्द्रमोहन प्रधान (किस्सा पहाड़ परे), देवेन्द्र (क्षमाकरो हे वत्स), संजय खती (चिंटी का साबुन), सृंजय (मूँछ, कामरेड का कोट), जयनंदन (गिद्ध झपटा), शिव प्रसाद सिंह (कर्मनाशा की हार), ओमप्रकाश बाल्मीकि (भय), अनंत कुमार सिंह (चौराहे पर), रमेश नीलकमल (सनीचरी काकी), संजीव (अपराध, तेतरी दीदी), उदयप्रकाश (और अंत में प्रार्थना), क्षमा शर्मा (घर–घ) अलका सरावगी (लाल मिटटी की सड़क), जया जादवानी (कयामत का दिन), मैत्रेयी पुष्पा (बिछूड़े हुए), संजना कौल (नमूना), उर्मिला शिरीस (निर्वासन) आदि पुराने और नये कहानिकारों की कहानियों में समकालीन बोध को प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न हैं इनमें प्रेमचन्द कहां है और हैं तो उनकी प्रभावान्विती को नकारा नहीं जा सकता। हंस के यशस्वी संपादक स्वर्गीय राजेन्द्र यादव ने संजीव की **'अपराध' कहानी का उल्लेख करते हुए 'हंस' के अप्रैल, 1998 वाले अंक में लिखा था – हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द, यशपाल के बाद इतनी बेरायदी किसी में नहीं है, कथाकार रेणु में भी नहीं, संजीव एक कहानी में एक उपन्यास जैसी मेहनत करते हैं।**

सक्रिय कहानीकारों में संजीव सबसे बेचैन कहानीकार है तीस साल का सफरनामा से मानवपन का सफरनामा लिखने वाले संजीव स्वयं स्वीकार करते हैं – मैं प्रेमचन्द को छूना चाहता हूँ। रेणु ने मैला आंचल में, नागार्जुन ने बलचनमा में कृष्णा सोबती ने जींदगीनामा में, श्री लाल शुक्ल ने रागदरबारी में तथा मिथिलेश्वर ने – यह अंत नहीं जैसे उपन्यासों में प्रेमचन्द को छूना चाहा है। उस ऊँचाई तक पहुंचने जैसी बात तो बहुत दूर है और प्रेमचन्द अलभ्य उँचाई वाले कथाकार हैं, जिनकी परंपरा अछून्न है। शिवमूर्ति, अखिलेश हृषिकेश सुलभ, अवधेश प्रीत, रामधारी सिंह दिवाकर, राकेश कुमार सिंह, डॉ0 ऋता शुक्ल, डॉ0 विद्याभूषण, डॉ0 अशोकप्रियदर्शी, मनमोहन पाठक, जयनंदन आदि समकालीन कहानीकार प्रेमचन्द के गांवों की अपडेटेड तस्वीर लेने में संलग्न हैं। मै कथासम्राट को विनयावनत भाव से स्मरण करता हूँ।

41

भक्ति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग

संजय कुमार

सारांशः–

सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य का इतिहास में भक्ति काल का समय विक्रम संवत 1375–1700 तक स्वीकार किया है। भक्ति काल आर्य जाति के लिए कंचन की अपरिमित राशि से भी अधिक मूल्यवान है। भक्तिकाल को स्वर्ण युग की संज्ञा प्रदान करने वाले प्रथम विद्वान डॉ0 श्यामसुंदर दास है। उन्होंने भक्तिकाल को स्वर्ण युग का अभिधान प्रदान करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि– **'जिस युग में कबीर, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अंतः करणों से निकलकर देश के कोने–कोने में फैली थी उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तिकाल कहते हैं। निश्चय ही वह हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था।''**

डॉ. श्यामसुंदर दास के उक्त वक्तव्य के तदन्तर तो हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने भक्ति काल को एक स्वर से स्वर्ण युग कहने की होड़ सी लग गई। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो भक्तिकाल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती आदि काल (वीरगाथा काल) तथा परवर्ती रीतिकाल एवं आधुनिक काल के साहित्य से निश्चय ही श्रेष्ठ है। सच्ची अनुभूति की गहराई, भावनाओं की सूक्ष्मता, भावप्रवणता एवं मर्मस्पर्शिता आदि की दृष्टि से आदि काल और रीति काल ही नहीं अपितु आधुनिक काल का साहित्य भी व्यापक और विविधता से पूर्ण होते हुए भी उसकी समकक्षता में नहीं ठहर पाता। इस काल के साहित्य में भक्तों– निर्गुणोपासक एवं सगुणोपासक दोनों– रहस्यवादियों–यथार्थवादियों आदि सभी विचारधारा के समर्थकों को अपने–अपने अनुकूल सामग्री यथेष्ट रूप में मिल जाती है। अतः अधिकांश इतिहासकार एवं विचारक इस काल की महत्ता एक स्वर से स्वीकार करते हैं और यही इस काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आकर्षण है।

इतिहास में जिसे स्वर्णयुग की संज्ञा दी जाती है, वह युग सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि से परिपूर्ण होता है और साहित्य के इतिहास में जिसे स्वर्ण युग की संज्ञा प्रदान की जाती है वह काव्य सौन्दर्य से तो पूर्ण होता ही है जीवन को अधिक गहराई से स्पर्श करनेवाला भी होता है। साहित्य में मानव जीवन की अभिव्यक्ति होती है। साहित्य के दो पक्ष है– भाव पक्ष एवं कला पक्ष और चूंकि साहित्य मानव जीवन की अस्मै से तस्मै बनाने की प्रक्रिया का नाम है आदि से अंत तक एतद्र्थ मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है वही साहित्य है। जो कुछ कहना है या कथ्य है वह तो भाव है और जैसे वह कथित या अभिव्यंजित होता है वह कला है। (what is to say or to tell that is feeling and emotion and how it is said or told that is an art.)

किसी भी वस्तु में उपयोगिता एवं सौन्दर्य का सृजन कला का सन्दर्भ है। किसी काल के साहित्य की श्रेष्ठता उसके भाव एवं कला पक्ष की संयुक्त अभिव्यंजना शक्ति पर निर्भर करती है। यदि भक्ति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है तो सबसे पहले भाव एवं कला पक्ष के निकष पर पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कालों से उसकी तुलना करना चाहेंगे।

सर्वप्रथम आदि काल के भाव पक्ष एवं कला पक्ष पर विचार अपेक्षित है। ज्ञातव्य है कि आदिकालीन साहित्य का सृजन राजदरबारों में राजाओं की प्रशंसा एवं कामिनी के नख–शिख सौन्दर्य हेतु किया गया। जिस साहित्य का निर्माण ही राजाओं की प्रशस्ति एवं नारी के नख–शिख सौन्दर्य हेतु हुआ हो वह भला संपूर्ण जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकेगा? दूसरी बात यह है कि आदिकालीन साहित्य में कंचन एवं कामिनी के लिए भीषण युद्ध का स्वर सुनाई पड़ता है। पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि–

जेहि की बिटिया सुन्दर देखी। ताहि पै जाई धरै तलवार।''

युद्ध कभी भी मानव के लिए वरेण्य (वांछित) नहीं हो सकता और न कंचन एवं कामिनी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जो मानव जीवन का परम साध्य है। अतः भावना के धरातल पर आदिकालीन साहित्य मनुष्य को सुख एवं शांति नहीं प्रदान करता अपित युद्ध की भयंकरता एवं भीषणता से आपूरित होने के कारण वह मनुष्य को और भी अधिक संत्रस्त एवं भयभीत बना देता है। जिस साहित्य को पढ़ने से मानव मन उदात्त न होकर भय के कारण संकुचित हो जाये उसे हम श्रेष्ठ कैसे मान सकेंगे?

कलात्मक स्तर पर आदिकालीन साहित्य बड़ा कमजोर मालूम पड़ता है। संभव है प्रारंभिक स्थिति में भाषा का पूर्ण विकास न होने के कारण अभिव्यक्ति में यह दुर्बलता आ गई हो परंतु दोष तो दोष ही है चाहे वह किसी कारण किसी में हो। अलंकार, रस, छंद, एवं भाषा आदि के दृष्टि से भी आदिकालीन साहित्य भक्तिकाल के समक्ष नहीं टिक सकता। जहां तक रीति काल की बात है वह तो और भी विचित्र है। रीतिकालीन साहित्य तो केवल नायिकाओं के नख–शिख वर्णन तक ही सीमित है। कविवर बिहारीलाल का यह दोहा इस बात को संपुष्टि कर रहा है–

भूषण भार संभारिहै, क्यों यह तन सुकमार।
सूधे पाय न धर परत, सोभा ही के भार ।।
(बि.स. 322)

कवियों की दृष्टि नायिकाओं की देहयष्टि से ऊपर नही जा सकी। परिणामस्वरूप घोर श्रृंगारिक एवं अश्लील साहित्य का प्रणयन हुआ।

दूसरी बात यह है कि रीतिकालीन साहित्य का निर्माण धनार्थ के लिए भी हुआ। बिहारी लाल के सतसई अशर्फियों के कारण संभव हो सकी तथा शिवराज भूषण, शिवा बावनी, एवं छत्रसाल दशक ग्राम एवं धन पाने के कारण। इसी प्रकार केशव, चिंतामणि, मतिराम, देव, पद्माकर आदि कवियों द्वारा रचित साहित्य भी धन प्राप्ति के कारण संभव हो सका। लोकमंगल की भावना का सर्वथा इनमें अभाव रहा। जबकि साहित्य का परम उद्देश्य लोकमंगल के द्वारा शिवत्व की प्रतिष्ठा है। रीतिकालीन साहित्य शिवत्व की प्रतिष्ठा नहीं कर सका अतः भक्तिकालीन साहित्य के समक्ष अत्यन्त फीका लगता है। कहा गया है कि–

धिक भाल चंदन बिना, धिक ग्राम शिवलयम्।

रीतिकाल में न तो चंदनयुक्त भाल मिले न शिवालय युक्त ग्राम।

कला पक्ष की दृष्टि से रीतिकाल अवश्य समृद्ध है। अलंकार, रस, भाषा एवं छन्द का वैविध्य रीति काल का वैशिष्ट्य है परन्तु जहां रीतिकालीन कवियों ने उक्त काव्यांगों का सायास प्रयोग कर कला को समृद्ध बनाया वहां भक्तिकालीन कवियों ने अनायास अलंकार, रस, छन्द भाषा आदि का प्रयोग कर कला को प्रौढ़तम बना दिया। अतः जहां रीतिकालीन कला की सफलता सायास एवं प्रायत्निक है वहां भक्तिकालीन कला की उपलब्धि अनायास एवं अप्रयात्निक है। अतः कलात्मक स्तर पर भी भक्तिकालीन साहित्य रीतिकालीन साहित्य की तुलना में श्रेष्ठ प्रतीत होता है।

गद्य के विस्तृत रूप विश्वजनीन भावनाओं तथा अभिव्यक्ति की अनेकरूपता के कारण आधुनिक काल कुछ सबल मालूम पड़ता है परन्तु अनुभूति की वह तीव्रता, जो भक्तिकालीन कवियों में उपलब्ध है का यहां सर्वथा अभाव दिखता है। छायावादियों द्वारा रचित काव्य मनोहर तो अवश्य है परन्तु न तो वह लोक की बात करता है और न परलोक की। वह इन दोनों से परे कल्पना लोक में रमण करता है। अतः जिस साहित्य से न लोक सुधरे और न परलोक बने वह भक्तिकालीन साहित्य की समता क्या कर सकता है? प्रगतिवादी, प्रयोगवादी एवं नये साहित्य में लोक की बात अवश्य है परन्तु इतनी नग्नता के साथ कि उससे हमारी चित्तवृत्तियों का न तो उत्कर्षन होता है न उन्नयन। थोड़ी देर के लिए मनोरंजन भले हो जाये अथवा वर्ग संघर्ष की भावना भले उत्पन्न हो जाए परन्तु साहित्य का परम उद्देश्य न तो मनोरंजन है और न वर्ग संघर्ष की भावना उत्पन्न करना। साहित्य का परम उद्देश्य तो **'सत्यम शिवम सुन्दरम्'** की अभिव्यक्ति एवं मानव कल्याणार्थ इसकी प्रतिष्ठा करना है। तुलसी के शब्दों में–

''किरती भणिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।

यह कार्य भक्तिकालीन साहित्य द्वारा ही उत्तमरूप से संभाव्य है। अतः अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती साहित्य से उसकी सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है। वस्तुतः भक्तिकालीन कवियों का काव्य संबंधी दृष्टिकोण परम उदात्त है। और उन्होंने अपनी वाणी का सदुपयोग **'प्राकृत जन गुणगान'** में नहीं किया। महाकवि तुलसी ने मानस में ठीक ही लिखा है कि प्राकृतगान करने से सरस्वती अत्यंत दुखित होती हैं–

कीन्हैं प्राकृत जन गुण गाना ।
सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।।

आदिकालीन, रीतिकालीन एवं आधुनिककालीन कवियों ने सरस्वती से प्राकृत जन गुणगान कराया है। भक्तिकालीन कविता के द्वारा परम एवं उदात्त चरित्रों को वर्णित किया गया है। अतः वह अन्य कालों से निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ है।

भक्तिकालीन कविता आदिकालीन एवं रीतिकालीन कविता की भांति राज्याश्रय में पल्लवित एवं पुष्पित नहीं हुई। सच तो यह है कि वह आत्मप्रेरणा का परिणाम है। स्वामित्व सुखाय न होकर स्वान्तः सुखाय या सर्वजन सुखाय या इष्टजन सुखाय है। तुलसी का मानस भी स्वान्तः सुखाय का ही सुफल है। परन्तु उनका यह स्वान्तः सुखाय परान्तः सुखाय का ही रूप है।

निष्कर्षः– यह है कि भक्तिकालीन कवियों को न तो किसी राजा महाराजा की फरमाइश की ही परवाह थी और न उनका सिकरी आदि से ही कोई मोह था। अकबर की फरमाइश को ठुकराते हुए कुंभनदास ने कहा है–

संतन को कहा सीकरी सो काम।
आवत जात पनहिया टूटी विसरि गयो हरि नाम।
जिनके मुख देखत दुःख उपजै, तिनको करिबे परि सलाम।।

भक्तिकालीन साहित्य तो निश्छल आत्माभिव्यक्ति एवं ईश्वराधीन है जिसमें सत्य, प्रेम,उल्लास, ईमानदारी, आनंद एवं युगनिर्माणकारी प्रेरणा ही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाव पक्ष एवं कला पक्ष का इतना सुन्दर समन्वय किसी अन्य काल की कविता में नहीं दिख पड़ता। प्रोफेसर शिवकुमार शर्मा के शब्दों में–''**भक्ति काव्य में मर्त्य और अमर्त्य लोक का एक सुखद संयोग है उसमें भाव पक्ष एवं कला पक्ष परस्पर इतने घुल–मिल गये हैं कि उन्हें पृथक करना सहज नहीं है। भक्ति काव्य का अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष संतुलित, सशक्त और परस्पर पोषक है। कविता से तुलसी की शोभा नहीं बढ़ी प्रत्युति तुलसी के द्वारा कविता की महिमा संपन्न हुई है। तुलसी का काव्य भक्ति, कविता और संगीत की सुंदर त्रिवेणी है। कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, नंददास और नानक की कलाकृतियों पर हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य के सम्मुख गर्व कर सकता है।'**

संजय कुमार
एम.ए., हिन्दी, नेट
द्वारा– डॉ. जे.बी. पाण्डेय,
शोध छात्र, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
चलभाष– 9835809555
8603039006

42 राष्ट्रीय एकता के प्रतीक : लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

सारांशः–

जय हो जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को।
जिस नर में भी बसे हमारा, नमन तेज को बल को।।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर नमस्य है फूल।
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि शक्ति का मूल।।
रश्मिरथी –दिनकर

किसी को समय बड़ा बनाता है और कोई समय को बड़ा बना देता है। कुछ लोग समय का सही मूल्यांकन करते है और कुछ लोग आने वाले समय का पूर्वभास पा जाते हैं। कुछ लोग अतीत को परत दर–परत तोड़कर उसमें वर्तमान के लिए उर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं। लौह पूरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल एक ऐसे ही युग पुरूष थे जिन्होंने समय को बड़ा बना दिया और वर्तमान की समस्याओं से कभी मूँह नहीं मोड़ा।

कहते हैं प्रतिभा कभी छिपाये नहीं छिपती। महान पुरूष के सद्गुण मृग में बसी कस्तूरी के समान होते हैं जिसकी सुगंध बरबस अपनी ओर खींच लेती है। ऐसे ही युग पुरूष थे स्वतंत्र भारत के प्रथम गृह मंत्री लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल। जिनकी सरलता, सहजता, तप, त्याग, बुद्धिमता एवं दूरदर्शिता को भारत में ही नहीं, संपूर्ण संसार में सराहा गया।

अपनी दूरदर्शिता एवं कुशाग्र बुद्धि, दृढ़ संकल्प शक्ति एवं देश को अंग्रेजी शासन के गुलामी के चंगुल से मुक्त करने के लिए स्वतंत्रता संग्राम के अजये योद्धा के रूप में जाने जाने वाले देश की अखंडता एवं एकता के जनक लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात प्रांत के कैरा जिलान्तर्गत गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम झाबेर भाई और माँ का नाम लाडाबाई था। इनके पिता प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी थे और 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में मुश्तैदी से भाग लिया था। झबेर भाई –खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' की सेना में सम्मिलित थे और उन्होंने जालिम अंग्रेज शासकों के दाँत खट्टे किये थे। उन्होंने 92 वर्ष की लंबी आयु पायी थी। सरदार की माता जी लाड़ा बाई 80 वर्ष की उम्र में भी सूत काट लेती थी। ऐसे देश प्रेमी, कर्मयोगी माता–पिता की संतान होने के कारण सरदार वल्लभ भाई पटेल में भी स्वभावतः देश प्रेम कूट–कूट कर भरा था ।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा नाडियाड की पाठशाला में हुई। 22 वर्ष की अवस्था में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की और नाडियाड में ही जिला वकील बन गए। इससे पूर्व सन् 1893 में 18 वर्ष की उम्र में इनका विवाह झबेर बाई से हुआ। जो आज्ञापालक और विनीत जीवन संगिनी थी जिनका निधन 1908 में हो गया। पटेल बचपन से ही बड़े निर्भीक थे। अपने शिक्षक से भी कभी–कभी तन जाते थे। एक बार एक शिक्षक ने उन्हें घर से प्रतिदिन पहाडे लिखकर लाने को कहा। वल्लभ भाई ने एक दिन पहाडा नहीं लिखा। गुजराती में पहाड़े को पाडा कहते हैं जिसका अर्थ होता है भैंस का बच्चा। शिक्षक द्वारा पहाड़ा लिखकर नहीं लाने का कारण पूछने पर उन्होंने कहा – लाया था गुरूदेव लेकिन कुछ बच्चों के भड़काने पर वे दरवाजे से ही रफूचक्कर हो गए। इनके बड़े भाई विट्ठल भाई पहले से ही गोधरा में वकालत कर रहे थे। अतः इन्होंने भी सन् 1900 में गोधरा में एक छोटा सा कार्यालय खोल लिया। कुछ महिनों में वे नामी मुख्तार माने जाने लगे। जब सरदार ने काफी रूपये अर्तित कर लिए, तो उन्हें विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करनी चाही किन्तु उनके बड़े भाई वहाँ जाने के लिए तैयार हो गये। सरदार ने पहले अपने बड़े भाई को इंग्लैण्ड भेजा और उनके लौटने पर स्वयं विदेश गये। इंग्लैण्ड जाकर वल्लभ भाई ने कठिन परिश्रम किया और यही कारण था कि बैरिस्टरी की परीक्षा में सर्वप्रथम आए। बैरिस्टरी पास कर वे स्वदेश चले आए जैसे सागर बूँदों की संधात है, वैसे ही जीवन क्षणों का। एक क्षण व्यर्थ गँवाने का अर्थ है अपने जीवन के महत्वपूर्ण अंश को गँवाना। इसलिए होनहार बिरवान के होत चिकन पात' के साक्षात् विग्रह थे सरदार वल्लभ भाई पटेल। संस्कृत की सूक्ति है –

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

सफलता परिश्रमी पुरूष के चरण चूमती है। जब वल्लभ भाई पटेल अहमदाबाद में प्रैक्टिस कर रहे थ, तो उनके आगे रूपयों की बरसात होने लगी। विट्ठल भाइ बम्बई में वकालत करते थे। उनका बहुत सा समय जनसेवा में ही बीतता था। धीर–धीरे वे अर्थोपार्जन से मुख मोड़ने लगे और जन सेवा में ही रात दिन एक कर दिये। परिवार का सारा बोझ सरदार पटेल के सिर पर आ गया । कुछ दिनों ते सरदार जनसेवा से विरत रहे किन्तु एक समय आया जब उन्होंने अपने जीवन का एक–एक पल देश के लिए न्यौछावर कर दिया।

गाँधी जी अफ्रीका से लौटकर भारत आये तो सन् 1916 ई0 में उन्होंने अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की। गाँधी जी ने **'यंग इंडिया'** नामक पत्र निकाला जो जन–मन में नव जागृत फैला रहा था। गाँधी जी के विचार सरदार पटेल को अपनी ओर नहीं खींच सके। उनकी बातें सरदार को बिल्कुल अव्यावहारिक लगती थही। पटेल कहा करते थे, **''भैंस को भगावत सुनाने से क्या लाभ।''** एक बार गांधी जी सत्याग्रह पर भाषण दे रहे थे, सरदार ताश खेलने में मशगूल थे किन्तु धीरे–धीरे गांधी के मृदुल व्यवहारों ने उन्हें अपनी ओर मोड़ लिया।

गाँधी जी से प्रभावित होकर वे खुलकर राजनीतिक कार्यों में भाग लेने लगे। गोधरा के प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति गाँधी जी थे तथा सरदार मंत्री हुए। पटेल के ऊपर जो उत्तरदायित्व था उसे उन्होंने बड़ी ही मुस्तैदा के साथा निबाहा। पटेल की इस नियम और निष्ठा ने गांधी जी को बड़ा ही प्रभावित किया। राष्ट्रपिता गांधी जी के प्रति पूर्ण विश्वास की चट्टान पर ही सरदार को मर्यादित जीवन का निर्माण हुआ।

जब प्रथम विश्व युद्ध की ज्वाला धधकी तो सरदार पटले ने

गांधी जी के आदेश पर अंग्रेजों का साथ दिया। युद्व समाप्त होते ही रौलेट एक्ट लाया गया। सरदार ने इसका डटकर विरोध किया। फिर अप्रैल, 13 सन् 1919 जालियाँ वाला बाग में अंग्रेजों ने अपनी बर्बरता का नग्न प्रदर्शन किया। यह कार्य ऐसा था जिसे भी देशभक्त बरदाशत नहीं कर सकता था।

गांधी जी ने जब 1920 में असहयोग आंदोलन का पांचजन्य फूंका तो पटेल अपनी प्रैक्टिस की तिलांजलि देकर कांग्रेस का कार्य करने लगे। इसके बाद नागपुर का झंडा सत्याग्रह हुआ। इसके संचालक जमनालाला बजाज जब गिरफ्तार हो गये तो पटेल ने इसकी लौ नहीं बुझने दी। उनकी अनुशासनप्रियता और संगठन क्षमता ने सरकार को झुकने पर विवश कर दिया। बोरसद ताल्लके की जनता पर सवा दो लाख सलाना अतिरिक्त कर लादा गया किन्तु पटेल के सशक्त विद्रोह के कारण सरकार को इस भी उठाना पड़ा।

इसके बाद बारदौली का किसान सत्याग्रह हुआ। इसी सत्याग्रह ने वल्लभ भाई पटेल को सरदार बना दिया। उनका यश भारत के कोने–कोने में फैल गया। बात यह हुई कि सरकार ने किसानों के लगान में बहुत वृद्वि कर दी। किसानों ने प्रार्थना की कि उनके ऊपर यह अत्याचार न दिया जाए, किन्तु सरकार कब मानने वाली थी। किसानों की एक बहुत बड़ी सभा हुई और उसमें फैसला हुआ कि बढ़ती हुई मालगुजारी न दी जाए। पटेल ने कहा– बढ़ी हुई मालगूजारी ही क्यों, आप कुल मालगुजारी ही देना बंद करें। भगवान राम की कहानी आप याद करें, भगवान समुद्र तट पर अपने दल–बल के साथ खड़े थे। समुद्र रास्ता रोके खड़ा था। उन्होंने समुद्र की बड़ी ही विनती की किन्तु जड़ समुद्र कब मानने वाला था। तीन दिनों जब उन्होंने कोप करके लक्ष्मण से कहा – लक्ष्मण बान सरासन आनू। सोखों वारिधि बिसिख कृशानू।
तो फिर समुद पाँव पड़ने लगा। पटेल ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम जैसा ही कार्य किया और गरीब किसानों का बोझ हल्का हो गया।

इसके बाद 1930 में नमक सत्याग्रह आरंभ हुआ। गुजरात में इसका नेतृत्व पटेल ने किया, जिसके कारण उन्हें जेल जाना पड़ा। अब इनके जेल में जाने तथा मूक्त करने का तथा बंदी बनाकर फिर जेल भेजने का सिलसिला चल पड़ा। सरदार पटेल मार्च 1931 ई0 में कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने उस समय अपनी विनम्रता का परिचय देते हुए कहा था – आने इस उच्चतम पद के लिए एक साधारण किसान के पुत्र को चुना है जो आत प्रत्येक भारतीय की स्पृहा है। सन् 1932 में गोलमेज सम्मेलन के पश्चात् 4 जनवरी, 1932 को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और 1934 में छोड़ दिया गया। सन् 1939 में विश्व युद्व छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार की सहायता इस शर्त पर की गयी थी कि युद्वों के पश्चात् वह भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर देगा किन्तु ब्रिटिश सरकार का छलावा मात्र निकला। 8 अगस्त 1942 में भारत छोड़ों का आंदोलन परिणाम स्वरूप पटेल और अपने नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। देश के शासन की बागडोर सरदार के हाथों में आई। वे भारत के प्रथम गृहमंत्री तथा उप प्रधानमंत्री बने। अंग्रेज गये लेकिन हमारे देश में हिन्दू मुस्लिम फूट का बीज बो गये। हिन्दू मुस्लिम दंगे हुए। हिन्दू मूसलमानोंपर तथा मुसलमानों हिन्दुओं पर भूखे भेड़ियों की तर टूट पड़े। मनुष्यों ने अपना मनुष्यत्व खो दिया, प्रेम का नामों निशान मिअने लगा। लाखों हिन्दू बेघर होकर खाना बदोश की तरह पाकिस्तान से भारत आए। इसका बड़ा ही रोमांचक वर्णन रामानंद सागर ने और इन्सान मर गया, कृष्णचंद्र ने 'हम बहशी हैं' पेशावर एक्सप्रेस में तथा अज्ञेय ने 'शरणदाता' में किया है। देश के सामने शराणार्थी समस्या उठ खड़ी हुई। परन्तु, सरदार वल्लभ भाई पटेल ने लाखों विस्थापितों को बसाने का कार्य बड़ी ही दक्षता के साथ किया। फिर देश में देशी रियासतों की समस्याएँ आयी। भारत अनेकानेक देशी राज्य थे। उनमें से बहुतों के अपने नियम कानून थे। एक देश के भीतर सैकडों नियम कानून। सरदार पटेल एक कुशल शिल्पी एवं चितेरे थ। उनकी आँखों के समक्ष अखंड भारत का सपना था। अस विश्रंखला राष्ट्र को एक सूत्र में गँथने का जो असाध्य कार्य उन्होंने किया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखन योग्य है। सरदार पटेल ने भारत के एकीकरण की निर्णायक भूमिका निभाई और दूरदर्शिता तथा व्यावहारिक कौशल का परिचय दिेते हुए 562 देशी रियासतों को भारतीय संघ में विलय कर अपनी अद्भुत बुद्धि, कौशल का करिशमा कर दिखाया है। कुछ एक देशी रियासतों ने अकड़ दिखाई, किन्तु पटेल के कोप भरे त्रिनेत्र के खुलते ही सब पराजित हो गये। हैदराबाद का निजाम और जूनागढ़ का निजाम इसके उदाहरण हैं।

सरदार पटेल गुणों की खान थे। वे बड़े ही दृढ़ प्रतिज्ञ थे। जैसे लहरे चट्टानों की बाल बाँका नहीं कर पाती, वैस ही विघ्न उन्हें डिगा नहीं पाते थे। एक बार की बात है कि वे किसी मुकदमें की जिरह कर रहे थे। इस बीच उन्हें डिगा नहीं पाते थे। एक बार की बात हे कि वे किसी मुकदमें की जिरह कर रहे थे इसी बीच उन्हें एक तार मिला जिसमें उनकी पत्नी के देहांत का अशुभ समाचार था। उन्होंने तार पढ़ लिया और बिना विचलित हुए अपना कार्य करते रहे। पटेल की संदर्भ में दिनकर की ये पंक्तियाँ सच लगती है –

सच है विपति जब आती है, कायर को दहलाती है।
सूरमा नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते।
विघ्नों को गले लगाते हैं, काँटों में राह बनाते हैं।

गीता के 'युध्यस्व विगतज्वरः' का पटेल ने अच्छी तरह से अभ्यास किया था। वे क्षण भर भी सुस्ताना नहीं जानते थे। जब कभी भी उन्हें रूपयों की थैली भेंट की गई, उन्होंने उसे छूना पाप समझा। एक बार अहमदाबाद में उन्होंने कहा था – ''मैने लोक सेवा का व्रत गांधी जी से लिया है। हमारे व्रत में धन का स्पर्श वर्जित है। तब मै इस थैली को कैसे हाथ लगा सकता हूँ।'' ऐसे ही महापुरूषों से मातृभूमि धनय होती है। गाँधी जी इनके बारे में कहा करते थ – ' वल्लभ भाई सोना है, अद्वितीय गुणों के धनी।' भारत कोकिला सरोजिनी नायडू का कहना था –' वल्लभ भाई एक लौह भाँड़ थे, जिसमें गुणों के बहुमूल्य रत्न छिपे थे' पंडित नेहरू ने कहा है कि – 'उनका जीवन एक गौरव गाथा है, जिसे इतिहास अंकित करेगा, अनेक पृष्ठों में इतिहास समाहित करेगा, उन्हें नवीन भारत के निर्माता और सुदृढ़ कर्ता के रूप में।' भारत माँ का यह सपूत 15 दिसंबर 1950 को दिवंगत हो गया लेकिन आजादी के बाद तीन वर्षों में जो कुछ कार्य पटेल ने किया, वह स्वतंत्र भारत के इतिहास में अमिट अध्याय बन चुका है। आज भी संकट की अंधेरी घड़ियों में अजेय साहसी शक्तिवाले इस वज्र मानव की याद हमें बराबर ही आती है। पता नहीं, कितनी सदियों के बाद भारत माँ पूनः वास्तविकता के अग्रदूत, आजादी के मसिहा तथा अपने फौलादी राष्ट्रभक्त को पायेगी। इस महान स्वतंत्रता सेनानी तथा राष्ट्र

निर्माता महामानव पटेल का भारत सरकार ने 1991 में मरणोपरांत भारत रत्न के सम्मान से विभूषित किया।

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय
अध्यक्ष,हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष : 9431595318, 8609659634

43

रक्तदान जागृति का मंत्र फूंकता डॉ मधुकांत का उत्कृष्ट उपन्यास ''गूगल बॉय''

पुस्तक समीक्षा

डॉ0 रमा कान्ता

सारांशः–

गूगल बॉय उपन्यास डॉ मधु कांत जी की नवीन जागृति के प्रयास में एक सार्थक रचना है जिसमें रक्तदान जैसे मानव कल्याण के पुनीत कार्य के प्रचार प्रसार की उत्तम एवं सराहनीय प्रक्रिया अपनाई गई है यह एक किशोर उपन्यास है जिसमें किशोर गूगल की गूगल से गूगल बॉय बनने तथा गूगल बॉय से गूगल मैन बनने का संपूर्ण जीवन वृतांत सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है यह उपन्यास 19 तथा 110 पृष्ठों में सरल तथा रुचिकर शैली में लिखा गया है।

किशोरावस्था बालपन तथा युवावस्था के मध्य महत्वपूर्ण सेतु का काम करती है। यह वह अवस्था है जब किशोर में संस्कारों की सुदृढ़ नींव पड़ती है तथा बालक में संवेदनाएं जन्म लेती हैं यही नींव मनुष्य के जीवन की आधारशिला होती है ।यही संस्कारों की पोटली व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करती है ।ये संस्कार माता–पिता द्वारा बच्चों में भरे जाते हैं क्योंकि घर को प्रथम पाठशाला के साथ संस्कार शाला भी कहा जाता है । माता ही प्रथम गुरु के रूप में बालक में संस्कारों को भरती है।

यह लेखक डॉ मधु कांत के लेखन पटुता है कि उन्होंने किशोर गूगल में संस्कारों की प्रतिपूर्ति के लिए श्रद्धेया श्रीमती इंदिरा स्वपन जी द्वारा लिखित महापुरुषों की कहानियों का चयन किया। एक पंथ दो काज सिद्ध करते हुए उन्होंने माता इंदिरा स्वपन के श्री चरणों में अपने सम्मान पष्प भी अर्पित किए तथा साथ ही गूगल बॉय के चरित्र निर्माण में उनकी कहानियों की महत्वपूर्ण भूमिका का भी वर्णन किया है। इसके लिए डॉक्टर मधु कांत बधाई के पात्र हैं।

उपन्यास में कहानी सुनाने का एकमात्र अभिप्राय कथा को आगे बढ़ाना नहीं है अपितु गूगल बॉय के चरित्र विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना है ताकि महापुरुषों के अनुरूप गूगल बॉय का चरित्र निर्माण हो। गूगल बॉय का किशोर मन उन महापुरुषों के जीवन के अनुरूप अपने आदर्श स्थापित करता है दानवीर कर्ण की कहानी उसकी प्रेरणा बन जाता है उसके मन में दानवीर बनने की परिकल्पना जन्म लेती है तभी वह रक्तदान जैसे पुनीत अभियान से जुड़ जाता है गूगल इसी से प्रेरित होकर जन्माष्टमी जैसे धार्मिक उत्सवों को भी रक्तदान से जोड़ देता हैउपन्यास में चरित्रों के माध्यम से लेखक ने कईं मूल्यवान संदेश पाठकों को दिए हैं। पारिवारिक संबंधों की गरिमा तथा संवेदनशीलता पर भी प्रकाश डाला गया है। मां–बाप, मां– बेटा, पुत्र –पिता के संबंधों के परिप्रेक्ष में पिता द्वारा बेटे का उचित मार्गदर्शन करना, प्रेरणा देना किशोर के मन में आगे बढ़ने की उमंग तथा नवीन ऊर्जा भर देता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

''बेटे की पहली कमाई पर मां का अधिकार होता है।''

''नारायणी आज मेरी सब कमजोरी गूगल ने दूर कर दी जब बेटा जवान होकर अपने पांव पर खड़ा हो जाता है तो उसका कमजोर बाप भी फिर से जवान हो जाता है। आदि पिता की अक्समात मृत्यु पर एक बार गूगल टूटने को हो जाता है किंतु माता का ध्यान करते ही शीघ्र संभल जाता है। माता तथा पुत्र एक दूसरे का संबल बनते हैं। उपन्यास में यह प्रसंग भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

गूगल बॉय का सफल समाजसेवी बनने तथा रक्तदानी बनने में श्री बांके बिहारी जी का नाम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गूगल अपनी सफलता का श्रेय श्री बांके बिहारी जी को देता है तथा प्रत्येक सफलता के पीछे श्री बांके बिहारी द्वारा सहायता का बार–बार उल्लेख भी करता है मात्र ₹400 में खरीदी गई कबाड़ की कुर्सी में से निकली सुगनिया भी मां बेटे के मन को विचलित नहीं कर पाती है वे मन ही मन सोनिया श्री बांके बिहारी जी को समर्पित कर देते हैं तथा उसी में से प्रत्येक कार्य संपन्न करते हैं गूगल की माता के विचार बहुत सराहनीय है वह सभी प्रकार के लोग से परे हैं वह बिना श्रम के कमाए गए धन पर अपना कोई अधिकार नहीं मानती है इसीलिए उन दिनों को श्री बांके बिहारी जी द्वारा प्रदत सेवा करने के लिए एक उपहार एवं आशीर्वाद समझ कर अपने पास रख लेती है हालांकि गूगल कुर्सी के मालिक को ढूंढने का बहुत प्रयास भी करता है किंतु असफल रहता है।

उपन्यास को रोचक बनाने के लिए गूगल बॉय के माध्यम से लेखक ने किशोरावस्था में (टीनएज) प्रथम प्रेम भाव के अंकुरण की सुंदर, अभिव्यक्ति की है। गूगल बॉय तथा अरुणा के पहली बार प्रेम स्वीकृति के वे स्वयं साक्षी बने हैं ।प्रेम व्यापार के चित्रण में लेखक ने सामाजिक मर्यादाओं का विशेष ध्यान रखा है तथा प्रेम को पनपने के स्वाभाविक अवसर दिए है। निसंदेह लेखक प्रेम की मीठी गुदगुदी पाठकों में उत्पन्न करने में सफल हुए हैं ।

लेखक ने रक्तदान के विषय में फैलीअनेक भ्रांतियों को अपने उपन्यास के माध्यम से दूर किया है। जैसे रक्तदान करते हुए सूई के दर्द का भय, रक्तदान के बाद रक्त की कमी हो जाना अथवा स्वस्थ बिगड़ना आदि। लेखक ने 18वर्ष की आयु होने पर सभी को स्वैच्छिक रक्तदान करने की प्ररेणा दी है। गूगल बॉय स्वयं अपनी प्रेयसी तथा मित्रों सहित प्रथम बार सामूहिक स्वैच्छिक रक्तदान कर एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।बाद में अपने पिता के जन्मदिन पर रक्तदान शिविर आयोजित कर कई युनिट रक्त एकत्रित कर एक कीर्तिमान स्थापित करना तथा लाल रंग के हैल्मेट रक्तदाताओं को देने के मूल में लेखक की अपना सुन्दर तथा पुनीत उद्देश्य छिपा है ।उनका मानना है कि सड़क दुघर्टना में सबसे अधिक लोग घायल होते हैं ।हैल्मैट सड़क पर एक सुरक्षा कवच है।

लेखक ने रक्तदान धर्म से जोड़कर परमार्थ के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। गूगल बॉय द्वारा पहले जन्माष्टमी पर कॉलेज में रक्तदान शिविर लगाने का सुझाव देना तथा बाद में रक्त नारायण कथा के माध्यम से महिलाओं को रक्तदान अभियान से जोड़ने का अनूठा सुझाव अकल्पनीय एवं प्रशंसनीय है।यह विकल्प रक्तदान के अभियान को सफल बनाने में तथा सामाजिक जागरूकता पैदा करने में सफल होगा। रक्तदाता आरती तो रक्तदाताओं में लोकप्रिय भी हो चुकी है।

डॉ0 रमा कान्ता द्वारा प्रस्तुत समीक्षा

समस्त शोधपत्र – E-mail - harisharanverma1@gmail.com पर भेजे जाएं।

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. The whole document should be in Times New Roman, single column, 1.5 line spacing. A soft copy of the document formatted in MS Word 97 or higher versions should be sent as submission for acceptance.
2. Title of the paper should be bold 15 point, and all paragraph headings should be Bold, 10 point.
3. Author names should be in 12 point, Bold, followed by affiliations in normal 12 point font size. Names of different authors must be in different rows. First author will be considered for all communication purposes.
4. First page of the document should contain Title and name (s) of author (s) followed by 4-5 lines about each author.
5. The following pages should contain the text of the paper including : Title, Abstract, Keywords, Introduction, Subject Matter,Conclusion & References. Name (s) of author (s) should not appear on this page to facilitate review.
6. Place tables/figures/images in text as close to the reference as possible. Table caption should be above the table. Figure caption should be below the figure. **These captions should follow Times New Roman 11 Point & Hindi Font should be in 'Kruti Dev 010', size - 14.**
7. **Articles which are published should not be reproduced or reprinted in any other form either in full or in part without the prior permission of the editor.**
8. Wherever copyrighted material is used, the author should be accurate in reproduction and obtain permission from the copyright holders, if necessary,
9. Papers presented or submitted in a seminar must be clearly indicated at the bottom of the first page.
10. The authors are required to send a duly signed copyright undertaking by post after sending the soft copy of the manuscript. All manuscripts should be addressed to the Editor.